शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-27, मई-जून 1999

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य, कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001
फोन: 07574 – 53518

वार्षिक सदस्यता (6 अंक) : 50 रुपए
(ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं)

आवरण: सूर्यग्रहण एक अद्भुत खगोलीय घटना है। 11अगस्त 1999 को इस सदी का अंतिम सूर्यग्रहण होगा। नक्शे पर दी गई गाढ़ी काली लाईन वे क्षेत्र हैं जहां से पूर्ण - सूर्यग्रहण दिखाई देगा। इसी लाईन के दोनों ओर एक भूरे रंग की चौड़ी पट्टी चलती है। यह वे क्षेत्र हैं जहां से सूरज के अस्सी से सौ प्रतिशत भाग पर ग्रहण लगा दिखेगा।
इस नक्शे के नीचे मौसम की वजह से पूर्ण सूर्यग्रहण दिखने का संभाविता चार्ट (Probability Chart) दिखाया गया है। इस चार्ट के नीचे समय अंतराष्ट्रीय मानक में दिया गया है। अपने देश में समय इससे लगभग साढ़े पांच घंटे आगे चलता है। ***(मुखपृष्ठ पर दिया गया मानचित्र अधिकृत नहीं है। आवरण चित्र 'न्यू साइन्टिस्ट' 29 मई, 1999 से।)***

इस अंक में निम्न किताबों से चित्र लिए गए हैं: *द वे ऑफ द बुद्ध*, प्रकाशक: सूचना एवं प्रसार मंत्रालय, भारत सरकार; *लाइफ द साइंस ऑफ बायोलॉजी*, लेखक: पुरव, ओरिएंस; प्रकाशक: सिन्योर एसोसिएटस; *फिलिप्स एटलस ऑफ यूनिवर्स, लेखक: पेट्रिक मूर; अ टेक्स्ट बुक इन प्लेनेटरी साइंसेज़* लेखक: जे. कोनसोलमेग्नो, मार्था डब्लू. शेफर, प्रकाशक: प्रेंटिस हॉल, न्यूजर्सी। *द सर्च फॉर इनफिनिटी*, लेखक: गॉर्डन फ्रेज़र, इगिल लिलिस्टोल, इंजी सेलेवेज, प्रकाशक: रीड इंटरनेशनल बुक्स लिमिटेड; *क्लासिकल एंड मॉडर्न फिज़िक्स*, लेखक: डब्लू. एडवर्ड फ्रेडरिक, जे. केलर, मेलकम जे. स्कोवी, प्रकाशक: मेकग्रॉ हिल्स बुक कम्पनी; *रिमार्केबल डिस्कवरी*, फ्रेंक एशाल; प्रकाशक: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस। *रेल्म ऑफ साइंस*, प्रकाशक: टच स्टोन पब्लिकेशन्स, केंटुकी।
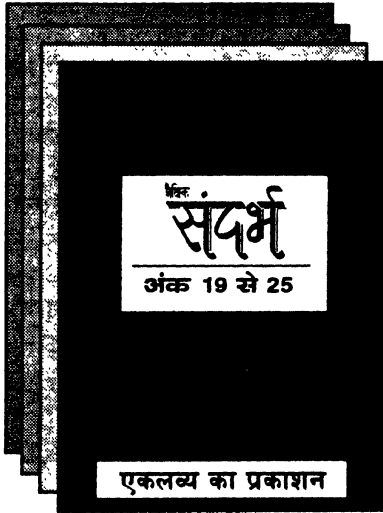
'. . . छुटपन में पिताजी मुझे गोद में बिठा लेते और *ब्रिटानिका* में से पढ़कर सुनाया करते थे। . . .'
पिता की इच्छा थी कि लड़का वैज्ञानिक बने और वे बचपन से ही उसे तराशने में जुट गए।
उसके साथ बातें करते, अनुभवों को बांटते, पढ़ते, घूमते. . .। कहीं कोई दबाव नहीं सब कुछ सहज और सरल।
प्रख्यात भौतिकशास्त्री ***रिचर्ड पी. फाइनमेन*** की आत्मकथा का यह अंश एक पिता के अपने बच्चे के साथ संबंध का एक अनुपम उदाहरण भी है।
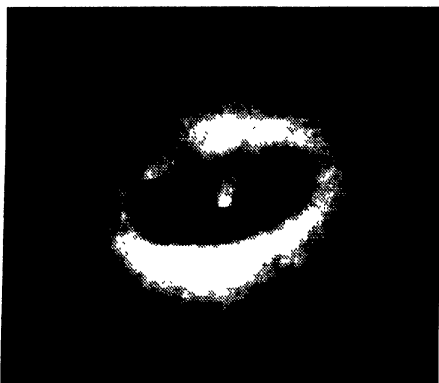
ब्लैक होल के साथ कई बातें जुड़ी हैं। जैसे – ब्लैक होल दिखाई नहीं देता, बहुत अधिक गुरुत्वाकर्षण बल होता है इनमें, ब्लैक होल में सब कुछ समा जाता है, यहां से रोशनी भी बाहर नहीं निकल पाती .:...।
हाल में अमरीका में हो रहे शोधों से ब्लैक होल के बारे में कुछ और रोचक जानकारी मिल रही हैं।

सूर्य ग्रहण 28

11 अगस्त, 1999 को फिर एक बार हिन्दुस्तान में पूर्ण सूर्य ग्रहण देखने का मौका मिला है। खासकर गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उड़ीसा और आंध्रप्रदेश के काफी बड़े इलाके में इसे देखा जा सकेगा।

प्रारंभिक बौद्धों की 39

आमतौर पर यह धारणा है कि बौद्ध धर्म ब्राह्मणवाद के खिलाफ था। इस धारणा के पीछे शायद यह तथ्य काम करता है कि ब्राह्मणों से त्रस्त दलित, क्षत्रियों और व्यापारियों ने बौद्ध धर्म को भारी समर्थन दिया था। बौद्ध धर्म के सामाजिक आधार के बारे में जो जानकारी बौद्ध ग्रंथों से मिलती है वह काफी चौंकाने वाली है और हमारी इस धारणा पर प्रश्न चिह्न लगाती है।

स्कूली विज्ञान पर बच्चों का नज़रिया 65

प्राथमिक स्कूलों में विज्ञान के पाठ्यक्रम के साथ यह बात गहराई से जुड़ गई है कि इससे लोगों में एक वैज्ञानिक और तार्किक मानसिकता विकसित होगी। क्या इस स्तर पर बच्चों से ऐसी अपेक्षा वाजिब है? देखे एक अध्ययन।

शैक्षिक संदर्भ

अंक 27, मई-जून 1999

इस अंक में

कैसे भेज रहे हैं पैसा आप?

सदस्यता शुल्क आप मनीऑर्डर, ड्राफ्ट, चैक आदि से भेज सकते हैं। लेकिन –

1. अगर ड्राफ्ट – स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, सेंट्रल बैंक, पंजाब नेशनल बैंक, स्टेट बैंक ऑफ इंदौर, केनरा बैंक से बनवा रहें हों तो एकलव्य के नाम से **होशंगाबाद पर देय** बनवाएं। इनपर कोई अतिरिक्त सर्विस चार्ज नहीं लगता क्योंकि इनकी शाखाएं होशंगाबाद में हैं।

   अगर किसी भी अन्य बैंक – जैसे इलाहाबाद, यूनियन बैंक आदि से बनवा रहें हों तो एकलव्य के नाम से, लेकिन **भोपाल पर देय बनवाएं।** क्योंकि होशंगाबाद में इनकी शाखा नहीं है इसलिए सर्विस चार्ज के रूप में 25 रुपए कट जाते हैं। अगर किसी ने 50 रुपए का ड्राफ्ट भेजा है तो उसमें से हम तक सिर्फ 25 रुपए ही पहुंच पाते हैं।

2. अब सदस्यता शुल्क **चैक से भी भेजा जा सकता है**। सदस्यता शुल्क के साथ **27 रुपए बैंक सर्विस चार्ज** के अतिरिक्त जोड़ें। बैंक कलेक्शन व पोस्टेज चार्ज के लिए इतने रुपए हर चैक से काट लेती है।

3. वैसे **सबसे बेहतर तरीका मनीऑर्डर है**। इसमें न तो बैंक में समय खपाने की ज़रूरत है और न ही सर्विस चार्ज की दिक्कत। परन्तु मनीऑर्डर के संदेश वाले हिस्से में अपना स्पष्ट पता ज़रूर लिखें।

4. आखिर में, विशेष ध्यान रखें कि ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बना हो, संदर्भ के नाम पर नहीं।

सदस्यता शुल्क इस पते पर भेजें।

संदर्भ	**संदर्भ**
द्वारा एकलव्य	**द्वारा एकलव्य**
कोठी बाज़ार	**ई-1/25, अरेरा कॉलोनी**
होशंगाबाद 461 001	**भोपाल 462 016**

लेकिन साथ ही मैं फूल में ऐसा बहुत कुछ देख सकता हूं जिसे मेरा वह कलाकार दोस्त नहीं देख सकता। जैसे कि मैं फूल के अंदर की कोशिकाओं के बारे में कल्पना कर सकता हूं जिसमें भी एक तरह की सुंदरता है। यानी सुंदरता सूक्ष्म स्तर पर भी मौजूद है। फूल में कोशिकाओं के बीच कई जटिल प्रक्रियाएं चल रही हैं। इसी तरह यह तथ्य भी काफी रोचक है कि फूलों में जो इतने तरह तरह के रंगों का विकास हुआ है उसकी वजह कीटों को आकर्षित करना है, ताकि परागण (Pollination) हो सके। यानी इस तथ्य का अर्थ यह हुआ कि कीट रंगों को देख सकते हैं। इससे एक और सवाल खड़ा होता है कि हम जिस सौंदर्यबोध की बात करते रहे हैं क्या वो अन्य जीवों में भी मौजूद है? तो इस तरह विज्ञान की जानकारी होने से नुकसान कहां होता है! बल्कि इसकी वजह से तो ज़हन में कई तरह के सवाल उठते हैं, जो रोचकता और जिज्ञासा को और बढ़ाते ही हैं।

विज्ञान को लेकर मैं बिलकुल इकतरफा रहा हूं। जब मैं छोटा था तब मेरा सारा ध्यान, सारे प्रयास इसी को समझने-सीखने में लगे। उन दिनों न तो मेरे पास समय होता था न ही इतना धैर्य था कि मानवशास्त्र संबंधी विषय पढ़ पाऊं हालांकि विश्वविद्यालय से स्नातक होने के लिए आपको उनमें से एक विषय चुनना पड़ता था लेकिन मैंने इन विषयों को दरकिनार करने की पूरी कोशिश की।

जब मैं थोड़ा बड़ा हुआ, और थोड़ा धैर्यवान भी – तब मैंने अपना दायरा विस्तृत किया। मैंने चित्र बनाना सीखा और थोड़ा बहुत पढ़ा भी। फिर भी मैं अभी भी लगभग इकतरफा ही हूं, और बहुत कुछ नहीं जानता। मेरे पास सीमित बुद्धि है और मैं एक विशेष दिशा में ही उसका इस्तेमाल करता हूं।

■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■

मेरे पैदा होने से पहले ही मेरे पिता ने मेरी मां से कह दिया था कि यदि लड़का हुआ तो वो वैज्ञानिक बनेगा।*

मैं एकदम छोटा-सा बच्चा ही था जब एक दिन पिताजी बाथरूम में लगाई जाने वाली रंग बिरंगी छोटी-छोटी टाइल्स लेकर आए। हम उनके साथ खेलने लगे; मेरे पिताजी इन्हें एक के ऊपर एक सीधा खड़ा करते और मैं एक कोने को धक्का देकर इन्हें गिरा देता।

---

*वैसे फाइनमेन की छोटी बहन जोआन ने भी भौतिक शास्त्र में पी. एचडी. की है; जबकि उनके पिता की यह धारणा थी कि केवल लड़के ही वैज्ञानिक बन सकते हैं।

थोड़ी देर के बाद मैंने टाइल्स को जमाने में पिताजी की मदद की। और जल्दी ही हम उन्हें कई प्रकार से जमाने लगे – जैसे कि दो सफेद टाइल और एक नीली टाइल, इसके बाद फिर से दो सफेद टाइल और एक नीली टाइल. . . । जब मेरी मां ने यह देखा तो उन्होंने पिताजी से कहा, "बच्चे को खुद खेलने के लिए क्यों नहीं छोड़ देते, यदि वो नीली टाइल्स रखना चाहता है तो उसे नीली ही रखने दो।" पिताजी ने जवाब दिया, "नहीं मैं उसे दिखाना चाहता हूं कि उन्हें तरह-तरह से जमाया जा सकता है और कितना मज़ेदार होता है ऐसे पैटर्न बनाना। वैसे एक तरह से तो यह प्रारंभिक गणित ही है।" तो पिताजी ने बहुत पहले ही मुझे दुनिया के बारे में बताना शुरू कर दिया था कि वो कितनी दिलचस्प है।

उस समय हमारे घर में *ब्रिटेनिका एनसाइक्लोपीडिया* (विश्वकोष) था। छुटपन में पिताजी मुझे गोद में बिठा लेते और *ब्रिटेनिका* में से पढ़ कर सुनाया करते थे। जैसे कि डाइनोसॉर के बारे में पढ़ रहे हैं जिसमें *टॉयरेनोसॉरस रेक्स* का ज़िक्र आता है और लिखा है –

"यह डाइनोसॉर 25 फीट ऊंचा था और इसका सिर छः फीट चौड़ा था।"

अब पिताजी पढ़ना रोक देते और कहते, "चलो देखते हैं कि इसका क्या मतलब है – अगर वो हमारे घर के बगीचे में खड़ा हो तो इतना ऊंचा होगा कि अपनी ऊपर वाली खिड़की तक पहुंच जाएगा। लेकिन उसका सिर

काफी चौड़ा होगा और वह अपनी खिड़की में नहीं समाएगा।" तो पिताजी जो भी पढ़कर सुनाते उसे वास्तविकता के साथ जोड़कर बताने की कोशिश करते।

यह जानना बड़ा ही अद्‍भुत और रोचक था कि कभी दुनिया में इतने बड़े-बड़े जानवर भी थे और वे सभी खत्म हो गए – न जाने क्यूं? कोई भी नहीं जानता।

लेकिन पिताजी के समझाने का असर यह नहीं होता कि मैं भयभीत हो जाऊं कि डाइनोसॉर मेरी खिड़की से चला आएगा। बल्कि किसी कथन को वास्तविक अनुभवों में बदलना मैंने अपने पिताजी से ही सीखा – जो भी मैं पढ़ता, समझने की कोशिश करता कि उसका मतलब क्या है, वास्तव में क्या कहा जा रहा है।

■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■

हम आमतौर पर घूमने के लिए केटास्किल पहाड़ पर जाया करते थे जहां न्यूयॉर्क शहर के लोग गर्मियों में घूमने जाते हैं। हफ्ते के अन्य दिनों में तो पिता लोग काम पर वापस न्यूयॉर्क लौट जाया करते और सप्ताहांत में वापस आते। तो सप्ताहांत में पिताजी मुझे जंगल ले जाते और और वहां की मज़ेदार बातें बताया करते। जब अन्य बच्चों की माताओं ने यह देखा तो उन्हें भी यह विचार पसंद आया। उन्होंने सोचा कि दूसरे पिताओं को भी अपने बच्चों को घुमाने ले जाना चाहिए। उन्होंने कोशिश तो की लेकिन अन्य पिता इसके लिए तैयार नहीं हुए। वे सब चाहते थे कि मेरे पिता ही सब बच्चों को ले जाएं। लेकिन मेरे पिता को यह बिलकुल भी ठीक नहीं लगा, क्योंकि उनका मेरे साथ एक विशेष प्रकार का संबंध था। तो कुल मिलाकर हुआ यह कि अगले सप्ताहांत पिताओं को अपने बच्चों को घुमाने के लिए ले जाना पड़ा।

अगले सोमवार को जब सभी पिता काम पर जा चुके थे हम बच्चे एक मैदान में खेल रहे थे। एक बच्चे ने मुझ से कहा, "उस चिड़िया को देखो तो ज़रा। कौन-सी चिड़िया है वह?"

मैंने जवाब दिया, "मुझे तो तनिक भी अंदाज़ नहीं है कि वो कौन-सी चिड़िया है।"

वह बच्चा बोला, "इसका नाम Brown Throated thrust है – तुम्हारे पिताजी तो तुम्हें कुछ भी नहीं सिखाते!"

लेकिन मामला इसके बिल्कुल विपरीत था। वे मुझे सिखा चुके थे – वे कहते, "उस चिड़िया को देखो? वो *स्पेंसर वार्बलर* है (मुझे मालूम था कि उन्हें उस चिड़िया का सही नाम नहीं

मालूम)। इसे इटैलियन में 'चुट्टो लेपिट्टिडा' कहते हैं, पुर्तगाली भाषा में 'बो डो पीडा', चीनी में यह 'चुंग-लोंग-ताह' है और जापानी में 'कटन पाकेडा'। तो तुम दुनिया की सभी भाषाओं में इसका नाम जान सकते हो। लेकिन इससे तुम्हें इस चिड़िया के बारे में कुछ भी मालूम नहीं पड़ेगा। इससे बस तुम्हें दुनिया के अलग-अलग इलाकों के लोगों के बारे में कुछ अंदाज़ा मिलेगा और बस इतनी-सी जानकारी कि इस चिड़िया को वो किन-किन नामों से पुकारते हैं। इसलिए जब किसी चिड़िया को देखो, तो देखो कि वह क्या कर रही है। और यही बात कुछ मतलब रखती है।" (तो मैंने काफी पहले ही नाम जानने और वास्तव में कुछ जानने में जो फर्क है उसे समझ लिया था।)

वे कहते, "उदाहरण के लिए देखो, चिड़िया हमेशा अपने पंखों पर चोंच मारती रहती है। ज़रा देखो तो उसे चोंच मारते हुए अपने पंखों पर?"

फिर वे पूछते, "तुम्हें क्या लगता है इस बारे में कि यह पंखों पर चोंच क्यूं मारती रहती है?" मैंने जवाब दिया, "शायद उड़ने के दौरान उनके पंख आपस में गुंथ जाते हों इसलिए वह चोंच मारकर फिर से उन्हें संवार रही है।"

पिताजी कहते, "ठीक है, अगर ऐसा है तो उड़ने के तुरंत बाद ही जब वे धरती पर उतरती हैं तो उस दौरान उन्हें सबसे अधिक चोंच मारनी चाहिए। फिर ज़मीन पर आने के थोड़ी देर बाद उनका चोंच मारना कम हो जाना चाहिए? तुम समझ रहे हो न मेरा मतलब?"

"हूं।"

वे कहते, "अच्छा देखो तो ज़रा कि ज़मीन पर उतरने के तुरंत बाद क्या वे अधिक बार चोंच मारती हैं।"

यह बताना कोई खास मुश्किल नहीं था। पंख पर चोंच मारने के मामले में चाहे वे अभी ज़मीन पर उतरी हों या फिर थोड़ी देर से ज़मीन पर ही हों, कोई खास फर्क नहीं था। मैंने पिताजी से कहा, "मैंने तो हथियार डाल दिए, मुझे नहीं मालूम कि वे अपने पंखों पर चोंच क्यों मारती हैं।"

उन्होंने बताया कि क्योंकि वहां पिस्सू मौजूद होते हैं जो उसे परेशान करते रहते हैं। यह पिस्सू चिड़िया के पंखों से झरने वाले प्रोटीन को खाता है। उन्होंने आगे कहा कि हर पिस्सू के पैरों में एक चिपचिपा पदार्थ लगा होता है। इस पदार्थ को और भी छोटे कीड़े खाते हैं – लेकिन ये कीड़े इसे पूरी तरह पचा नहीं पाते, इसलिए वे शरीर से जो पदार्थ उत्सर्जित करते हैं उसमें शर्करा की काफी मात्रा होती है। इस शर्करा युक्त पदार्थ में बैक्टीरिया पनपते हैं।

और अंत में उन्होंने कहा, "तो तुमने देखा कि पोषण का कोई न कोई स्रोत हर जगह मौजूद है; जीवन उसे ढूंढ ही लेता है और उस पर पनपने लगता है।"

आज मैं जानता हूं कि हो सकता है कि वो पिस्सू न होकर कुछ और हो; या फिर पिस्सू के पैरों पर वही कीड़े भी न हों – तो तथ्यों के हिसाब से यह वर्णन शायद गलत ही हो लेकिन जो उन्होंने कहा वो *सैद्धांतिक* तौर से बिलकुल सही था।

■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■

एक अन्य वाकया है उस समय का जबकि मैं थोड़ा बड़ा हो चुका था – उन्होंने पेड़ से गिरी हुई एक पत्ती उठाई। इस जर्जर पत्ती में एक गड़बड़ थी – इसमें अंग्रेज़ी के अक्षर 'C' के आकार की एक भूरी लाईन बनी हुई थी, जो बीच पत्ती में कहीं से शुरू होकर किनारों पर खत्म होती थी।

पिताजी बोले – "देखो इस भूरी लाईन को, शुरुआत में तो यह पतली है लेकिन आगे बढ़ते हुए चौड़ी हो जाती है। क्या है यह?"

उन्होंने जारी रखा, "यह पीली आंखों और हरे पंखों वाली एक मक्खी है। इसने पत्ती पर अंडे दिए। ये अंडे फूटे और इल्ली बनी। उस इल्ली ने अपनी पूरी ज़िंदगी इस पत्ती को खाकर गुज़ार दी, इसी जगह से उसको भोजन मिला। जैसे-जैसे यह इल्ली पत्ती खाते हुए आगे बढ़ती गई, पत्ती का खाया हुआ हिस्सा एक भूरी लाईन के रूप में दिखने लगा। इसी तरह जैसे-जैसे

इल्ली विकसित होकर बड़ी होती गई खाए हुए हिस्से की चौड़ाई बढ़ती गई – पत्ती के किनारे पहुंचते-पहुंचते यह इल्ली नीली मक्खी में बदल गई और उड़ गई जिसकी आंखें पीली थीं और पंख हरे थे। अब यह मक्खी फिर किसी पत्ते पर अंडे देगी।''

इस घटना में भी मुझे मालूम था कि हो सकता है कि तथ्य सही न हों। शायद मक्खी की जगह गुबरैला हो; लेकिन मूल बिन्दु था कि वो मुझे जीवन की रमणीयता के बारे में बताने की चेष्टा कर रहे थे कि कुल मिलाकर मुद्दा सिर्फ प्रजनन का है। प्रक्रिया चाहे कितनी भी जटिल क्यों न हो, प्रमुख बात है उसी को बार-बार दोहराना।*

क्योंकि और पिताओं के बारे में मुझे कुछ भी अनुभव नहीं है इसलिए मैं यह नहीं बता सकता कि मेरे पिता कितने विलक्षण थे। उन्होंने विज्ञान के गहन सिद्धांत कैसे सीखे? इसके पीछे क्या वजह थी? .... मैंने इनके बारे में उनसे कभी नहीं पूछा क्योंकि मैंने बस मान लिया था कि शायद पिताओं को तो इनकी जानकारी होती ही है।

■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■

पिताजी ने मुझे चीज़ों को गौर से देखना सिखाया – एक दिन मैं रेलगाड़ी नुमा एक खिलौने से खेल रहा था जिसमें ऊपर [illegible] खुला हुआ एक डिब्बा था और इसमें एक गेंद पड़ी हुई थी – डिब्बे को आगे पीछे धकेलते हुए मेरा ध्यान उस गेंद की ओर गया। यह देखकर मैं पिताजी के पास गया और कहा – ''पापा, जब मैं डिब्बे को आगे की ओर खींचता हूं तो गेंद पीछे की ओर खिसक जाती है, और जब मैं इस चलते हुए डिब्बे को अचानक रोक देता हूं तो वह आगे की ओर आ जाती है। ऐसा क्यों है?''

''कोई नहीं जानता कि क्यूं है ऐसा,'' पिताजी बोले, ''एक सामान्य सिद्धांत है कि जो वस्तु गति कर रही है वो गति में रहती है। और जो वस्तु स्थिर है वो स्थिर बनी रहती है जब तक कि तुम उस पर बल न लगाओ; और यह प्रवृति जड़त्व कहलाती है। लेकिन कोई भी नहीं जानता कि यह सत्य क्यूं है।'' है न यह एक गहन समझ! उन्होंने मुझे केवल उसका नाम भर नहीं बताया।

इस मुद्दे पर वे और आगे बढ़े और उन्होंने कहा, ''यदि तुम बगल की तरफ से देखो तो पाओगे कि तुम डिब्बे के पिछले हिस्से को गेंद के विरुद्ध

---

* यहां आशय है – पोषण प्राप्त करना, बड़े होना, विकसित होना और फिर से प्रजनन के द्वारा बच्चे पैदा करना। और यह एक सतत् प्रक्रिया है।

आगे खींच रहे हो, गेंद तो स्थिर है बल्कि घर्षण की वजह से यह निचली सतह (ज़मीन) के सापेक्ष थोड़ा आगे बढ़ जाती है — पीछे नहीं जाती।

यह सब सुनने के बाद मैं अपने डिब्बे की तरफ दौड़ पड़ा। फिर से उसे जमाया और आगे खींचा और बगल की तरफ से देखा। पापा ने बिल्कुल सही कहा था — बगल के सापेक्ष गेंद आगे की ओर थोड़ा-सा बढ़ी।

■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■

तो यह तरीके थे जिनसे मेरे पिता ने मुझे सिखाया — उन उदाहरणों से और आपसी बातचीत से; बिलकुल भी कोई दबाव नहीं, बस हल्की-फुल्की और मनोरंजक बातचीत। बाद की ज़िंदगी में इस तरीके ने मुझे लगातार प्रेरित किया और विज्ञान के हर विषय को लेकर मेरी रुचि बनी रही। (यह तो बस संयोग है कि मैं भौतिक शास्त्र में बेहतर हूं।)

किसी दूसरे तरीके से कहूं तो मामला ऐसा है मानो बचपन में कोई मज़ेदार-सी चीज़ देकर बहला लिया गया हो और बाद में वह हमेशा उस चीज़ को तलाशता रहे। किसी बच्चे के समान मैं भी हमेशा चकित कर देने वाली चीज़ों की तलाश में लगा हुआ हूं . . . ।

■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■

उन दिनों मेरा चचेरा भाई हाई स्कूल में था। वह उम्र में मुझसे तीन साल बड़ा था। उसे बीजगणित में काफी मुश्किल होती थी सो एक व्यक्ति उसे ट्यूशन पढ़ाने आया करता था। मुझे यह छूट दी गई थी कि जब वह बीजगणित पढ़ा रहा हो मैं उसी कमरे में एक कोने में बैठ सकता हूं। मैं उसे X के बारे में बताते हुए सुनता।

एक दिन मैंने अपने भाई से कहा, "तुम क्या करने की कोशिश कर रहे हो?"

वह बोला, "मैं एक समीकरण $2X + 7 = 15$ में X का मान पता करने की कोशिश कर रहा हूं।"

मैंने कहा, "इसका मान तो 4 है।"

यह सुनकर वह बोला, "तुमने तो अंकगणित का सहारा लेकर यह सवाल हल किया है, इसे तो बीजगणित की विधि से हल करना पड़ेगा।"

सौभाग्यवश बीजगणित मैंने स्कूल में नहीं सीखी, बल्कि चौथी कक्षा की एक किताब से सीखी। यह मेरी चाची की किताब थी और यूं ही अटारी में पड़ी हुई थी। मुझे समझ आया कि कुल मामला X का मान पता करने का है, चाहे किसी भी तरीके से किया जाए। मेरे लिए तो बीजगणितीय विधि

और अंकगणितीय विधि जैसी बात का कोई मतलब नहीं। बीजगणित विधि का मतलब है कि आप कुछ नियमों का पालन करते हुए आगे बढ़ें जिससे आगे चलकर आपको उत्तर मिल जाएगा।

जैसे कि इस समीकरण में करना होगा – "7 को दोनों तरफ से घटाइए, यदि कोई गुणक है तो दोनों तरफ इसका भाग दीजिए . . . इसी तरह आगे बढ़िए।" नियमों का एक ऐसा क्रम जिसे आजमाने पर आप उत्तर पा सकते हैं, बिना यह जाने कि हकीकत में आप क्या कर रहे हैं। नियम तो दरअसल इसलिए बनाए गए ताकि बीज गणित पढ़ने वाले सभी बच्चे इसमें पास हो जाएं। और इसी वजह से मेरा भाई कभी भी बीजगणित नहीं सीख सका।

हमारे स्थानीय पुस्तकालय में गणित की किताबों की एक पूरी श्रृंखला थी, – Arithmetic for the practical man, Algebra for the practical man, Trignometry for the practical man. (मैंने त्रिकोणमिति इससे सीखी लेकिन जल्द ही भूल गया, क्योंकि यह बहुत अच्छी तरह समझ नहीं आई थी।) जब मैं 13 साल का था तो पता चला कि हमारी लाइब्रेरी में एक किताब आने वाली थी Calculus for the Practical man. इस समय तक विश्वकोष के माध्यम से मुझे मालूम पड़ चुका था कि केलकुलस एक काफी रोचक और महत्वपूर्ण विषय है, इसलिए लगता था कि मुझे इसे सीखना चाहिए।

तो जब केलकुलस की किताब लाइब्रेरी में दिखी तो मैं बड़ा खुश हुआ। जब लाइब्रेरियन के पास पहुंचा और किताब के बारे में पूछा तो उसने मेरी तरफ देखा और कहा, "तुम तो बिल्कुल बच्चे हो, किसलिए ले जा रहे हो इसे?"

यह मेरी ज़िंदगी के उन कुछ क्षणों में से है जबकि मैं असहज हुआ और मैंने झूठ बोला। मैंने कहा कि यह किताब पिताजी के लिए है।

घर लाकर इस किताब से मैंने केलकुलस सीखना शुरू किया। मुझे लगा कि यह तो काफी सरल और सीधा-साधा विषय है। पिताजी ने भी इसे पढ़ना शुरू किया, लेकिन उन्हें यह मुश्किल लगा और वे इसे समझ नहीं पाए। मैंने उन्हें समझाने की कोशिश की। मुझे पहले कभी उनकी सीमित क्षमता का अहसास नहीं हुआ था इसलिए इस बात ने मुझे थोड़ा-सा परेशान किया। यह पहला मौका था जब मुझे अहसास हुआ कि कुछ मामलों में मैं उनसे अधिक सीख चुका हूं।

■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■

भौतिकी के अलावा पिताजी ने जो कुछ भी मुझे और सिखाया उनमें कुछ चीज़ों का अनादर करना भी शामिल था। जैसे कि बचपन में वो मुझे गोद में बैठाकर प्रायः न्यूयॉर्क टाइम्स (अमेरिका का एक अखबार) में छपने वाली फोटो दिखाया करते थे।

एक बार इसमें पोप की एक फोटो छपी थी जिसमें सभी लोग पोप के सामने सिर झुकाकर खड़े हुए थे। पिताजी ने इसे देखा और कहा, "देखो तो इन लोगों को, एक इंसान खड़ा है बाकी उसके आगे सर झुकाए हुए हैं। आखिर क्या फर्क है दोनों में? यह पोप है" – वे वैसे भी पोप से घृणा करते थे। वे आगे बोले, "फर्क सिर्फ इतना है कि वो खास टोपी पहने हुए है," (अगर सेना का कोई जनरल हो तो वो कोई विशेष बिल्ला पहनेगा, यानी हर जगह मामला वर्दी का है)। उन्होंने आगे कहा, "लेकिन बाकी सब कुछ तो यह इंसानों की तरह ही करता है, खाना खाता है, पेशाब करने जाता है। वह भी एक इंसान है।" (मेरे पिताजी वर्दी बनाने का व्यवसाय करते थे इसलिए वे जानते थे कि जब कोई इंसान वर्दी में हो और जब उसने वर्दी न पहनी हो तो क्या फर्क है – उनके लिए तो दोनों एक ही इंसान थे।)

■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■

मुझे ऐसा लगता है कि पिताजी मुझसे काफी खुश थे। एक बार जब मैं एम. आई. टी.* से वापस आया (वहां कुछ साल पढ़ने के बाद मैं लौटा था) तो उन्होंने कहा, "अब तो तुम काफी पढ़ लिख चुके हो, एक सवाल मेरे दिमाग में हमेशा से रहा है, लेकिन मैं उसे कभी नहीं समझ सका।" मैंने उनसे उस सवाल के बारे में पूछा।

वे बोले, "जब एक परमाणु एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाता है तो एक कण उत्सर्जित करता है – जिसे फोटॉन कहते हैं।"

मैंने कहा, "हां यह बात तो ठीक है।"

वो बोले, "तो क्या फोटॉन परमाणु में पहले से था?"

"नहीं," मैंने कहा, "यहां तो पहले से कहीं भी कोई भी फोटॉन नहीं था।"

"ठीक है," उन्होंने कहा, "तब यह आया कहां से? कैसे बाहर निकलता है यह?"

मैंने उन्हें समझाने की चेष्टा की – फोटॉन संख्या संरक्षित नहीं होती। फोटॉन तो इलेक्ट्रॉन की गति से पैदा

*अमेरिका की एक प्रमुख यूनिवर्सिटी, जो विज्ञान की शिक्षा के मामले में काफी प्रसिद्ध है।

हो जाते हैं। लेकिन मैं बहुत अच्छी तरह उन्हें समझा नहीं पाया। फिर भी मैंने कुछ कोशिश की, "जैसे कि जो मैं कह रहा हूं वो मेरे अंदर पहले से मौजूद नहीं था।" (इसमें ऐसा कुछ नहीं है जैसा कि एक दिन मेरे बच्चे ने घोषणा की – तब वह बहुत छोटा था – वो अब एक खास शब्द नहीं बोल सकता। क्योंकि यह उसकी शब्द-थैली में खत्म हो गया है। यह शब्द 'कैट' था।....... ऐसी कोई शब्द-थैली नहीं है जिसमें से शब्द इस्तेमाल होते रहें – इसी तरह किसी परमाणु में भी कोई फोटॉन-बैग पहले से नहीं होता।)

इस संदर्भ में पिताजी मुझसे संतुष्ट नहीं हुए। और मैं उन्हें ऐसी किसी भी चीज़ के बारे में समझाने में कामयाब नहीं हुआ जो उनको समझ में नहीं आ रही थी। तो इस तरह से वो असफल रहे – उन्होंने उन चीज़ों को समझने के लिए मुझे इन सब विश्वविद्यालयों में भेजा लेकिन वे उन्हें कभी नहीं खोज पाए।

■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■ ■

हालांकि विज्ञान के बारे में मेरी मां की जानकारी बिल्कुल नहीं के बराबर थी लेकिन फिर भी उनका भी मुझ पर काफी प्रभाव है। उनका विनोदी स्वभाव गजब का था। मैंने उनसे सीखा कि समझ का उच्चतम स्तर हंसना और दूसरों से सहानुभूति है।

यह लेख रिचर्ड पी. फाइनमेन की आत्मकथा के दूसरे भाग "What do you care What other people think" का एक अध्याय है। इस किताब को राल्फ लाइटेन ने लिपिबद्ध किया है।
मूल लेख अंग्रेज़ी में। *अनुवादः दीपक वर्मा;* संदर्भ में काम करते हैं।

ब्लैक होल
यानी स्याह-सुराख

विजय शंकर वर्मा

ब्लैक होल एक बार फिर सुर्खियों में हैं। उत्तरी अमेरिका में खगोल शास्त्रियों के खोज दल द्वारा किए जा रहे प्रयोग बताते हैं कि हमारी आकाश गंगा के केन्द्र में एक ब्लैक होल है जो सिगार के आकार जैसा है और इसमें से पदार्थ के फव्वारे छूटते हैं। हो सकता है यह अनपेक्षित अवलोकन ब्लैक होल संबंधी हमारी धारणा में कुछ बदलाव लाए।

कृष्ण विवर हाल में सुर्खियों में रहे हैं। आकाश गंगा* के केन्द्र से निकलने वाली रेडियो तरंगों का निरीक्षण करने के एक प्रयोग से अनपेक्षित निष्कर्ष प्राप्त हो रहे हैं। ये निरीक्षण रेडियो दूरबीनों के एक ताने - बाने द्वारा किए जा रहे हैं। इस तंत्र का नाम है *'वेरी लॉन्ग बेसलाइन एरे''*

* 'मिल्की वे गेलेक्सी' जिसमें हमारा सौर मण्डल स्थित है। आकाश में सब तारे जो हमें बिना किन्हीं उपकरणों के दिखाई देते हैं वे हमारी आकाश गंगा के हिस्से हैं। एकदम काली अंधियारी रात में कभी-कभी आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक फैली एक हल्की सफेद-सी बदलीनुमा पट्टी दिखाई देती है। वह है हमारी आकाशगंगा का तल, यानी उस समय हम आकाश गंगा के केन्द्र की ओर देख रहे होते हैं।
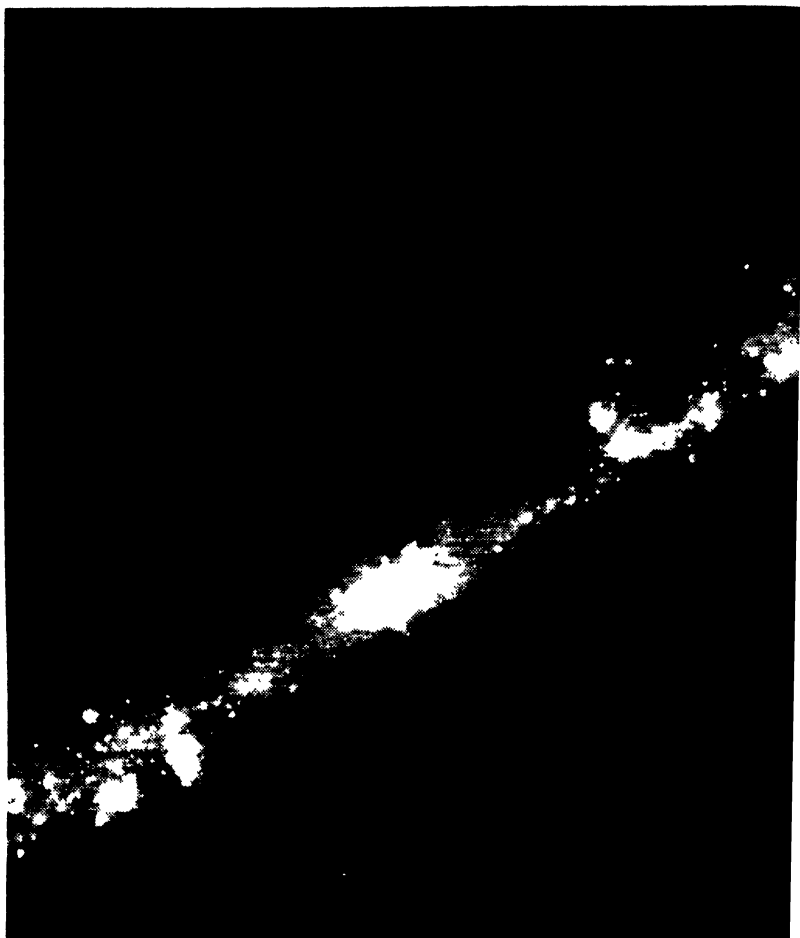
हमारी आकाश गंगा का केन्द्र: इंफ्रा रेड एस्ट्रोनॉमिकल सेटेलाइट (उपग्रह) की मदद से हमारी आकाश गंगा के केन्द्रीय हिस्से की एक तस्वीर। गर्म धूल, गैस और बादलों से पटे इस केन्द्रीय भाग को दृश्य टेलिस्कोप से देख पाना असंभव है। यहां से हमारा सौर्य मंडल 25 से 30 हज़ार प्रकाशवर्ष की दूरी पर स्थित है। आकाश गंगा के इसी केन्द्रीय हिस्से में मौजूद ब्लैक होल से संबंधित अनपेक्षित अवलोकनों से ब्लैक होल के स्वरूप के बारे में नए सवाल उठ खड़े हुए हैं।
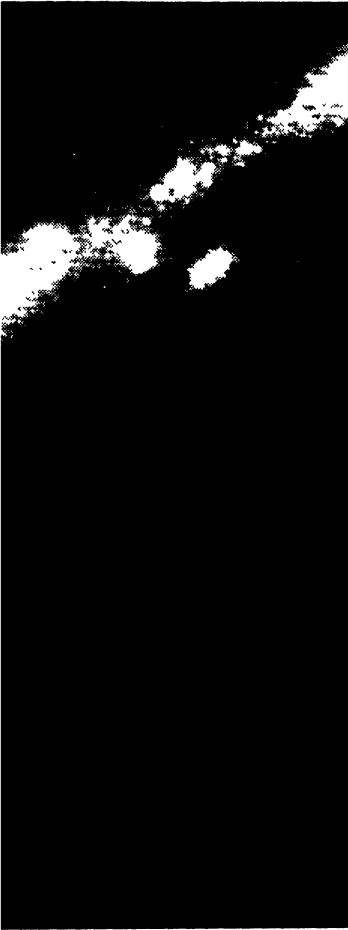
और यह जाल उत्तरी अमरीका की पूरी चौड़ाई में फैला हुआ है। उपरोक्त प्रयोग ताइवान, चीन और अमरीका के खगोल शास्त्रियों का एक मिला-जुला दल कर रहा है। इस प्रयोग के परिणाम यह बताते लगते हैं कि वह स्याह-सुराख, जिसके बारे में सोचा जाता है कि वह आकाशगंगा के केन्द्र में है, दरअसल सिगार की तरह लंबा नलाकार आकार का है। यह परिणाम हैरत अंगेज़ है क्योंकि यह अवलोकन स्याह-सुराख को लेकर फिलहाल प्रचलित सिद्धांतों से मेल नहीं खाता। परंतु इस मामले की तह में जाने के लिए यह जानना ज़रूरी है कि आखिर स्याह-सुराख क्या है।

आखिर स्याह-सुराख है क्या?

वैसे ब्लैक होल लफ्ज़ सबसे पहले जॉन व्हीलर ने 1969 में गढ़ा था। परंतु यह अवधारणा तकरीबन 200 साल पुरानी है। ऐसा माना जाता है कि कृष्ण विवर (यानी ब्लैक होल) 'स्याह' तारे हैं। इनका गुरुत्वाकर्षण इतना ज़्यादा है कि इनमें से कुछ भी बाहर नहीं निकल सकता, इनकी अपनी रोशनी तक नहीं। हालांकि हम इन्हें देख नहीं सकते किन्तु आसपास के तारों पर इनके गुरुत्वाकर्षण के असर को महसूस किया जा सकता है।

कृष्ण विवर के बारे में सबसे पहली अटकल जॉन मिशेल ने लगाई थी। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के शिक्षक मिशेल ने 1783 में 'फिलॉसॉफिकल ट्रान्ज़ैक्शन्स ऑफ रॉयल सोयायटी ऑफ लण्डन' नामक शोध पत्रिका में इस

संबंध में एक शोध पत्र प्रकाशित किया था। यह बात न्यूटन द्वारा 'सार्वभौमिक गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत' प्रतिपादित करने और रोमर द्वारा प्रकाश के वेग को बहुत अधिक मगर निश्चित सिद्ध किए जाने के लगभग 100 साल बाद की है। आइए, यह देखने का प्रयास करें कि मिशेल ने किन तर्कों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला था कि कृष्ण विवर का अस्तित्व होना ही चाहिए।

जब हम एक गेंद को ऊपर उछालते हैं, तो वह कुछ देर तक ऊपर जाने के बाद वापस धरती पर गिर जाती है। यदि हम इसे और तेज़ गति से उछालें तो यह थोड़ी और ऊपर तक जाकर गिरेगी। यदि गेंद की शुरुआती गति को बढ़ाते चले जाएं तो एक स्थिति ऐसी आएगी जब इस गेंद में इतनी गतिज ऊर्जा होगी कि वह पृथ्वी के गुरुत्व क्षेत्र में उसकी स्थितिज ऊर्जा से ज़्यादा हो जाएगी। तब गेंद लगातार ऊपर उठती जाएगी और पृथ्वी से पलायन कर जाएगी। जिस वेग पर ऐसा होता है, उसे 'पलायन वेग' कहते हैं। पृथ्वी के संदर्भ में यह वेग लगभग 11 कि.मी. प्रति सेकण्ड होता है।

न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम का एक निष्कर्ष यह है कि यदि गुरुत्वाकर्षण पिण्ड की संहति स्थिर रखी जाए, तो पलायन वेग उसकी त्रिज्या के वर्गमूल के व्युत्मक्रमानुपाती होती है (अर्थात त्रिज्या जितनी कम होती जाएगी, पलायन वेग उसके वर्गमूल के अनुपात में बढ़ता जाएगा)। यानी कि यदि पृथ्वी को सिकोड़ा जाए और उसकी त्रिज्या यदि एक चौथाई रह जाए, तो पलायन वेग दुगना हो जाएगा।

अब इस बात को किसी तारे पर लागू करते हैं। मान लीजिए किसी वजह से कोई तारा घना होता जा रहा है। एक ऐसी स्थिति आएगी जब उस तारे की सतह पर पलायन वेग का मान प्रकाश की गति से भी ज़्यादा हो जाएगा। यदि हम यह मानें कि प्रकाश कणों से मिलकर बना है – मिशेल के ज़माने में प्रकाश की प्रकृति के लिए प्रचलित दो सिद्धांतों में से यह एक सिद्धांत था – तो ऐसा तारा अदृश्य हो जाएगा क्योंकि इस पर से कोई प्रकाश पलायन न कर सकेगा। मिशेल ने ऐसे ही 'स्याह' तारे की कल्पना की थी। यदि हम इसके साथ यह भी गौर करें कि आइन्स्टाइन के 'विशिष्ट सापेक्षता सिद्धांत' के मुताबिक कोई भी पदार्थ-पिण्ड प्रकाश से तेज़ नहीं चल सकता, तो हम यह निष्कर्ष निकालने को बाध्य हो जाएंगे कि इस तारे से प्रकाश तो क्या, कोई भी चीज़ बाहर नहीं आ सकती। तब यह आज की भाषा में ब्लैक होल या कृष्ण विवर या स्याह-सुराख कहलाएगा।

किसी गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में प्रकाश

के व्यवहार को लेकर ऊपर जो कुछ कहा गया वह काफी अनगढ़-सा था। जब प्रकाश के कण सितारे से दूर जाते हैं तो गेंद के समान उनकी गति कम नहीं होती जाती क्योंकि प्रकाश के कणों का वेग स्थिर है। परंतु यदि हम न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के नियमों की जगह आइन्स्टाइन के 'सामान्य सापेक्षता सिद्धांत' का उपयोग करें तब भी स्याह-सुराख के बनने की संभावना बरकरार रहती है। 'सामान्य सापेक्षता सिद्धांत' प्रकाश पर गुरुत्वाकर्षण के असर की व्याख्या कहीं ज़्यादा सुसंगत ढंग से करता है। इस सिद्धांत का एक निष्कर्ष यह है कि कोई भी विशाल पिण्ड, अपनी संहति के बलबूते पर, अपने आसपास के स्थान-काल (स्पेस-टाइम) की वक्रता को बदल देता है। लिहाज़ा इस पिण्ड के निकट प्रकाश सरल रेखाओं में नहीं चल सकता बल्कि वक्र मार्गों पर चलने को बाध्य हो जाता है। जितना विशाल पिण्ड होगा, उसके आसपास स्पेस-टाइम में उतनी ही ज़्यादा वक्रता उत्पन्न होगी। संहति बढ़ती जाए, तो एक स्थिति ऐसी आएगी जब यह वक्रता इतनी ज़्यादा हो जाएगी कि उस पिण्ड की सतह से निकलने वाला प्रकाश वापस मुड़ने को बाध्य हो जाएगा। तब प्रकाश इस पिण्ड से पलायन नहीं कर पाएगा – बाहर नहीं आ पाएगा।

एक बार यह दर्शा देने के बाद कि स्याह-सुराख का अस्तित्व संभव है, फौरन यह सवाल उठता है कि ये बनते कैसे हैं? तारे क्यों घने से घने होते चले जाते हैं?

हाईड्रोजन से शुरुआत करके . . .

इस सवाल का जवाब देने के लिए हमें तारों के जीवन चक्र पर गौर करना होगा। तारों की कुल आयु अरबों वर्ष हो सकती है। इनकी शुरुआत गैसों के एक बादल के रूप में होती है, जो सबसे सरल तत्व हाइड्रोजन का बना होता है। वितरण में कुछ शुरुआती विषमता के कारण यह बादल गैस कणों के परस्पर गुरुत्वाकर्षण की वजह से संकुचित होने लगता है। संकुचन बढ़ने के साथ गैसों के कणों के बीच परस्पर टक्कर ज़्यादा बार और ज़्यादा गति से होने लगती है। इसके नतीजतन गैस गर्म होने लगती है। लाखों वर्षों की अवधि में गैस का तापमान लाखों डिग्री तक पहुंच जाता है। इतने अधिक तापमान पर हाइड्रोजन के कण परस्पर टकराने के बाद वापस दूर हटने की बजाय नाभिकीय संलयन (Nuclear Fusion) की वजह से आपस में जुड़कर हीलियम बना लेते हैं। यही प्रक्रिया हाइड्रोजन बम में भी होती है। इस प्रक्रिया में उत्पन्न ऊर्जा गैस को बाहर की ओर धकेलती है। यह ऊर्जा गुरुत्वाकर्षण बल को संतुलित कर देती है तथा इस संतुलन की वजह से तारे
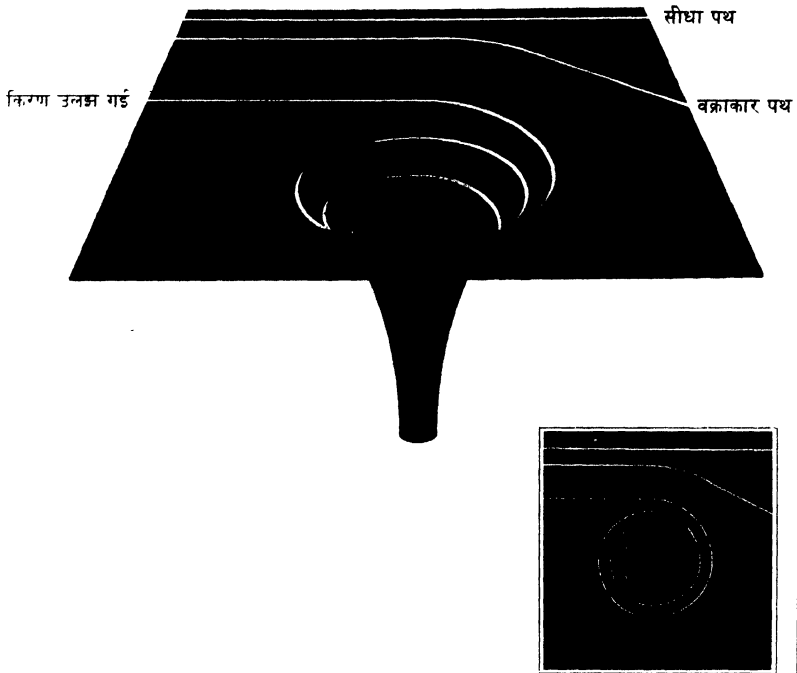
जादुई दायरा: यदि किसी रॉकेट को पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से बाहर निकलना हो तो उसका पलायन वेग 11 किलोमीटर/सेकेंड होना चाहिए। इसी तरह सूर्य के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से बाहर निकलने के लिए पलायन वेग 620 किलोमीटर/सेकेंड चाहिए। और एक न्यूट्रॉन स्टार के पाश से बाहर निकलने के लिए पलायन वेग दो लाख किलोमीटर/सेकेंड ज़रूरी होगा।

जॉन मिशेल ने गणना करके बताया कि किसी बेहद भारी तारे में से निकलने के लिए पलायन वेग 3 लाख किलोमीटर/सेकेंड से ज़्यादा होगा। और ऐसी स्थिति में वह तारा दिखाई ही नहीं देगा क्योंकि खुद प्रकाश भी इस पलायन वेग को नहीं पा सकता। 1915 में जर्मन खगोलविद श्वार्ज़चाइल्ड ने इस जादुई दायरे को तय करने की कोशिश की जिसके अंदर पहुंचने वाला प्रकाश फिर कभी बाहर नहीं निकल सकता।

यहां यह दिखाने की कोशिश की गई है कि ब्लैक होल से काफी दूरी से गुज़रने वाली प्रकाश किरणें सीधी निकल जाती हैं, पास से गुज़र रही प्रकाश किरणों का पथ वक्राकार बन जाता है; और जादुई दायरे की सीमा में घुसी प्रकाश किरण वहीं फंसकर रह जाती है।

का और संकुचन रुक जाता है। इसमें मे कुछ ऊर्जा विकिरण के रूप में बिखर जाती है। यही वह ऊर्जा है जो हमें सितारों की चमक के रूप में नज़र आती है।

बहरहाल, लाखों वर्षों में हाइड्रोजन गैस चुक जाती है, हीलियम का उत्पादन धीमा पड़ जाता है और गैस पर बाहर की ओर लगने वाला दबाव कम हो जाता है। तारा तब फिर से संकुचित होने लगता है। इस संकुचन की वजह से तारे का तापमान और बढ़ जाता है तथा हीलियम का संलयन (Fusion) होकर कार्बन बनने लगता है। एक तरह से तारा एक बार फिर प्रज्ज्वलित हो उठता है। तारे में इस तरह का संकुचन और पुनः धधक उठना बारम्बार होता है तथा इस दरम्यान विभिन्न नाभिकीय संलयन क्रियाओं की बदौलत भारी, और भारी तत्व 'पकते' रहते हैं।

अंततः उपयोग के काबिल सारा ईंधन खप जाता है और तारा संकुचित होने लगता है। इस मुकाम पर, कोई बहुत विशाल तारा सुपरनोवा (अभिनव तारा) के रूप में फूट सकता है। यह विस्फोट बहुत छोटी-सी अवधि के लिए लाखों सूर्यों के बराबर रोशनी देता है। विस्फोट के दौरान हो सकता है कि तारे की संहति का एक बड़ा हिस्सा उससे जुदा हो जाए। इसके बाद तारे का भविष्य इस बात पर निर्भर होता है कि विस्फोट के बाद तारे के कोर (केन्द्र) में कितना पदार्थ बचा है।

सफेद बौना तारा:

यदि यह कोर हमारे सूरज की संहति से 1.4 गुना से कम है तो वह तारा एक सफेद बौने का रूप धारण करेगा। इस संहति (सूरज से 1.4 गुना) को 'चंद्रशेखर सीमा' कहते हैं क्योंकि इसकी गणना सर्वप्रथम चंद्रशेखर ने की थी। सफेद बौने का आकार लगभग पृथ्वी के बराबर होगा किंतु घनत्व लाखों गुना ज़्यादा होगा। सफेद बौने का और अधिक संकुचन 'पॉली के निषेध सिद्धांत' के कारण नहीं हो पाता। यह सिद्धांत इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन जैसे मूलभूत कणों के क्वांटम यांत्रिकीय विवरण का परिणाम है। यह सिद्धांत कहता है कि एक परमाणु के नाभिक के आसपास परिक्रमा कर रहे दो से ज़्यादा इलेक्ट्रॉन एक ही समय में एक ही इलाके में नहीं हो सकते। अतः परमाणु एक हद से ज़्यादा करीब नहीं आ सकते। यानी किसी सफेद बौने तारे में यह सिद्धांत गुरुत्वाकर्षण बल को संतुलित करके उसे और संकुचित नहीं होने देता।

न्यूट्रान तारा:

यदि तारे की संहति चंद्रशेखर सीमा से ज़्यादा हो, तो गुरुत्वाकर्षण बल इलेक्ट्रॉनों के बीच 'निषेध सिद्धांत' के कारण उत्पन्न विकर्षण बल से अधिक
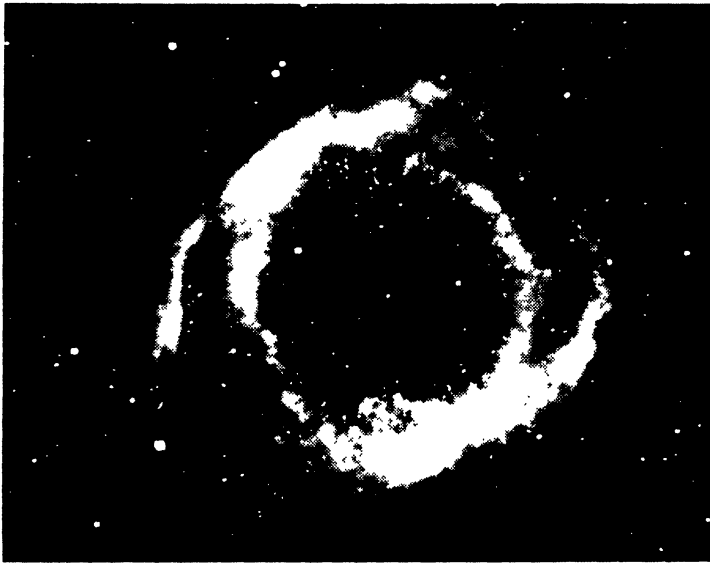
सुपरनोवा से सफेद बौना: चित्र मे स्पष्ट है कि 500 प्रकाश वर्ष दूर इस स्थान पर कभी एक ज़बरदस्त सुपरनोवा विस्फोट हुआ था जिसकी वजह से मूल तारे का ज़्यादातर हिस्सा आकाश में बिखर गया। चित्र में दिख रहा यह पदार्थ आज भी 30 कि. मी./सेकेंड की रफ्तार से चारों ओर बिखर कर रहा है। इस सुपरनोवा विस्फोट की वजह से मूल तारा एक अत्यंत गर्म सफेद बौना बनकर रह गया है और उसमें से निकल रही अवरक्त किरणों की वजह से हम इस गैस के बादल को देख पा रहे हैं।

हो जाता है और तारा गुरुत्व बल के प्रभाव से सिकुड़ता चला जाता है। यदि उस समय तारे की संहति हमारे सूरज से 2-3 गुना (लैण्डाऊ सीमा) से कम हो, तो अब नाभिक में उपस्थित कणों (न्यूट्रॉन व प्रोटॉन) के बीच 'निषेध सिद्धांत जनित विकर्षण बल' गुरुत्व बल को संतुलित कर देता है । ऐसे तारे को न्यूट्रॉन तारा कहते हैं। इसका व्यास मात्र लगभग 100 कि. मी. होता है तथा यह सफेद बौने तारे से करीब हज़ार गुना ज़्यादा घना होता है।

स्याह-सुराख:

यदि तारे की संहति 'लैण्डाऊ सीमा' से ज़्यादा हो, तो गुरुत्व बल नाभिकीय कणों के बीच लगने वाले विकर्षण बल से भी ज़्यादा हो जाता है। ऐसी स्थिति में तारा सिकुड़ते-सिकुड़ते 'कृष्ण विवर' या 'स्याह-सुराख' में तब्दील हो जाता

है। हमने ऊपर कहा था कि त्रिज्या एक सीमा से कम हो जाए तो ऐसे तारे की सतह से कोई चीज़ पलायन नहीं कर सकती, यानी कि वह तारा अब दिखाई ही नहीं दे सकता और स्याह-सुराख बन जाता है। तब स्याह-सुराख गुरुत्व बल के अधीन अनंत रूप से सिकुड़ता चला जाता है। इस क्रान्तिक त्रिज्या को 'श्वार्ज़चाइल्ड त्रिज्या' कहते हैं तथा इससे घिरे क्षेत्र को 'इवेन्ट हॉराइज़न' कहते हैं। स्याह-सुराख के 'इवेन्ट हॉराइज़न' का महत्व यह है कि कई मर्तबा स्याह-सुराख स्वयं सिकुड़कर 'इवेन्ट हॉराइज़न' से भी छोटा हो जाता है, फिर भी 'इवेन्ट हॉराइज़न' से घिरे क्षेत्र में से कोई
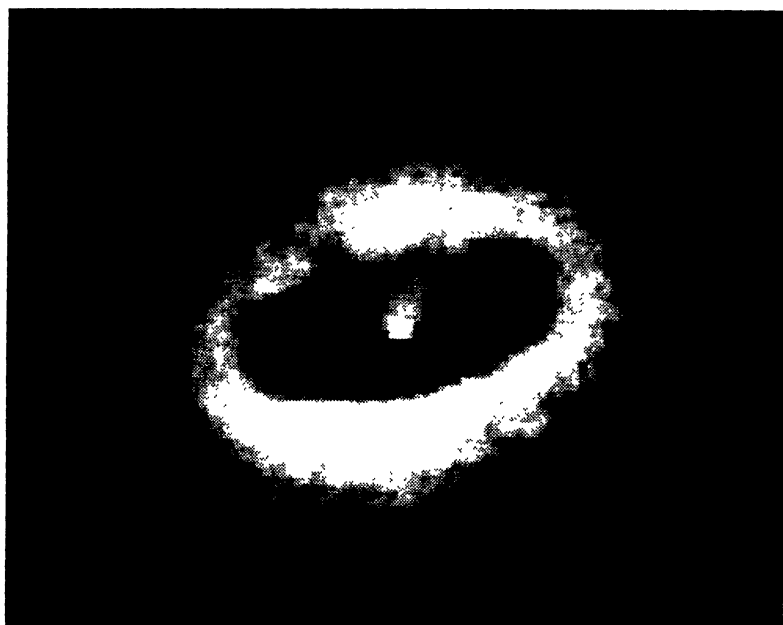
दृश्य प्रकाश में: हबल टेलीस्कोप की मदद से लिया गया एक चित्र। इसमें गर्म गैस और धूल की एक विशालकाय चकती नज़र आ रही है। इस चकती के केन्द्रीय भाग में एक सफेद हिस्सा दिखाई दे रहा है। ऐसा माना जा रहा है कि इस सफेद हिस्से में एक ब्लैक होल है जो आसपास के पदार्थ को चूस रहा है। यह ब्लैक होल NGC 4261 गेलेक्सी के केन्द्र में देखा गया है जो कन्या तारा मंडल में स्थित है।

तारा सिकुड़कर कृष्ण विवर या स्याह-सुराख कैसे बनता है?

1, 2: तारा सिकुड़ रहा है किन्तु अभी नज़र आता है क्योंकि प्रकाश अभी भी इसमें से बाहर आ सकता है।

3: तारे की सतह पर स्पेस टाइम वक्रता इतनी ज़्यादा हो जाती है कि इसमें से प्रकाश बाहर नहीं आ सकता। तारा अदृश्य हो जाता है, 'इवेन्ट हॉराइज़न' बन जाता है।

7: तारा एक बिन्दु बनकर रह जाता है।

4, 5, 6: 'इवेन्ट हॉराइज़न' यानी स्याह-सुराख की सरहद वहीं की वहीं रहती है जबकि अंदर तारा सिकुड़ता चला जाता है। इस तारे का प्रकाश 'इवेन्ट हॉराइज़न' से बाहर निकलकर दूर बैठे किसी प्रेक्षक तक नहीं पहुंच सकता।
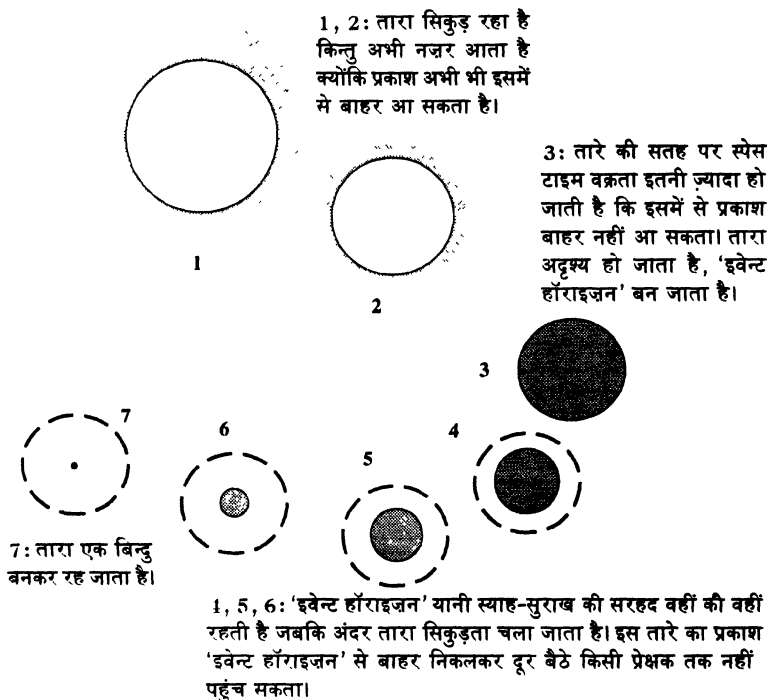
चीज़ बाहर नहीं निकल सकती।

अदृश्य को 'देखना'

यह सही है कि स्याह-सुराख अदृश्य होता है क्योंकि इसमें से कोई विकिरण बाहर नहीं आ सकता। परंतु स्याह-सुराख की उपस्थिति का पता इस आधार पर लगाया जा सकता है कि यह अपने आसपास मौजूद पदार्थ को आकर्षित करता है। मसलन किसी स्याह-सुराख के आसपास मौजूद तारे किसी अदृश्य वस्तु के इर्द-गिर्द चक्कर लगाते नज़र आएंगे और स्याह-सुराख की उपस्थिति ज़ाहिर कर देंगे। इसी तरह, स्याह-सुराख के निकट कोई भी पदार्थ स्याह-सुराख की ओर त्वरण महसूस करेगा तथा चमकीला विकिरण उत्सर्जित करेगा। अतः ऐसी स्थिति में

यह स्याह-सुराख उतना स्याह नहीं रहेगा और यह चमक उसकी मौजूदगी का पता दे देगी।

* * * * *

यहां प्रस्तुत संक्षिप्त ब्यौरे में हमने आइंस्टाइन के 'सामान्य सापेक्षता सिद्धांत' और क्वांटम यांत्रिकी की परस्पर अंतर्क्रिया की वजह से होने वाले परिणामों की चर्चा नहीं की है। इसलिए हमने स्याह-सुराख के 'हॉकिन्स विकिरण' की बात नहीं की। न ही हमने यह चर्चा उठाई कि तारे के घूर्णन का स्याह-सुराख के निर्माण पर क्या असर होता है, और न तारे के तापमान व एंट्रॉपी के संदर्भ में ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम की बात उठाई। इस तरह का विवेचन एक परिचयात्मक लेख के दायरे में नहीं आता। बहरहाल इतना तो कहा ही जा सकता है कि स्याह-सुराख की एक मुकम्मल तस्वीर तभी उभर सकती है जब आधुनिक भौतिकी के दो महान सिद्धांतों – सामान्य सापेक्षता का सिद्धांत और क्वांटम यांत्रिकी का एकीकरण हो जाए। इसकी संभावना अभी भी भविष्य के गर्भ में है और भविष्य ही बताएगा कि भविष्य के गर्भ में क्या है।

अंत में उस सवाल पर लौटते हैं जहां से शुरू किया था – वह प्रयोग जो चारों ओर रोमांच पैदा कर रहा है। आकाशगंगा के केन्द्र में तारे एक रेडियो-स्रोत के इर्द-गिर्द तेज़ी से घूम रहे हैं; इस अवलोकन के आधार पर खगोलशास्त्री कुछ समय से सोचते रहे हैं कि वहां एक स्याह-सुराख है जिसकी संहति लगभग 26 लाख सूरज के बराबर है। तारों के बीच मौजूद धूल के कारण इस क्षेत्र को प्रकाशीय दूरबीन से नहीं देखा जा सकता। इसीलिए सारे मापन रेडियो-दूरबीन की मदद से किए जा रहे हैं। जो रेडियो तरंगें मिल रही हैं, उनके बारे में सोचा जा रहा है कि वे स्याह-सुराख के कारण इलेक्ट्रॉनों में उत्पन्न हो रहे त्वरण की वजह से उत्सर्जित हो रही हैं। त्वरण का परिणाम यह होता है कि इलेक्ट्रॉन उस क्षेत्र में मौजूद चुंबकीय क्षेत्र के इर्द -गिर्द कुण्डलीनुमा पथ में घूमते हैं। मापन से पता चलता है कि उक्त स्याह-सुराख आकार में लंबा-सा है और संभवत: इसके केन्द्र में से पदार्थ के फव्वारे छूटते हैं। यही सारे रोमांच का विषय है, क्योंकि मापन से प्राप्त जानकारी स्याह-सुराख से संबंधित किसी भी मौजूदा सिद्धांत से मेल नहीं खाती। लिहाज़ा यह प्रयोग ऐसे सिद्धांतों के बारे में पुनर्विचार का तकाज़ा करता है।

विजय शंकर वर्मा: दिल्ली विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र पढ़ाते हैं।
मूल लेख अंग्रेज़ी में। **अनुवाद: सुशील जोशी**; अनुवादक स्रोत फीचर सेवा एवं होशंगाबाद विज्ञान कार्यक्रम से जुड़े हैं। विज्ञान लेखन भी करते हैं।

खग्रास सूर्य ग्रहण
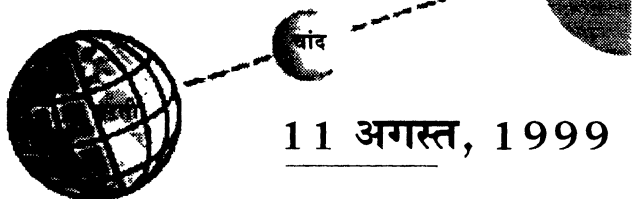
11 अगस्त, 1999

बुधवार 11 अगस्त, 1999 को सूर्यास्त से ठीक पहले भारत के गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उड़ीसा और आंध्रप्रदेश से गुज़रने वाली एक संकरी पट्टी से सम्पूर्ण सूर्य ग्रहण (खग्रास ग्रहण) देखा जा सकेगा।

पिछला खग्रास सूर्य ग्रहण भारत में लगभग चार साल पहले 24 अक्टूबर, 1995 को दिखाई दिया था; और भारत में खग्रास सूर्य ग्रहण देखने का अगला मौका सन् 2009 के जुलाई महीने में ही मिल सकेगा। हिन्दुस्तान में जुलाई महीने में मॉनसून बहार पर होता है इसलिए दस साल बाद वाला सूर्यग्रहण दिखने की संभावना काफी कम रहेगी। वैसे इस बार भी स्थिति बहुत अच्छी नहीं है – अगस्त का महीना और शाम का समय, ठीक उसी समय एक बदली भी आफताब के सामने आ गई तो सारी मेहनत पानी में और पूरा खेल चौपट! फिर भी मौका चूकना नहीं चाहिए क्योंकि यह घटना ज़िंदगी में दो-चार बार ही होती है। (ज़्यादातर लोग अन्य किसी देश में जाकर या समुद्री जहाज़ में चढ़कर पूर्ण सूर्य ग्रहण नहीं देख सकते इसलिए सही है यह कथन।)

शाम का नज़ारा

वैसे भी सूर्यास्त हमेशा मन को मोहित करता है लेकिन ग्यारह अगस्त की शाम की बात कुछ और ही होगी। उस शाम घंटे भर में रात का नज़ारा दो बार देखने को मिलेगा; तारे कुछ देर चमककर गायब हो जाएंगे और थोड़ी देर बाद फिर से आकाश में दिखने लगेंगे।

भारत में यह ग्रहण तकरीबन दो घंटे तक दिखाई देगा – ग्रहण लगभग 5 बजे शुरू होगा और 7 बजे तक रहेगा। हिन्दुस्तान में पूर्ण सूर्य ग्रहण

का अधिकतम समय एक मिनट से थोड़ा-सा ही ज़्यादा होगा।

नक्शे में दिखाई गई संकरी पट्टी में ही पूर्ण सूर्य ग्रहण दिखेगा। इस पट्टी पर किसी स्थान विशेष पर पूर्ण सूर्य ग्रहण कितनी देर दिखेगा यह इंगित करते हुए 30 सेकेंड, 60 सेकेंड आदि की रेखाएं खिंची हुई हैं। इसी तरह इस पट्टी से दूर जाने पर यह भी दर्शाया गया है कि 95 प्रतिशत ग्रहण कहां-कहां से दिखाई देगा, यानी वहां पूर्ण सूर्य ग्रहण नहीं बल्कि खंडग्रास ग्रहण होगा। पूर्ण सूर्य ग्रहण की पट्टी के बाहर खंड ग्रहण वाली स्थिति रहेगी।

पूर्ण सूर्य ग्रहण क्यों होता है?

इसे संयोग ही कहा जाएगा कि सूर्य का व्यास चांद से 400 गुना ज़्यादा है और सूर्य, चांद के मुकाबले धरती से 400 गुना ज़्यादा दूरी पर स्थित है। इसी वजह से सूर्य और चांद हमें लगभग समान आकार के दिखते हैं। यदि हम सूर्य को किसी फिल्टर की सहायता से देखें तो वह पूर्णिमा के चांद की तरह दिखाई देता है।

जब चांद धरती के चारों ओर घूमते हुए सूर्य के ठीक सामने से गुज़रता है तो चांद की छाया धरती पर पड़ती है; और चांद की गोलाकार चकती सूर्य को पूरी तरह ढंक लेती है। यही है सूर्य ग्रहण – मात्र एक छाया! यानी ग्रहण एक पेड़ या किसी ऊंची इमारत की छाया की तरह ही एक छाया है। चांद सूर्य की रोशनी को कुछ क्षण के लिए रोक लेता है, और यह खूबसूरत समा साकार होता है।

क्या सूर्य ग्रहण खतरनाक होते हैं?

सूर्य ग्रहण कतई खतरनाक नहीं होते यदि इसे थोड़ी-सी सावधानी बरतते हुए देखा जाए। आमतौर पर सूर्य को खुली आंखों से देख पाना संभव नहीं है क्योंकि वह काफी चमकीला है। लेकिन ग्रहण के दौरान – पूर्ण सूर्य ग्रहण के थोड़ा पहले और एकदम बाद बिना किसी खास परेशानी के हम सूर्य की तरफ देख सकते हैं – यही है खतरा। ऐसा करने से आपकी आंखों को नुकसान पहुंच सकता है।

इसीलिए यह बेहद ज़रूरी है कि ग्रहण देखने के लिए किसी उपयुक्त फिल्टर का इस्तेमाल किया जाए जो सूर्य किरणों की तीव्रता को इतना कम कर सके कि आंखों के लिए किसी किस्म का खतरा न हो। आमतौर पर ऐसे फिल्टर का इस्तेमाल करना चाहिए जो सूर्य प्रकाश की तीव्रता का केवल 10 हज़ारवां हिस्सा हमारी आंखों तक पहुंचने दे।

पूर्ण ग्रहण की अवधि के दौरान सूर्य को बिना फिल्टर के देखा जा सकता है। खग्रास ग्रहण की अवधि

सुरक्षित ही नहीं होती, बहुत खूबसूरत भी होती है। पर उसके पहले और बाद में आंखों को सुरक्षित रखना बहुत ज़रूरी है। सूर्य को फिल्टर में से भी लगातार 15-20 सेकेंड से ज़्यादा नहीं देखना चाहिए।

ग्रहण के दौरान सूर्य को सुरक्षित ढंग से देखने के और भी बहुत तरीके हैं :–

पिन होल कैमरे की मदद से, दर्पण से दीवार पर छवि बनाकर, वेल्डिंग करते समय इस्तेमाल होने वाला फिल्टर कांच आदि।

क्या-क्या देखना है?

संपर्क बिन्दु: ग्रहण की शुरुआत, पूर्ण सूर्य ग्रहण और खत्म होने पर जब-जब सूर्य और चांद की चकतियां एक दूसरे को छूती नज़र आती हैं – वे बिन्दु। ग्रहण व पूर्ण ग्रहण की अवधि का पता इन्हीं से चलता है।

रोशनी का लगातार कम होना: जैसे-जैसे ग्रहण आगे बढ़ता जाता है आसमान में रोशनी कम होती जाती है; और तापमान पर भी असर पड़ता है।

ग्रहण ज़मीन पर: ग्रहण के दौरान किसी ऐसे पेड़ की छाया को देखिए
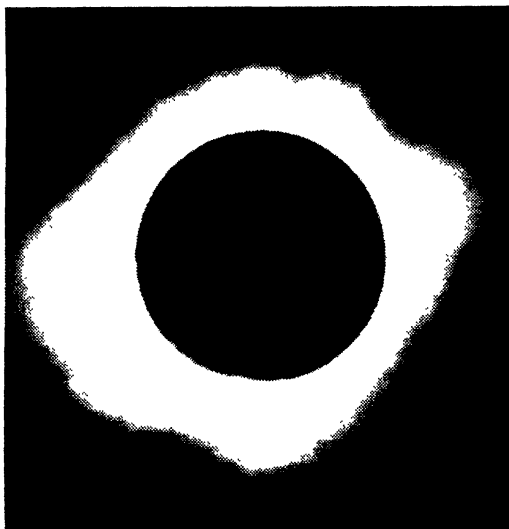
कोरोना: 11 जुलाई, 1991 के पूर्ण सूर्य ग्रहण के दौरान जब चांद की गोलाकार चकती ने सूरज को पूरी तरह ढंक लिया तो सूर्य का कोरोना दिखने लगा।

चमकीला छल्ला (डायमंड रिंग): पूर्ण ग्रहण के ठीक बाद जैसे ही सूर्य चांद की चकती के किनारों से दिखना शुरू होता है तो ऐसा आभास होता है मानो आसमान में हीरे से जड़ी अंगूठी हो। यह चित्र 21 नवंबर, 1966 को हुए सूर्य ग्रहण के दौरान लिया गया है।

जिस पर सूरज की रोशनी आ रही हो। काफी सारी चंद्राकार आकृतियां दिखाई देंगी। ग्रहण बढ़ने के साथ-साथ ये भी संकरी होती जाएंगी; और पूर्ण सूर्य ग्रहण के पश्चात फिर से मोटी।

मोतीनुमा रचनाएं: पूर्ण सूर्य ग्रहण से ठीक पहले या फिर ग्रहण खत्म होते वक्त अगर सूर्य की किरणें चंद्रमा की किन्हीं खाइयों-घाटियों में से निकलकर हम तक पहुंच रही हों तो वे मोतियों जैसी चमकती दिखाई देती हैं।

कोरोना: जब चांद सूरज को पूरी तरह ढंक लेता है तो काली चकती के चारों ओर एक ओजस्वी प्रकाश मान क्षेत्र दिखता है। लाखों किलोमीटर तक फैला सूर्य का यह वातावरण केवल पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय दिखता है।

चमकीला छल्ला: चांद के पीछे छुपी हुई सूरज की चकती का ज़रा-सा हिस्सा जैसे ही चांद के पीछे से झांकता है तो चमकते छल्ले की तरह नज़र आता है – हीरे की अंगूठी की तरह।

सौर लपटें: सूर्य में से लम्बी-लम्बी लपटें निकलकर लाखों किलोमीटर तक उठती हैं। कोरोना में ऐसी अग्नि ज्वालाएं पूर्ण ग्रहण के समय कभी-कभी दिखाई दे जाती हैं।

अन्य अवलोकन:

- तारे, ग्रह वगैरह दिखाई देना
- पशु-पक्षियों के व्यवहार में परिवर्तन
- पूर्ण सूर्य ग्रहण से पहले और बाद में ज़मीन पर परछाई की पट्टियां दिखना।

बम्बई स्थित नवनिर्मिति संस्था ने सूर्य ग्रहण को देखने के लिए फिल्टर बनाए हैं। एक फिल्टर की कीमत 5/– रुपए है। मंगवाने का पता:
नवनिर्मिती, 2, रानी निवास. गणेश नगर, क्वेरी रोड, भांडुप, मुंबई – 400 078
कोमेट मीडिया फाउंडेशन, टोपीवाला लेन स्कूल, लेमिंगटन रोड़, मुंबई – 400007
इनके लिए आप एकलव्य से भी संपर्क कर सकते हैं।

चांद की परछाई उत्तरी प्रशांत महासागर से शुरू करके इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, यूगोस्लाविया, रूमानिया, तुर्की, इराक, ईरान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान से होती हुई भारत में प्रवेश करेगी।
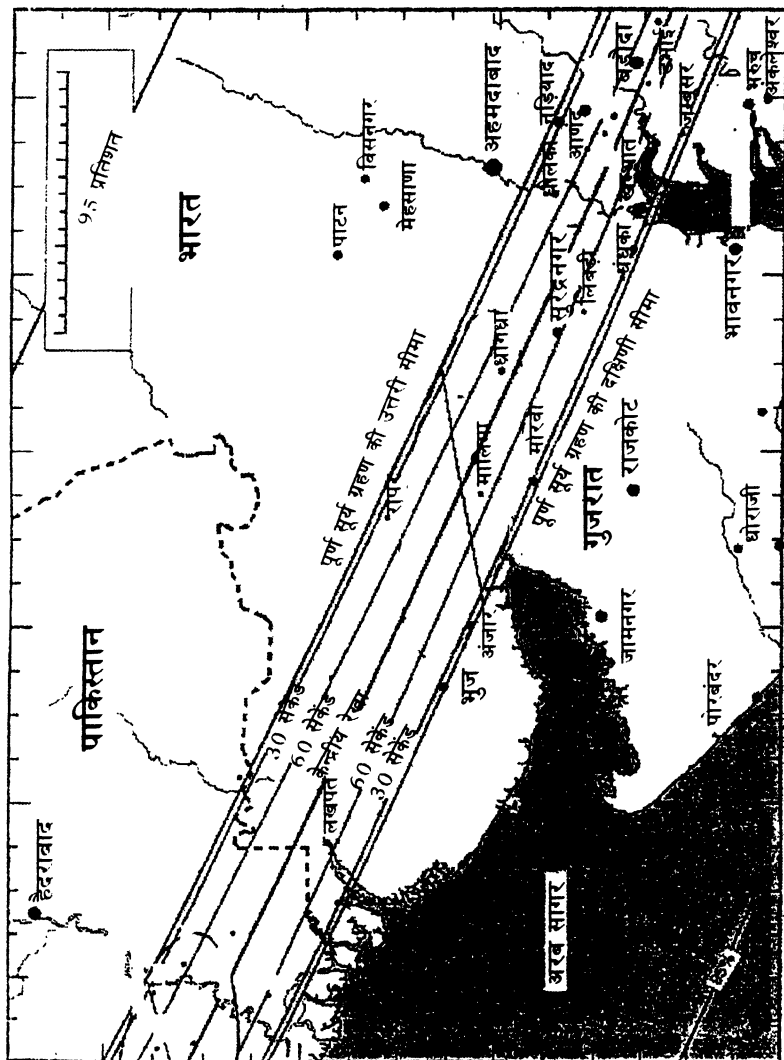
. . . फिर गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, आंध्रप्रदेशसे होता हुआ बंगाल की खाड़ी में जाकर खत्म हो जाएगा यह सूर्य ग्रहण।
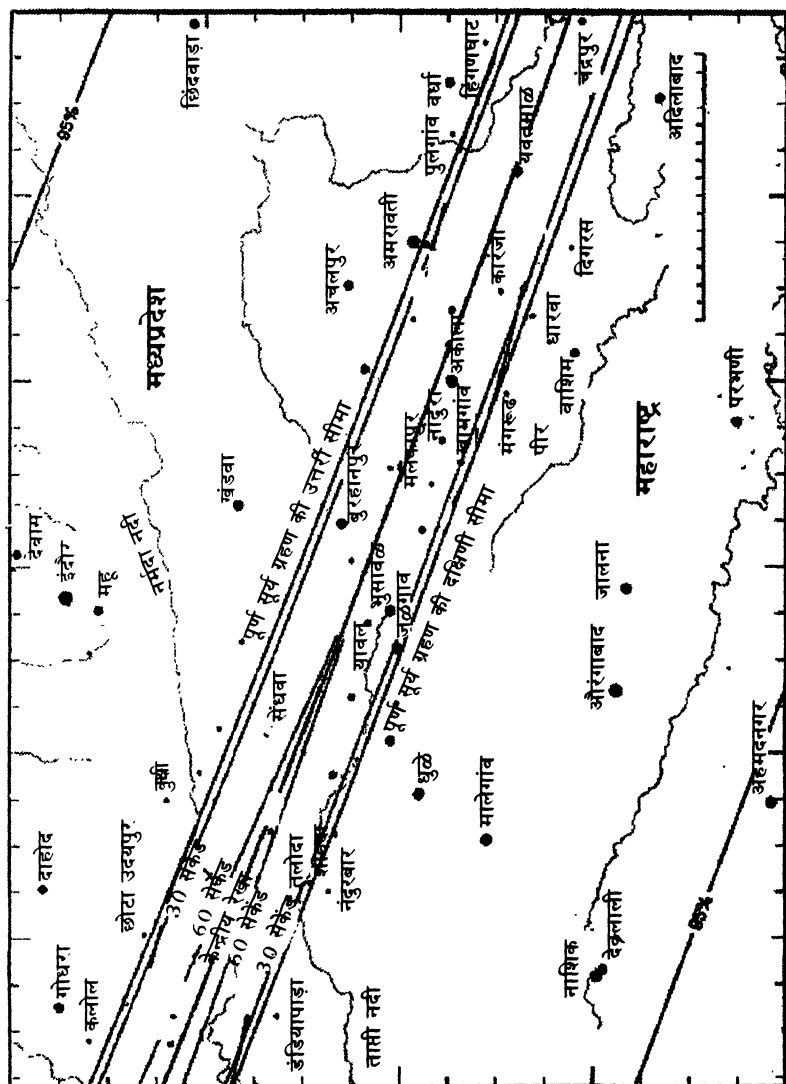
जवाब सीखें या जवाब देना सीखें

कैरन हैडॉक

भाषा सीखना क्या किसी विषय के सीखने से अलग नहीं रखा जाना चाहिए?
क्या पढ़ाई में कुछ ऐसा शामिल नहीं होना चाहिए जो बच्चों को स्वचिंतन की ओर प्रेरित कर सके?

क्या सवालों के सही जवाब याद करना ही सिर्फ सीखना है? क्या बच्चों को यह सीखना ज़रूरी नहीं है कि सवाल के जवाब के बारे में सोचा कैसे जाए? भविष्य में वे अपने बारे में कैसे सोच पाएंगे?

हाल ही में मैं शिक्षकों के एक समूह को यह मनवाने का प्रयास कर रही थी कि कक्षा छह के इतिहास के पर्चे में कुछ ऐसे सवाल भी होने चाहिए जो उन्हें थोड़ा-सा आलोचनात्मक चिंतन की ओर प्रेरित कर सकें – दूसरे शब्दों में इसे रखूं तो वे शिक्षकों द्वारा बोर्ड पर लिखे गए जवाबों को याद करने से अधिक कुछ कर सकें।

शिक्षकों का ज़ोर था कि बच्चों की अंग्रेज़ी उतनी अच्छी नहीं है कि वे खुद वाक्य बना सकें। उनका कहना था कि इस कारण से बच्चे ऐसे सवालों के जवाब नहीं दे पाएंगे जिनसे वे परिचित न हों। जिस स्कूल की मैं बात कर रही हूं वह एक

अंग्रेज़ी माध्यम का स्कूल था जिसमें पढ़ने आने वाले बच्चे पंजाबी और हिंदी भाषी थे।

इतिहास अलग, भाषा अलग

मैंने शिक्षकों को समझाने की बहुतेरी कोशिश की – जब तक बच्चों को वाक्य बनाने के मौके नहीं दिए जाते वे कभी भी अंग्रेज़ी नहीं सीख पाएंगे। उन्हें ऐसे मौके दिए जाने चाहिए जिसमें वे इतिहास के अलावा अंग्रेज़ी में भी अपनी काबिलियत दिखा सकें। किसी चीज़ को याद कर लेने से यह सिद्ध नहीं होता कि बच्चों में किसी चीज़ की समझ है, बल्कि बच्चों को यह सीखने की ज़रूरत है कि जानकारी का उपयोग अपनी राय बनाने या फिर किसी समस्या का रचनात्मक हल ढूंढने में कैसे किया जाता है। इस सिलसिले में मैंने कुछ सवाल तैयार किए जिनके बारे में मेरा ख्याल था कि वे आमतौर पर पूछे जाने वाले सवालों के बेहतर विकल्प होंगे। इनमें से पहले तीन सवाल थे:

1. क्या होता अगर इंसानों की भी कुछ जानवरों के समान घने बालों वाली खाल होती? इससे इतिहास कैसे बदल जाता?
2. पत्थर के युग को पत्थर का युग क्यों कहा जाता है?
3. आज भी आदिवासियों के कुछ ऐसे समूह हैं जो बिल्कुल अलग रहते हैं और बाहरी लोगों से किसी प्रकार का संपर्क नहीं रखते। वे खेती भी नहीं करते। तो वे कैसे जीते हैं? वे क्यों खेती नहीं करते इस बारे में तुम क्या सोचते हो?

जब शिक्षकों ने इन सवालों को देखा तो उन्होंने कहा कि उन्होंने इन सवालों के बारे में कभी भी बच्चों से चर्चा नहीं की है इसलिए वे इनका जवाब नहीं दे पाएंगे। लेकिन बच्चे पत्थर के युग के लोगों पर पाठ पढ़ चुके थे इसलिए मेरा विश्वास था कि पुरा-लोगों, आधुनिक समाज और इतिहास में बदलाव के बारे में उनकी जानकारी पर्याप्त होगी और वे इन सवालों का जवाब दे पाएंगे।

लेकिन मेरी शाब्दिक बहस कोई प्रभाव छोड़ पा रही हो ऐसा नहीं लग रहा था। तो थक कर मैंने कहा, "अच्छा तो यह बताओ कि आपकी राय में 6वीं क्लास में सबसे खराब विद्यार्थी कौन से हैं। मैं जाकर उनको खोजूंगी और देखूंगी कि वो जवाब दे पाते हैं कि नहीं।" और सबसे खराब बच्चों के नाम तो सब शिक्षकों की ज़ुबान पर थे। उन्होंने मुझे दो नाम दिए, उनमें से एक अनुपस्थित था।

दूसरे बच्चे को मैंने कक्षा से बाहर बुलाया। ऐसा लगा कि वो घबराया हुआ था कि उसे कोई सज़ा मिलने वाली है, और वो यह सोचने की

कोशिश कर रहा था कि यह सज़ा किस खता की होगी।

तो मैंने उसे बताना शुरू किया कि कुछ दूसरे शिक्षकों का ख्याल है कि कक्षा छह के विद्यार्थी मेरे कुछ सवालों का जवाब नहीं दे पाएंगे लेकिन मेरा ख्याल इससे बिल्कुल उलट है और मैं इसे सिद्ध करना चाहती हूं। मैंने उस बच्चे से कहा कि मुझे पूरा विश्वास है कि तुम इन सवालों का जवाब दे सकते हो।

मैंने उसे पर्चा दिया जिस पर वे सवाल लिखे हुए थे और कहा कि सवालों को पढ़कर पीछे उनका जवाब लिख देना। वैसे अगर सच कहूं तो मुझे इस बच्चे पर उसका आधा विश्वास भी नहीं था जितना मैं दिखाने की कोशिश कर रही थी। मैं उस बारे में बिल्कुल भी नहीं सोचना चाहती थी कि यदि बच्चा बिल्कुल ही अयोग्य सिद्ध होता है तो मैं शिक्षकों को कैसे अपना मुंह दिखाऊंगी।

थोड़ा झिझकने के बाद – लेकिन बिना किसी के सहयोग के – बच्चे ने जो जवाब लिखे वो यह थे:

1. यदि इंसानों की भी जानवरों के समान घने बालों वाली खाल होती तो दुनिया में कपड़े होते ही नहीं। लोग ग्रीनलैंड चले जाते जहां बर्फ ही बर्फ है।

(If people have fur on their skin today there will be no clothes in this world and they want to some places like Greenland where they have ice and ice).

2. उन्हें पत्थर का युग इसलिए कहा जाता है क्योंकि उस समय कपड़े नहीं थे और आज मिलने वाली बहुत-सी चीज़ें भी नहीं थीं।

(These are called stone age because they have no clothes and many things which are today).

3. वे अलग-अलग इसलिए रह रहे हैं क्योंकि उन्हें भाषा के बारे में बिल्कुल भी नहीं मालूम है। वे बिना खेती किए इसलिए ज़िंदा हैं क्योंकि वे खाने के लिए जानवरों का शिकार करते हैं।

(The are living seprately because they do not know about the languages. They live without farming they kill the animals to eat them).

जब मैंने इन जवाबों को पढ़ा तो चकित ही रह गई। कक्षा के सबसे खराब विद्यार्थी ने तीनों सवालों के जवाब दे दिए – जिन्हें लगभग 50 फीसदी सही माना जा सकता था। अगर मुझे नंबर देने को कहा जाता तो मैं तो इस बच्चे को 50 फीसदी से अधिक नंबर देती।

इसने तो कुछ ऐसी चीज़ों का ज़िक्र किया था जो कि मेरे दिमाग में भी नहीं आई थीं, और वे काफी रोचक और प्रेरक थीं। जैसे कि पहले सवाल के बारे में जो मैंने सोचा होता उसमें कपड़ा उद्योग की बात आती; शायद इस बारे में सोचा होता कि किस तरह फैशन समाज को प्रभावित करता है। लेकिन मैंने यह तो बिल्कुल ही नहीं सोचा होता कि घने बालों वाले लोग ग्रीनलैण्ड जैसे हिस्सों में बसने. . . की सोचते। मुझे यह भी काफी रोचक लगा कि बच्चे ने भाषा को एक कारक के रूप में देखा कि लोग कहां और कैसे रहेंगे। अगर आप मुझसे पूछें तो यह तो काफी विकसित सोच का स्तर माना जाएगा।

मैंने उसे बताया कि उसके जवाबों से मैं कितनी खुश हुई। उसससे यह भी कहा कि मुझे मालूम था कि वो कर सकता है और उसने करके दिखा दिया। मैंने उससे पूछा कि क्या कभी किसी ने उसे इन सवालों के जवाब के बारे में बताया है। उसने कहा कि उसने तो बस अभी सोचा था। मैंने उससे पूछा कि क्या वो कक्षा के सबसे होशियार बच्चों में से एक है। उसने थोड़ा-सा शर्माते हुए जवाब दिया. . .कि हां वो है। और इसके बाद वो कक्षा की ओर दौड़ पड़ा, पक्की बात है कि वो अपने बारे में पहले के मुकाबले काफी बेहतर महसूस कर रहा होगा।

यह सही था कि इस बच्चे ने व्याकरण और भाषा की दृष्टि से कई गलतियां की थीं, परन्तु अपनी बातें समझाने में उसे इनसे कोई दिक्कत नहीं आई थी। बल्कि लिखने में उसने जिस तरह भारतीय शैली का इस्तेमाल

किया और 'बर्फ और बर्फ' जैसे मुहावरों का प्रयोग किया, वो मुझे अच्छा लगा। बिल्कुल निश्चित है कि इतिहास के शिक्षक ने उसके जवाबों को लाल गोलों से भर दिया होता।

लेकिन वो लाल गोले क्या उसमें निराशा नहीं भर देते — और खासतौर से जब कि छात्र का हर पर्चा ऐसे लाल गोलों से भरा हो? यदि शिक्षिका का ध्येय है कि बच्चों को और बेहतर करने में मदद करे; और अगर ये लाल गोले मदद नहीं कर रहे, तो थोड़ी-सी हौसला अफज़ाई क्यों नहीं? क्यों बच्चे सिर्फ भाषा में दिक्कत की वजह से इतिहास, भूगोल, विज्ञान और गणित आदि में सज़ा पाएं?

दुर्भाग्यवश यह कहानी का अंत नहीं था। कक्षा के सबसे खराब बच्चे के जवाब जब और भी शिक्षकों ने देख लिए तो मैंने पूछा कि क्या वो अब ऐसे सवालों को परीक्षा के पर्चे में शामिल करने के बारे में सोचेंगे। उनका कहना था कि नहीं वे अभी भी नहीं मानते कि सभी बच्चे ऐसे सवालों का जवाब दे सकते हैं जिनके बारे में उन्हें पहले से नहीं पता हो। बहुत से कारण थे उनके पास — "शायद यह बच्चा कुछ हद तक सफल रहा हो पर औरों का क्या? शायद मैंने उस बच्चे की मदद की थी। अगर याद करने के लिए सवाल और जवाब न दें तो पालक शिकायत करेंगे। और फिर उसके जवाब सही नहीं थे क्योंक उसे लिखना चाहिए था कि . . . ."

जिन शब्दों ने मुझे इतना उत्साहित किया था शायद उनका असर उन सब पर वैसा नहीं पड़ा। शायद बच्चों के काम को आंकने के हमारे पैमाने ही फर्क हैं।

कैरन हैडॉक: चंडीगढ़ के एक स्कूल में अध्यापनरत; चित्रकार; और बायोफिज़िक्स में शोधकार्य।

बौद्ध धर्म ब्राह्मणवाद के खिलाफ था यह इसलिए मान लिया जाता है कि ब्राह्मणों से त्रस्त दलित जातियों और ब्राह्मणों से स्पर्धा करने वाले क्षत्रिय या व्यापारी वर्गों ने बौद्धमत को भारी मात्रा में समर्थन दिया होगा। यह भी मान लिया जाता है कि ब्राह्मण इस नई विचारधारा से दूर रहे। क्या वास्तव में बुद्ध के अनुयायियों में दलित सर्वाधिक थे? क्या ब्राह्मणों से उन्हें कोई समर्थन नहीं मिला? चलिए बौद्ध ग्रंथों से उजागर होने वाले कुछ आश्चर्यजनक तथ्यों का सामना करें। उस समय के समाज में वैचारिक परिवर्तन के नए आयाम समझें।

प्रारंभिक बौद्धों की सामाजिक पृष्ठभूमि

बौद्धधर्म का समाज के कुछ खास वर्गों के साथ कैसा संबंध था, इस विषय पर विभिन्न मत प्रचलित हैं, जो ठोस मौलिक सामग्री के अभाव में ज़्यादातर आम धारणाएं मात्र नज़र आती हैं। इनमें से कुछ सामान्य धारणाएं या तो बौद्ध मूल ग्रंथों के सतही सर्वेक्षण के आधार पर बना ली गईं, जिनमें वर्णित कुछ नाम पाठकों की नज़र में चढ़ गए। या कुछ धारणाएं इसलिए बनी क्योंकि लोगों ने ग्रंथों का काल-क्रमानुसार स्तरीकरण करके बात समझने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया, और सारे बौद्ध साहित्य को एक समरूप इकाई मान लिया।

इसी संदर्भ में रिस डेविड्स और बी. जी. गोखले के विश्लेषण उन साक्ष्यों पर आधारित हैं जो अपेक्षाकृत बहुत बाद में, पांचवी सदी ईस्वी यानी बुद्ध के 900 साल बाद, लिखे गए 'भाष्य' में मिलते हैं। अतः उनमें कुछ गंभीर दोष आ गए हैं। भाष्य में लोगों के वर्गीकरण पर अनेक कारणों से भरोसा नहीं किया जा सकता। जिस काल में 'भाष्य' लिखे गए उस समय तक बौद्ध धर्म के प्रारंभिक पाली ग्रंथों में दिए गए कई वर्गों का अर्थ बदल चुका था। जैसे प्रारंभिक पाली ग्रंथों में उल्लेखित अनेक 'गहपति' (गृहपति), भाष्य और जातक के लिखे जाने तक सेट्ठि (श्रेष्ठि) में परिवर्तित हो गए

पिछले पृष्ठ पर दी गई बुद्ध की मूर्ति ईस्वी सन् 200 में बनाई गई है। मूर्तिकला की इस शैली को गांधार शैली कहते हैं। भारत पर यूनानी आक्रमण के बाद भारत के उत्तर-पश्चिमी हिस्सों में गांधार कला शैली विकसित हुई। मूर्तिकला की इस शैली पर यूनानी असर पड़ा है। बुद्ध के घुंघराले बाल, उनके कपड़ों पर पड़ी सिलवटें और सादा आभामंडल आदि इस शैली की खास बातें थीं।

थे। ऐसी ही कई अन्य विसंगतियां भी समझ में आई हैं।

जांच-पड़ताल का तरीका

इस लेख में हम प्रारंभिक पाली धर्मग्रंथों में आए उन सारे नामों का विश्लेषण करेंगे जिनकी सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि का परिचय मिलता है। हम बौद्धों को दो श्रेणियों में विभाजित करेंगे -- एक वे जो संघ में शामिल हो चुके थे -- भिक्खु (भिक्षु) और दूसरे वे जो संघ के बाहर रहते हुए उसका समर्थन करते थे। अधिकाधिक यथार्थ को बनाए रखने की दृष्टि से इस विश्लेषण में हम केवल उन्हीं नामों पर विचार करेंगे जिनकी सामाजिक पृष्ठभूमि का परिचय स्रोत ग्रंथों से मिलता है। इसका मतलब यह है कि इसमें ऐसे अनेक नामों को छोड़ दिया गया है जिनकी जानकारी विभिन्न भाष्यों में तो मिलती है परंतु वे मूलग्रंथों में स्पष्ट रूप से नहीं पाए जाते।

नामों को उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि के अनुसार श्रेणीबद्ध करने के लिए हमने बौद्ध मूल ग्रंथों में पाए जाने वाले सामाजिक स्तरीकरण के सिद्धांतों को अपनाया है। इन बौद्ध मूलग्रंथों में जिन श्रेणियों को सामान्यत: 'उच्चकुल' बतलाया गया है, उनमें ऐसे समूह आते हैं -- खतिय, ब्राह्मण, गहपति और एक चौथा विविध व्यक्ति समूह (जिसमें हमने सेट्ठियों को भी रखा है)।

ऊपर बताई गई चार श्रेणियों के अलावा दो अन्य सामाजिक समूह और हैं। एक में 'नीचकुल' के लोग आते हैं और दूसरे में परिब्बाजक (परिव्राजक)। सारे नीचकुलों को यहां एक ही समूह में रखा गया है ताकि सुविधा भी रहे और मूल ग्रंथों में उनका इसी रूप में बहुधा उल्लेख किया गया है।

चूंकि 'नीचकुल', 'हीनकम्म' और 'हीनसिप्प' परस्पर संबंधित हैं अत: निम्न व्यवसायिक श्रेणियों को नीच कुलों में रखा गया है। इसी प्रकार 'परिब्बाजक' को एक अलग श्रेणी में रखा गया है क्योंकि सन्यासी हो जाने के कारण उनका सामाजिक आधार लुप्त हो जाता है।

1. जो संघ में शामिल हुए (भिक्खु)

ब्राह्मण: अगले पेज पर दी गई तालिका के आंकड़ों को और अधिक स्पष्ट करना आवश्यक है। यहां पर संघ के 'ब्राह्मण' घटक में वे छह ब्राह्मण भी शामिल हैं जो बुद्ध से मिलने और संघ में प्रवेश ग्रहण करने के पहले 'परिब्बाजक' हो

तालिका: 1

ब्राह्मण	39
खत्तिय	28
उच्चकुलीन	21
गहपति	1
नीचकुल	8
परिब्बाजक	8
कुल	105

चुके थे।

दो और को ब्राह्मण गुरुओं के शिष्य बताया गया है। अतः संघ में शामिल होने वाले 39 ब्राह्मण में से आठ पहले ही धार्मिक उद्देश्यों की प्राप्ति के प्रयासों से संबद्ध थे।

सारिपुत्त, मोग्गल्लान और महाकस्सप जैसे बुद्ध के कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण शिष्य इसी समूह में आते हैं, शेष 31 ब्राह्मण जिन्होंने संघ में प्रवेश लिया वे गृहस्थ थे।

खत्तिय (क्षत्रिय): संघ के खत्तिय घटक में गण-संघों के 22 प्रतिनिधि थे। 5 सदस्य राजकुलों या राजपरिवारों के थे और एक भिक्खु (भिक्षु) ऐसा था जिसके बारे में इसके सिवाय कोई ब्यौरा नहीं मिलता कि वह खत्तिय था।

गण संघों के 22 भिक्खुओं में 16 शाक्य थे (उनमें से 9 बुद्ध के परिवार के थे), एक 'लिच्छवि', दो 'वज्जि', दो 'मल्ल' और एक 'कोलि' था। राजपरिवारों से आने वाले भिक्खु राज्यों में ही रहने वाले थे और उनमें से दो मगध के थे।

गहपति*: संघ की एक विशेष उल्लेखनीय बात यह थी कि उसमें 'गहपतियों' की संख्या बहुत ही कम थी। केवल एक ही 'गहपति' उसका सदस्य था। उससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि किसी गहपति या गहपतिपुत्त ने संघ में प्रवेश नहीं लिया। संघ में उनका एक मात्र प्रतिनिधि एक भिक्खुनी थी जो पहले एक गहपति की पत्नी रह चुकी थी।

उच्चकुल: इसके विपरीत उच्चकुलों के 22 भिक्खुओं में से 14 'सेट्ठिकुलों' में से थे। उच्चकुल के दो प्रतिनिधि थे – समृद्धशाली 'गोपकदम्पति', धानिया और उसकी पत्नी। दो कुलीन पुत्र/पुत्री थे – एक प्रांतीय राज्यपाल का पुत्र और दूसरी एक गणिका। इनके अलावा एक मंत्री का बेटा था और दो कुलीन परिवारों से थे।

नीचकुल: संघ का नीचकुल घटक बहुत छोटा था और उसकी स्थिति विषमता-

* बौद्धग्रंथों में गहपति शब्द समृद्ध कृषकों के लिए उपयोग किया जाता है जिनके पास अपनी ज़मीन, नौकर-चाकर और दास होते थे। अनाज के भरपूर भंडार थे और वे लगान देने के कारण राज्य के आधार बन गए थे। अतः गहपति और सामान्य गृहस्थों में फर्क करना होगा।

पूर्ण थी। उसमें दो 'नहापिता' (नाई), एक 'कुंभकार' (कुम्हार), एक 'केवट्ट' (मछुआरा), एक गिद्ध प्रशिक्षक, एक 'दासीपुत्त' (दासी का पुत्र), एक अभिनेता और एक हाथी प्रशिक्षक शामिल थे।

ब्राह्मण मूल के कुछ प्रमुख भिक्खु

संघ में सबसे बड़ा समूह होने के अलावा 'ब्राह्मण' बुद्ध के निकटतम साथियों में काफी संख्या में उपस्थित थे। सारिपुत्त को बुद्ध का 'धम्म सेनापति' और 'अग्गसावक' (प्रमुख शिष्य) कहा गया है। मोग्गल्लान की गिनती उनके बाद की जाती है। बुद्ध के बाद इन्हीं दोनों को सबसे अधिक मान्यता मिली थी। बुद्ध अपने सिद्धांतों के प्रचार के लिए इन पर भरोसा करते थे।

संघ और बुद्ध से घनिष्ठ रूप से जुड़े तीसरे अत्यंत महत्वपूर्ण ब्राह्मण थे महाकस्सप। उन्हें बुद्ध के ऐसे प्रमुख शिष्य के रूप में दर्शाया गया है जो धर्म विधान का कठोरतापूर्वक पालन करते थे और उनकी स्वयं की आवश्यकताएं बहुत ही कम थीं। वे अनेक वर्षों तक वन में रहे और इस कारण वे बुद्ध के निकट नहीं थे। वे अनुशासन के सदैव हामी रहे। बुद्ध के निर्वाण ले लेने के पश्चात महा-कस्सप का महत्व बहुत बढ़ गया और उनकी पहल का परिणाम यह हुआ कि राजगृह में प्रथम परिषद बुलाई गई जिसकी अध्यक्षता उन्होंने स्वयं की। उन्होंने यह समझ
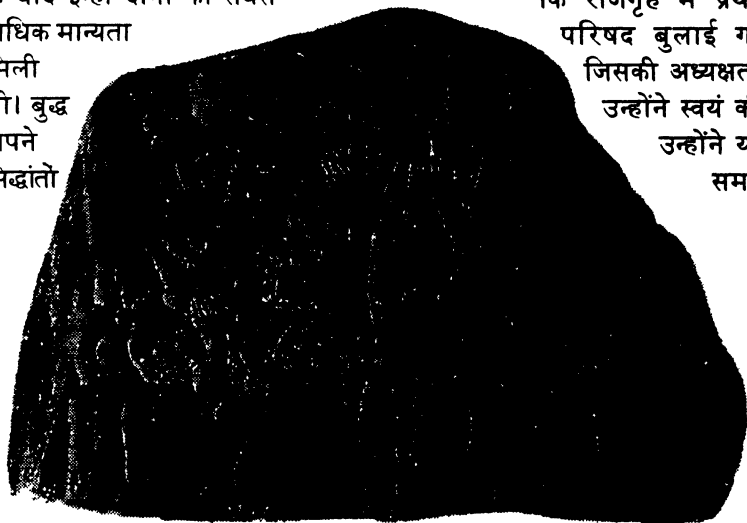
महाकस्सप द्वारा बौद्ध धर्म की दीक्षा लेने का एक दृश्य। ईस्वी सन् 200 में, चूने के पत्थर पर उकेरा गया यह दृश्य अमरावती (आंध्रप्रदेश) में मिला है।

लिया था कि संघ के विघटित हो जाने की संभावना है और बुद्ध की अनुपस्थिति के कारण भिक्खुओं में अराजकता फैल सकती है।

बुद्ध की मृत्यु के पश्चात के निर्णायक दिनों में संघ को गुमनामी के अंधेरे में खो जाने से रोकने और उसे मज़बूत बनाने में महाकस्सप की तत्काल निर्णय क्षमता, संगठन कौशल और नेतृत्व क्षमता का बहुत बड़ा हाथ था। 'महापरिनिब्बान सुत्त' के अनुसार बुद्ध के शव ने तब तक जलने से इंकार कर दिया था, जब तक महाकस्सप आकर उसे श्रद्धांजलि न दे दें। राजगृह की प्रथम परिषद में महाकस्सप के मार्गदर्शन में 'विनय पिटक' एवं 'सुत्त पिटक' का संग्रह किया गया।

खात्तय मूल क प्रमुख ाभक्खु

बौद्ध आख्यान में स्वयं बुद्ध के अलावा सबसे अधिक सुप्रसिद्ध व्यक्तित्व आनंद का है। वह बुद्ध के अन्य पांच रिश्तेदारों के साथ संग में शामिल हुआ था। इन रिश्तेदारों में आनंद बुद्ध के सबसे घनिष्ठ सहयोगी थे और उसके प्रति बुद्ध के हृदय में सबसे अधिक स्नेह था। आनंद अपने आपको बुद्ध का आध्यात्मिक उत्तराधिकारी मानते थे। बुद्ध के जीवन के अंतिम दिनों में सारा समय आनंद उनके निजी सहायक रहे और श्रद्धालु अनुचर के समान सदैव उनके साथ रहे। आनंद ने 'सुत्त पिटक' के रूप में बुद्ध की शिक्षाओं के संग्रह में जो विशिष्ट भूमिका निभाई थी उसका यही कारण था। प्रथम चार 'निकायों' का प्रत्येक सुत्त इस वक्तव्य के साथ शुरू होता है – 'एवम में सुतम' (मैंने ऐसा सुना)। आनंद सहृदय और मानवता से परिपूर्ण व्यक्ति था। बुद्ध के प्रति उसे गहरा प्रेम था। बौद्ध संघ में महिलाओं को शामिल करवाने में उसका महत्वपूर्ण योगदान था।

नीचकुलों से आए भिक्खु

बुद्ध के प्रमुख शिष्यों में 'नीचकुलों' का एकमात्र प्रतिनिधि उपालि ही था जो तीन कुलीन शाक्यों का नाई था। 'चुल्लवग्ग' में दिए गए वर्णन के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि उपाली उन शाक्यों को, जो संघ में शामिल होने जा रहे थे, केवल सीमा तक पहुंचाने गया था। सीमा पर उन्होंने अपनी बहुमूल्य वस्तुओं को कपड़े में बांधकर उपाली को दे दिया और कहा कि अब तुम लौट जाओ। ये वस्तुएं तुम्हारे जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त होंगी। शुरू में उपालि लौट पड़ा परंतु थोड़ी देर बाद उसे उस गठरी से बेचैनी होने लगी। उसने अपने आपसे कहा कि ये शाक्य खूंखार हैं। वे सोचेंगे कि मैंने ही इन नवयुवकों को सर्वनाश की दिशा में धकेल दिया है और वे मुझे
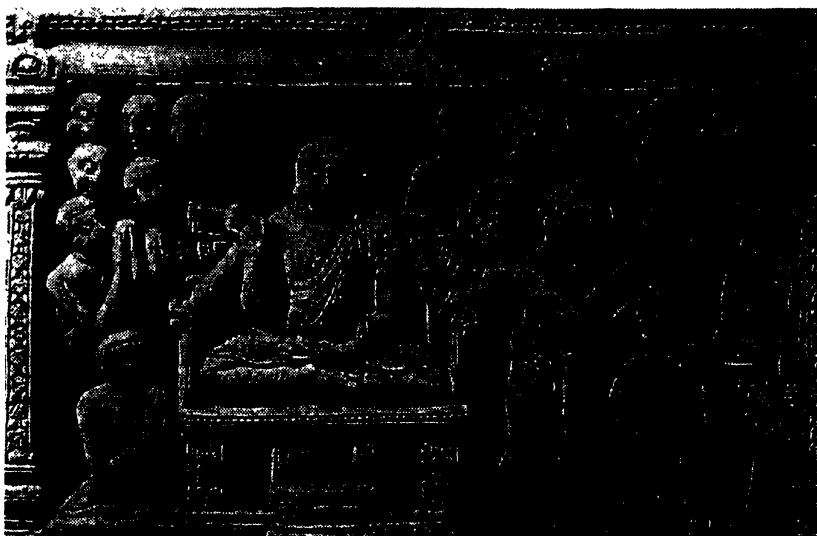
छह शाक्य राजकुमार और उनके साथ उपालि नाई को बौद्ध धर्म की दीक्षा लेते दिखाता दृश्य। ईस्वी सन् 300 में नागार्जुनकोंडा में उकेरी इस कृति में दीक्षा से पूर्व सिर मुंडवाने का काम हो रहा है।

मार डालेंगे। कपिलवस्तु वापस लौटने के बदले उसने शाक्यों के साथ संघ में प्रवेश ले लेने का निर्णय लिया।

शाक्यों ने बुद्ध से पहले उपाली को दीक्षा देने का और संघ में उनके पहले स्थान देने का अनुरोध किया ताकि उनके अत्यधिक अभिमान में कुछ कमी आ सके। संघ में प्रवेश ले लेने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि 'विनय' को आत्मसात करके उपालि ने अपना एक विशेष स्थान बना लिया।

उसे विनय स्वयं बुद्ध ने ही सिखाया और वह 'विनया धारानम' के रूप में जाना जाने लगा। 'अंगुत्तर निकाय' में दर्शाए गए प्रमुख शिष्यों में उसे ऐसे शिष्य के रूप में बताया गया है जिसे सारे अनुशासन संबंधी नियम कंठाग्र थे। बुद्ध के जीवन काल में भी उपालि को कभी-कभी विवादों के संबंध में अपना निर्णय देने के लिए बुलाया गया था। राजगृह की परिषद में उपालि ने अनुशासन के नियमों को 'विनय पिटक' के रूप में सूत्रबद्ध करने में महाकस्सप को सहायता देकर एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अन्य प्रमुख भिक्खु

अन्य शिष्य जिन्हें ु का घनिष्ठ सहयोगी बताया गया है, इनमें महा-कोट्ठित, महाचुण्ड, महाच्चन और पुण्ण मंतानिपुत्त ब्राह्मण थे। महाचुण्ड, सारिपुत्त के छोटे भाई थे। महाकप्पिन, राहुल और देवदत्त खत्तिय थे। राहुल बुद्ध के पुत्र थे और देवदत्त उनके चचेरे भाई थे।

2. उपासक (गृहस्थ समर्थक)

हम उपासक शब्द का उपयोग अत्यधिक व्यापक अर्थों में कर रहे हैं जिसमें वे सारे लोग शामिल हैं जिन्होंने प्रत्यक्षत: संघ में प्रवेश तो नहीं लिया था किंतु जो बुद्ध के विचारों से सहानुभूति रखते थे। उन्होंने बुद्ध, धम्म और संघ ये 'तिरत्न' (त्रिरत्न) स्वीकार किए थे। इसमें वे अनेक व्यक्ति भी शामिल हैं जिन्हें केवल संघ का समर्थन करने वाला बताया गया है। समर्थन कई रूपों में हो सकता है जैसे भूमिदान करना, विहार बनवाना, भिक्खुओं के लिए चोलों, औषधियों या अन्य वस्तुओं का दान करना आदि। किंतु प्राय: इसका अर्थ भिक्षुओं को भोजन कराना रहा है। यह कोई महत्वहीन कार्य नहीं था बल्कि इसे सामान्यजन का प्राथमिक कार्य माना जा सकता है जो भिक्खुओं की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति का ध्यान रखते थे। इसके बिना भिक्खु 'निब्बान' (निर्वाण) के अपने लक्ष्य की पूर्ति का कार्य करने में असमर्थ रहते।

बौद्ध भिक्षुओं और सामान्यजनों के बीच सर्वाधिक महत्वपूर्ण रिश्ता था भिक्खुओं को भोजन करवाना; और इसके बदले भिक्खु सामान्यजनों को धम्म की शिक्षा देते थे।

मूलग्रंथों में उल्लेखित 175 नाम ऐसे हैं जिन्हें समर्थक या अनुयायी माना गया है। हमने अपनी सूची में इन्हें ही शामिल किया है। यहां भी हम देखते हैं कि ब्राह्मण सबसे अधिक हैं, उनके बाद गहपति आते हैं। यहां

तालिका: 2

ब्राह्मण	76
गहपति	33
खत्तिय	22
उच्चकुल	26
नीचकुल	11
परिब्बाजक	7
कुल	175

भी 'नीचकुल' के लोग कम संख्या में ही हैं।

उपासकों में ब्राह्मण

76 ब्राह्मण समर्थकों में से 8 काफी धनी बताए जाते हैं। इनके पास ब्रह्मदेय ज़मीनें थीं। पाली साहित्य में उनके द्वारा बुद्ध के मतों को स्वीकार करने को काफी महत्व दिया गया है। चूंकि वे महत्वपूर्ण ब्राह्मण थे, उनका आम लोगों पर काफी प्रभाव था। इन सबके अपने शिष्यगण भी थे। बौद्धमत को स्वीकार करने से यह संभावना थी कि अपने शिष्यों के बीच उनका कद कम हो जाएगा। ऐसा ही एक ब्राह्मण शोणदंड, चम्पा का समृद्ध भूस्वामी ब्राह्मण था। जब बुद्ध चम्पा के पास ठहरे हुए थे तो कई ब्राह्मण गहपतियों ने उनसे मिलने का निश्चय किया। शोणदंड ने भी यही तय किया, लेकिन उससे मिलने आए कुछ ब्राह्मणों ने उसे ऐसा करने से मना किया। उनका कहना था कि ऐसा करने से महान शोणदंड की ख्याति कम हो जाएगी और समण (श्रमण) गौतम की ख्याति में वृद्धि होगी। फिर भी वह बुद्ध से मिलने गया। रास्ते में उसे इस बात की चिंता हुई कि कहीं बुद्ध से संवाद में उसकी बेइज्ज़ती न हो जाए। उसे डर था कि अगर ऐसा हुआ तो वहां जमा लोग उसके बारे में आदर से बात नहीं करेंगे, उसकी ख्याति घट जाएगी और उसके साथ आय भी। 'आखिर हम अपनी ख्याति के अनुरूप ही भोग सकते हैं।' सौभाग्यवश बुद्ध के साथ उसका संवाद सुखद रहा।

शोणदंड ने बुद्ध को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित किया लेकिन उसने बुद्ध से गुज़ारिश की कि उसे भरी सभा में उठकर उन्हें नमस्कार करने से छूट मिले। उसने कहा – "अगर मैं भरी सभा में अपने आसन से उठकर प्रणाम करूंगा तो सभा इसे स्वीकार नहीं करेगी। जिसकी ख्याति में गिरावट आए उसकी आय भी कम हो जाएगी। अगर मैं सभा में बैठा हूं और मैं अपने हाथों को उठाकर आपको प्रणाम करूं तो आप उसे मेरा आसन से उठने के समान मान लीजिए।"

कई ब्राह्मण समूह बुद्ध के पास आते थे और उनके समक्ष कोई प्रश्न या समस्या रखते थे। प्रश्न का उचित उत्तर मिलने पर वे बुद्ध के शिष्य बन जाते थे। ऐसे कई समूहों का ज़िक्र मिलता है।

बुद्ध के महत्वपूर्ण गहपति समर्थक

यद्यपि अनेक प्रभावशाली ब्राह्मणों को बुद्ध का उपासक होते दर्शाया गया है परंतु प्रारंभिक पाली ग्रंथों में उनके निरंतर महत्व को शायद ही बताया गया है। शोणदण्ड, पोक्करासादि अथवा कूटदंत ने जब उपासक होने की घोषणा की तब बुद्ध और उनके साथ के

बौद्ध धर्म के समर्थन को व्यापक बनाने में रिश्तेदारी संबंधों का महत्व

ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्ध संघ और सामान्य बौद्धजन दोनों ही के विकास में रिश्तेदारी का विशेष महत्व रहा है। मूल ग्रंथों मे ही रिश्तेदारी संबंधों की संगतता के अनेक उदाहरण मिलते हैं। उनमें से कुछ पर हम संक्षेप में यहां विचार करेंगे।

बुद्ध के बारह प्रमुख शिष्यों के अंतरंग मंडल में से तीन बुद्ध के खास रिश्तेदार – आनंद, राहुल और अनुरुद्ध थे। इनमें से राहुल बुद्ध का पुत्र था। राहुल का उक्त मंडल के सदस्य होने का इसके सिवाय कोई और कारण नहीं हो सकता कि उसके रिश्तेदारी संबंध को महत्व दिया गया था। मंडल के अन्य सदस्यों की तरह उसमें कोई विशेष योग्यता थी ऐसा कहीं नहीं कहा गया है।

आनंद और अनुरुद्ध ने संघ में जो प्रमुख भूमिका निभाई उसके संबंध में हम पहले ही बता चुके हैं। बुद्ध के अंतरंग बारह शिष्यों में बुद्ध के इन तीन रिश्तेदारों के अलावा तीन ऐसे भी थे जो एक-दूसरे के रिश्तेदार थे। वे थे – सारिपुत्त, रेवत और महाचुंड, जो तीनों भाई थे।

सदस्यों को संघ में प्रविष्ट होने के लिए आकर्षित करने और सामान्यजन में बौद्ध धर्म प्रसार करने में रिश्तेदारी संबंधों का महत्व था। बौद्ध समाज में पारिवारिक संबंधों की महत्ता को बुद्ध ने तब स्वयं स्वीकृति दे दी जब उन्होंने रिश्तेदारी के आधार पर अनेकों नियमों में ढील देने की हामी भर दी थी।

परिब्बाजकों के लिए अनिवार्य चार मास के प्रशिक्षण काल के नियम को 'जटिलों' के मामले में खत्म कर देने के अलावा उन्होंने शाक्यों के लिए भी यह नियम समाप्त कर दिया था। इस अपवाद को प्रदत्त करते समय बुद्ध ने स्पष्ट रूप से यह कहा था कि उन्होंने पारिवारिक संबंधों के आधार पर ऐसा किया था। उन्होंने कहा "हे भिक्खुओं! यह अपवादात्मक विशेष सुविधा मैंने अपने कुटुम्बीजनों के लिए स्वीकार की है।" पारिवारिक संबंधों के आधार पर नियमों को शिथिल बना देना शायद उस काल का सर्वसम्मत मानक था क्योंकि उसकी कोई आलोचना की गई हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता। पारिवारिक संबंधों का यह पहलू एक अन्य क्षेत्र में भी निर्णायक महत्व का सिद्ध हुआ। वह था संघ में स्त्रियों को प्रवेश देने का प्रश्न। प्रारंभ में यह अनुरोध 'महापजापति गोतमी' की ओर से आया था, ज़ो बुद्ध की काकी और उनकी धायमां थी, किंतु बुद्ध ने उसे अस्वीकार कर दिया। आनंद ने बुद्ध को मनाने के लिए बुद्ध और महापजापति के बीच के पारिवारिक संबंध का उपयोग किया। तब बुद्ध ने इस अनुरोध को मान लिया और महापजापति दीक्षा ग्रहण करने वाली पहली भिक्खुनी बन गई। वरिष्ठतम सदस्य होने के कारण वह भिक्खुनी संघ की मुखिया भी थी, और बुद्ध व भिक्खुनी संघ के बीच मध्यस्थ का कार्य करती थीं।

भिक्खुओं को भोजन कराने के अलावा उन्होंने संघ को और किसी प्रकार की सहायता दी हो ऐसा ज्ञात नहीं होता। हालांकि प्रायः उनके पास काफी भूमि रहती थी किंतु उन्होंने संघ को कोई भूमि दान में नहीं दी। न ही उनके द्वारा संघ के लिए कोई विहार बनाए जाने का उल्लेख मिलता है। यहां तक कि चोगों (भिक्खुओं के वस्त्र) का दान भी उन्होंने शायद ही कभी किया हो।
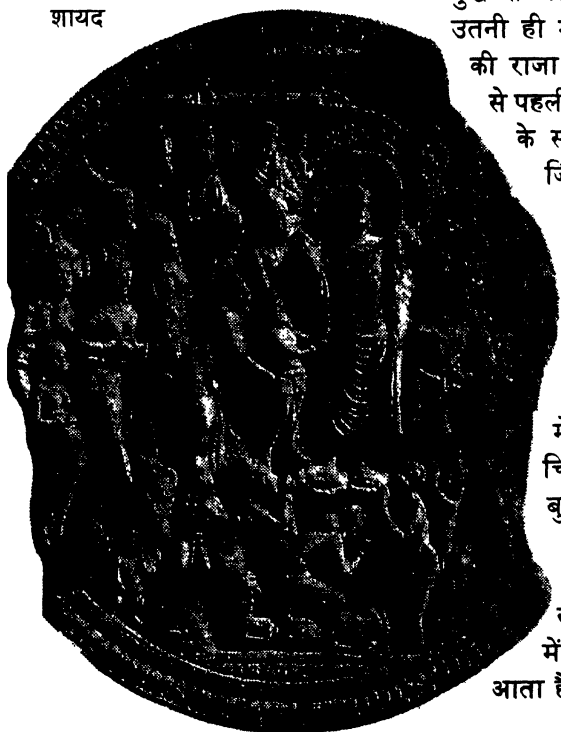
इसके विपरीत गहपति संघ का लगातार समर्थन करते पाए जाते हैं। प्रारंभिक धर्मग्रंथों में उपासकों के सर्वाधिक महत्वपूर्ण समुदाय के रूप में उनका उल्लेख मिलता है और उनके द्वारा बुद्ध की शिक्षाओं को स्वीकार किए जाने को अत्याधिक महत्व दिया गया है। गहपति अनाथपिण्डिक की बुद्ध से पहली मुलाकात कदाचित उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी बुद्ध की राजा बिंबिसार या अजातशत्रु से पहली मुलाकात। बुद्ध के जीवन के संदर्भ में उसका लगातार ज़िक्र आता है। उसने एक राजकुमार से जेतवन अत्यधिक कीमत पर खरीदकर संघ को दान में दिया। अनाथपिण्डिक के अलावा कई और गहपति भी थे जिनका उपासकों में महत्वपूर्ण स्थान था। चित्त, मेण्डक, संघन आदि। बुद्ध की सबसे प्रसिद्ध उपासिका थी विशाखा मिगारमाता जो गहपति समूह की थी। पाली साहित्य में उसका बार-बार ज़िक्र आता है।

बुद्ध का पुत्र राहुल अपने पिता से अपनी विरासत मांगते हुए। विरासत में बुद्ध ने उसको अपना उपदेश दिया और संघ में शामिल किया। अमरावती, आंध्रप्रदेश में दूसरी शताब्दी ईस्वी में उकेरा गया एक दृश्य।

उसे लगातार संघ को (खासकर भिक्खुणिओं को) कपड़े और भोजन देते हुए बताया गया है। उसने बुद्ध से आठ वरदान मांगे थे – संघ के भिक्खुओं को वर्षाकाल में कपड़े देना; श्रावस्ती आने वाले भिक्खुओं को भोजन कराना; श्रावस्ती से बाहर जाने वालों को भोजन कराना; बीमारों को भोजन कराना; बीमारों का उपचार करने वालों को भोजन कराना; बीमारों को दवाई देना; ज़रूरतमंदों को सतत चावल और कंजी देना; भिक्खुणियों को नहाने के वस्त्र देना।

सामान्य रूप में बुद्ध के प्रमुख शिष्यों में गहपति अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

अन्य महत्वपूर्ण समर्थक

बुद्ध के प्रमुख उपासकों में मगध के राजा बिंबिसार, अजातशत्रु और कोसल के प्रसेनजित थे। पाली ग्रंथों में बुद्ध और इनके रिश्तों को काफी महत्व दिया गया है। बिंबिसार ने संघ को वेणुवन दान में दिया जो संघ की पहली अचल संपत्ति थी। राजकुलों से संबंधित अन्य उपासकों में जीवक और जेट प्रमुख थे। जीवक राजपरिवार और संघ के भिक्खुओं का इलाज करता था। खत्तिय गणसंघ की कुछ प्रमुख हस्तियां भी बुद्ध के महत्वपूर्ण शिष्य रहे।

राजपुरुषों के अलावा कुछ सेट्ठियों का ज़िक्र यहां ज़रूरी है। राजगृह के
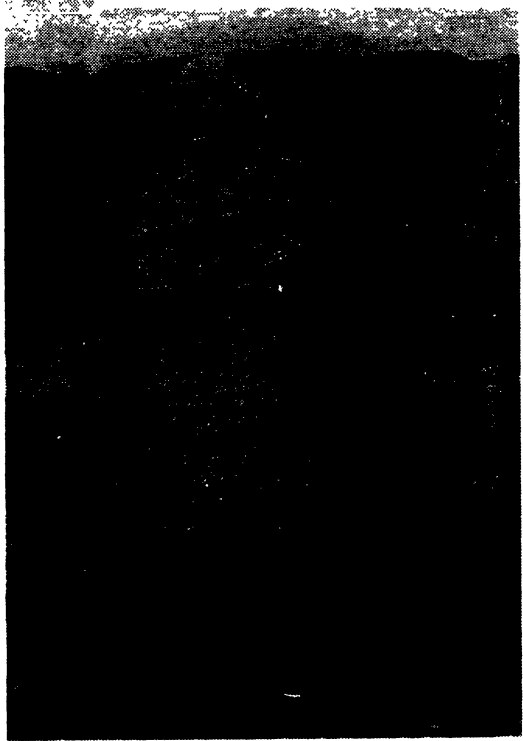
बुद्ध के परिनिर्वाण के समय गहरे दुख में डूबा हुआ आनंद। श्रीलंका में एक पहाड़ी पर उकेरी गई यह प्रतिमा 12वीं सदी में बनाई गई थी।

एक प्रमुख सेट्ठि ने बुद्ध की अनुमति से भिक्खुओं के रहने के लिए एक दिन में 60 विहारों का निर्माण किया। उसने सब भिक्खुओं को भोजन में बुलाकर, उन साठ विहारों को 'चातुदिस संघ (चारों दिशाओं के संघों) तथा वर्तमान और भविष्य के संघों' को दान में दिया। इन्हीं शब्दों का प्रयोग बाद में विहार दान संबंधी अभिलेखों में सदियों तक चलता रहा।

'नीच कुल' के एक मात्र उपासक पावा का 'कम्मर पुत्त' (कुम्हार पुत्र) चुंड था। चुंड के घर ही बुद्ध ने अपना आखिरी भोजन लिया था जिससे उन्हें बीमारी हो गई और अंत में मृत्यु हो गई।

बुद्ध स्पष्टतः जानते थे कि भोजन सामग्री का कुछ भाग ऐसा था जिसके परिणाम बुरे होंगे। उन्होंने चुंड को उसे अन्य भिक्खुओं को परोसने से मना कर दिया था।

उन्हें यह भी आशंका हो गई थी कि इससे चुंड को निंदा का भी सामना करना पड़ेगा। इसलिए अपनी मृत्यु के पूर्व उन्होंने यह भी स्पष्ट रूप से कह दिया था कि चुंड को इसका दोष नहीं दिया जाना चाहिए बल्कि इसके विपरीत उन्होंने कहा कि तथागत को अंतिम भोजन कराकर चुंड ने वही सम्मानीय स्थिति पा ली थी जो उनके ज्ञान के तत्काल बाद पहला भोजन कराने वाले व्यक्ति की थी। दोनों ही स्थितियां विशेष पुण्य दिलाने वाले कर्म की थी।

संघ के भीतर और संघ के बाहर बौद्धों में पाए जाने वाले ब्राह्मण घटक के संबंध में कुछ स्पष्टीकरण देना आवश्यक है।

3. प्रारंभिक बौद्धों के सामाजिक घटकों का विश्लेषण

यह प्रायः माना जाता है कि बौद्ध धर्म ब्राह्मणों के विरुद्ध था और जैसा पहले बताया गया है, इस धारणा का कुछ आधार भी है।

किंतु ब्राह्मणों का इतनी बड़ी संख्या में इसमें शामिल होने का क्या कारण था? कारण यह हो सकता है कि मूलतः बौद्धधर्म एक मोक्ष धर्म था जिसमें 'निब्बान' के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए संसार का परित्याग कर जीवन बिताना आवश्यक है। अधिकांश व्यक्तियों के लिए यह किसी तरह आसान नहीं था।

ब्राह्मणों ने बड़ी संख्या में इसलिए इसे स्वीकार किया क्योंकि वह ऐसा धार्मिक समुदाय था जिसका कम-से-

कम सैद्धांतिक दृष्टि से प्रमुख कार्य मोक्ष की प्राप्ति ही था। बुद्ध ने प्रायः इस विषय पर चर्चा की है और उन्होंने ब्राह्मणों का विरोध इसी कारण से किया था कि उन्होंने धार्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति का मूल मार्ग भुलाकर, उसके बदले सांसारिक जीवन अपना लिया था।

इतिहासकार लिल्ली ने यह सुझाव दिया है कि बौद्ध आंदोलन उच्चतर ब्राह्मणवाद का निम्न ब्राह्मणवाद के विरुद्ध विद्रोह था और वह तर्क देता है कि बुद्ध ने गृहस्थी करने वाले निम्नतर ब्राह्मणवाद में और गृहस्थी से विमुख रहने वाले श्रेष्ठतर ब्राह्मणवाद में कितना अंतर है यह स्पष्ट बतलाया। ब्राह्मण साधु परंपरा के विरोधी थे किंतु यह भी स्पष्ट है कि बहुत से ब्राह्मणों ने उस परंपरा को स्वीकार कर लिया था और वे परिब्बाजक बन गए थे। इन ब्राह्मणों ने बौद्धधर्म में, तत्कालीन ब्राह्मणवाद में पाए जाने वाले संसारोन्मुखी नैतिक मूल्यों का विकल्प देखा होगा। बुद्ध के सारिपुत्त, मोग्गल्लान और महाकस्सप जैसे सबसे प्रमुख शिष्य ब्राह्मण थे जो बुद्ध से मिलने के पहले ही परिब्बाजक बन गए थे।

बहुत से अन्य ब्राह्मण जो संसार का परित्याग करने में सक्षम नहीं थे वे उनकी शिक्षाओं को स्वीकार करके सामान्य अनुयायी बन गए। बौद्ध मूलग्रंथों में ऐसे ब्राह्मणों का प्रायः उल्लेख मिलता है जो यज्ञ कर्म की महत्ता और उसके वास्तविक अर्थ के संबंध में प्रश्न उठाते हैं। प्रमुख ब्राह्मणों द्वारा इन विषयों पर बुद्ध के विचारों को स्वीकार कर लिए जाने पर कदाचित उन ब्राह्मणों में भी, जो बौद्धधर्म के दायरे से बाहर थे, वाद-विवाद पैदा हो गया होगा; और पर्याप्त समय बीत जाने पर स्वयं ब्राह्मणीय व्यवस्था के रूपांतरण में सहायता मिली होगी।

इसके विपरीत बौद्ध आंदोलन में बड़ी संख्या में ब्राह्मणों के शामिल होने का विरुद्ध दिशा में भी प्रभाव पड़ा। बुद्ध की शिक्षाओं की स्वीकृति चाहे जितनी प्रामाणिक रही हो, ब्राह्मणों के साथ उनके पूर्ववर्ती परिवेश की बहुत-सी धारणाएं और विश्वास भी थे। उदाहरण स्वरूप ब्राह्मण बंधु यामेलु और टेकुला ने बुद्ध से अनुरोध किया था कि उन्हें संस्कृत में 'धम्म' की शिक्षा देने की अनुमति दी जाए। जब तक बुद्ध जीवित रहे संघ में उनके व्यक्तित्व के चमत्कारी प्रभाव और चुनौती-विहीन नेतृत्व के कारण इन प्रयासों को सफलता नहीं मिल सकी। किन्तु बाद में बौद्ध धर्म के विकास को इस ब्राह्मण घटक ने अनेक प्रकार से प्रभावित किया।

संघ में दूसरा सबसे बड़ा घटक खत्तियों का था और इसके संबंध में

भी कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक है। इतिहासकार ओल्डनबर्ग और वेबर का मत है कि ब्राह्मणों की बढ़ी हुई सामाजिक प्रधानता और उनकी प्रमुखता के दावों की प्रतिक्रिया स्वरूप खत्तियों ने बौद्ध धर्म को जन्म दिया। पर सोचने की बात यह है कि खत्तियों के हाथ में सारी राजनैतिक शक्ति थी, अत: उन्हें इस बैरागी परंपरा और संसार-त्यागी आदर्शों के विरुद्ध खड़ा होना चाहिए था। किंतु वे तो काफी संख्या में बौद्ध धर्म में शामिल हो गए। यह तर्क दिया जा सकता है कि चूंकि बुद्ध एक खत्तिय थे अत: स्वाभाविक रूप से उन्होंने अपने स्वयं के सामाजिक वर्ग के सदस्यों को इस नए आंदोलन में आकर्षित किया होगा। हो सकता है ऐसा हुआ हो, किंतु अधिक महत्वपूर्ण कारण समाज का वह स्वरूप है जिसमें बौद्ध धर्म का उद्भव हुआ।

यह महत्वपूर्ण बात है कि संघ में जो खत्तिय आए, उनमें से अधिकांश गणसंघों से आए। संघ के कुल अठाईस खत्तियों में उनकी संख्या बाईस थी। मेक्स वेबर ने यह तर्क दिया है कि मोक्ष सदृश अवधारणाओं से सारे शासक वर्ग अपने आपको दूर ही रखते हैं – केवल ऐसे समय को छोड़कर जबकि उनकी राजनैतिक शक्ति पर संकट आया हुआ हो। सामान्यत: शासक की धार्मिक प्रवृत्तियां क्षीण ही रहती हैं। वेबर के मतानुसार विशेष सुविधा प्राप्त सामाजिक समुदायों को एक सशक्त मोक्षोन्मुखी धर्म चलाने में सामान्यत: तभी सफलता मिल सकती है जब विसैन्यीकरण की स्थिति निर्मित हो गई हो और उनकी राजनैतिक गतिविधियां समाप्तप्राय: हो गई हों। इसके परिणाम स्वरूप मोक्षोन्मुखी धर्म प्राय: तब प्रगट होते हैं जब शासन करने वाला वर्ग अपनी राजनैतिक शक्ति खो बैठता है। ईसा पूर्व 6वीं शताब्दी में गणसंघों में यही स्थिति निर्मित हो गई थी।

बुद्ध के जीवन काल में कोसल और मगध के राजतंत्री राज्य गणसंघों को कुचल रहे थे। शाक्यों के राज्य को कोसल ने जीत लिया था और शक्तिशाली वज्जि गणसंघ को भी अजातशत्रु के आक्रमणों का सामना करना पड़ रहा था। स्वाभिमानी और स्वतंत्र शाक्य और वे सभी जिन्हें अपने खत्तिय होने का अभिमान था, राजनैतिक शक्ति अपने हाथों में रखने में असमर्थ होते जा रहे थे। उन्होंने अपनी उदात्त चेतना में इस तथ्य को महसूस कर लिया था – सारी वस्तुएं अस्थायी और परिवर्तनशील हैं। यही वह शिक्षा थी जो बुद्ध देते थे। तब कोई आश्चर्य नहीं कि उन्होंने बुद्ध के आह्वान को स्वीकार कर लिया। इतिहासकार कौशाम्बी ने भी गणसंघों

के ढह जाने पर टिप्पणी की है – "जो अपने योग्यतम सदस्यों को भी संतुष्ट नहीं रख सके। कुछ व्यक्ति अपने पास-पड़ोस के राज्यों में राजकीय सेवाओं में भरती हो गए तथा अन्यों ने भगवा बाना ओढ़ लिया।"

गहपति भिक्खु क्यों नहीं बने?

इस लेख को समाप्त करने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि गहपति आखिर भिक्खुओं में क्यों शामिल नहीं हुए। यह एक तथ्य है कि गहपति उपासकों के अत्यंत महत्वपूर्ण घटक थे, इसलिए उनकी भिक्खुओं में अनुपस्थिति असाधारण बात है। कोई भी तर्कसंगत विचार यह आशा करेगा कि संघ की संरचना देखने से, उस समाज पर प्रकाश पड़े जो संघ के बाहर था। केवल गहपति मात्र एक अपवाद हैं। जब हम यह देखते हैं कि अनेक सेट्ठि पुत्तों ने संघ में प्रवेश लिया था तब यह बात और प्रमुखता से उभरकर सामने आती है।

यह तर्क देना संभव है कि कतिपय सामाजिक श्रेणियों ने इतना तनाव महसूस नहीं किया जितना संसार के परित्याग के लिए आवश्यक है। साथ ही यह भी कि कुछ सामाजिक वर्गों में, जैसे भूमि स्वामी वर्ग, ऐसा तनाव आसानी से निर्मित नहीं होता। यह भी हो सकता है कि जिस आर्थिक और सामाजिक प्रणाली में गहपति रह रहे थे उसमें वैराग्य के लिए उपयुक्त परिस्थितियां पैदा नहीं हो सकीं।

हमें यह स्मरण रखना आवश्यक है कि वह ऐसा काल था जिसमें कृषि आधारित अर्थव्यवस्था ने निरंतर बढ़ती हुई नगरीय जनसंख्या को समर्थन दिया था। गहपति इस अर्थव्यवस्था का मूल आधार और प्रमुख करदाता थे। ऐसी श्रेणी के सामाजिक जगत से विमुख हो जाने से अर्थव्यवस्था और सामाजिक प्रणाली पर गंभीर दुष्प्रभाव पड़ता।

उत्पादन और प्रजनन ये दो क्षेत्र ऐसे थे जिनसे भिक्खुओं ने अपने आपको दृढ़तापूर्वक अलग रखा था। जबकि इसके विपरीत गहपति इन दोनों से विशेष रूप से जुड़े हुए थे। और इस प्रकार यद्यपि संघ में उनके प्रवेश के लिए कोई रोक नहीं थी, फिर भी उन्होंने उसके बाहर रहना ही उपयुक्त समझा। लेकिन बौद्ध आंदोलन के लिए गृहस्थों का समर्थन अत्यन्त ज़रूरी था। इस तरह समर्थन देने वालों में गहपति सबसे महत्वपूर्ण बन गए।

उमा चक्रवर्ती – दिल्ली विश्वविद्यालय में इतिहास का अध्यापन। तत्पश्चात ऐच्छिक सेवा निवृति ली।
अनुवाद : रमेश चंद्र बरगले। पेशे से एडवोकेट। पूर्व विधायक। होशंगाबाद में रहते हैं।

पौधों में भोजन कुछ प्रयोग, कुछ इतिहास

किशार पवार

". . . मैंने पुदीने की एक शाखा को पानी पर उलटे किए हुए कांच के जार में रखा। यह जार पानी से भरे हुए बर्तन में रखा गया था। कुछ महीनों तक यह शाखा उस जार में वृद्धि करती रही। मैंने पाया कि इस जार की हवा में न तो मोमबत्ती बुझी, न ही उस चूहे को कोई परेशानी हुई जिसे मैंने इस जार में रखा। . ."

सारी दुनिया अपने भोजन के लिए पेड़-पौधों पर निर्भर है। लेकिन क्या किसी ने उन्हें कुछ खाते-पीते देखा है? कैसे छोटा-सा बीज फूटकर छोटा-सा पौधा बनता है, पत्तियां निकलती हैं और फिर वह एक भरे-पूरे पेड़ में बदल जाता है?

ऐसे ही कई सवाल सदियों से उठते रहे हैं और अरस्तू से लेकर आज तक वैज्ञानिकों को परेशान करते रहे हैं।

अब हम जानते हैं कि पेड़-पौधे अपना भोजन स्वयं बनाते हैं – सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में हरे क्लोरोफिल की सहायता से। आज हम काफी कुछ जानते हैं पत्तियों में पाए जाने वाले विभिन्न रंजकों की रचना व उनकी भूमिका के बारे में; किस तरह ये रंजक सूर्य की ऊर्जा को ग्रहण कर उसे रासायनिक ऊर्जा में बदल देते हैं; किस तरह पत्तियों में पानी और कार्बन डाइऑक्साइड जैसे सरल अकार्बनिक पदार्थों से ग्लूकोज़, स्टार्च

और अन्य जटिल कार्बनिक पदार्थ बनते हैं। संक्षेप में कहें तो प्रकाश संश्लेषण आज हमारे लिए कोई अनोखा शब्द नहीं है। लेकिन जिस जानकारी या ज्ञान को हम कक्षा के एक पाठ में पढ़ लेते हैं उसे खोजने में सदियां लग गईं; लंबे-लंबे प्रयोग हुए, उपकरण बने और फिर प्रयोगों के परिणामों को और परिष्कृत किया गया। कई शंकालु, खोजी और जिज्ञासु प्रवृति के लोगों ने अपने जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा लगा दिया इनमें।

और रोचक बात तो यह है कि – हमेशा के समान – शुरुआत में शायद किसी को भी नहीं मालूम होता कि उन्होंने जो खोजा है वो आगे जाकर किस दूसरी जानकारी से जुड़ेगा और अंत में जो सिद्धांत आएगा वो क्या होगा? जैसे-जैसे इस लेख में आप आगे बढ़ेंगे यह बात और स्पष्ट होती जाएगी। तो आइए, अतीत पर नज़र डाल कर सरल-सी दिखने वाली इस जटिल प्रक्रिया, जिस पर सारी दुनिया का दारोमदार है, को कदम-दर-कदम समझने की कोशिश करें।

आज से लगभग 2000 साल पूर्व ग्रीक दार्शनिक-वैज्ञानिक अरस्तू का ऐसा विचार था कि चूंकि पौधों में जंतुओं के समान कोई पाचक अंग नहीं होते अत: पौधे मिट्टी में घुले सड़े-गले पदार्थ पोषण के रूप में लेते हैं जिनसे उनके शरीर में वृद्धि होती है। उनकी मृत्यु पर ये पदार्थ मिट्टी में मिल जाते हैं और इस तरह ये चक्र चलता रहता है। लगभग डेढ हज़ार साल तक यही मान्यता प्रचलित रही।

फिर सन् 1450 के आसपास यह विचार आया कि पौधों को अपनी ज़रूरत का सामान दरअसल पानी से मिलता है, तभी वे इतने हरे-भरे हो पाते हैं। और इसीलिए साल-दर-साल फसल लेने पर भी मिट्टी की पर्त वैसी ही बनी रहती है, कमतर नहीं हो जाती। लेकिन इन में से किसी भी धारणा का कोई प्रयोगात्मक आधार नहीं था।

पांच साल चला एक प्रयोग

बेल्जियन वैज्ञानिक ज्यां बैपटिस्ट वान हैलमोन्ट का भी विश्वास था कि समस्त वनस्पति जगत प्रमुखत: पानी से ही बना है और उसने अपने प्रयोग में इस विचार को जांचने की ठानी। आज हम इस प्रयोग को साधारण कह सकते हैं लेकिन विज्ञान के इतिहास में लंबी अवधि का शायद यह पहला प्रयोग था जिसमें इतने व्यवस्थित तरीके से निष्कर्ष निकाले गए और उनको रिकॉर्ड किया गया। आइए सन् 1648 में प्रकाशित हुए पर्चे से हेलमोन्ट के शब्दों में ही सुनें कि उसने अपना निष्कर्ष कैसे निकाला।

"मैंने मिट्टी का बना एक बर्तन लिया और इसमें बिल्कुल सुखाई हुई

200 पौंड मिट्टी भरी। फिर इसे पानी से सींचा और इसमें विलो (वीर का पेड़) का एक पौधा लगाया जिसका वज़न 5 पौंड था। पांच साल निकल गए और यह पौधा बढ़कर 169 पौंड 3 औंस का हो गया। इस बीच इस मिट्टी को बरसात के पानी से या फिर ज़रूरी हो तो आसुत जल से सींचा जाता था। यह मिट्टी का बर्तन काफी बड़ा था और ज़मीन में गड़ा कर रखा गया था। बाहर से आने वाली धूल-मिट्टी इसमें न जा पाए इसलिए मैंने इसके मुंह को बारीक छेद वाले लोहे के पतरे से ढंक रखा था। इस बीच जो चार पतझड़ आए उस समय गिरने वाली पत्तियों का वज़न मैंने नहीं लिया। अंत में मैंने फिर से बर्तन की मिट्टी को निकाला, सुखाया और तौला। और यह 200 पौंड से बस दो औंस कम निकली। इसका अर्थ है कि 164 पौंड की लकड़ी, तना और जड़ सिर्फ पानी से बन गए।"

आज हम मान सकते हैं कि यह निष्कर्ष बहुत स्थूल है क्योंकि हेलमोन्ट ने पेड़ के आसपास की हवा के बारे में कोई गौर नहीं किया। परन्तु आज से लगभग साढ़े तीन सौ साल पहले पांच साल चलने वाला प्रयोग सोचना और करना अपने आप में मायने रखता है। और पहली बार किसी जीवित वस्तु के साथ रसायन का एक प्रयोग किया गया यानी कि यह शायद पहला जैव-रासायनिक प्रयोग था।

लगभग सौ साल तक यह स्थिति बरकरार रही। तत्पश्चात 1727 में अंग्रेज़ वनस्पतिशास्त्री स्टीफेन हेल्स की एक पुस्तक आई – 'वेजिटेबल स्टेटिक्स'। इसमें उसने लिखा कि पौधे अपनी वृद्धि के लिए मूलतः पोषक पदार्थ के रूप में हवा का इस्तेमाल करते हैं हेल्स ने पौधों के साथ बहुत से प्रयोग किए। उसने देखा कि लकड़ी को जलाओ तो उसमें

जोसेफ प्रीस्टले: 18वीं सदी का एक प्रमुख ब्रिटिश वैज्ञानिक, जिसने एक महत्वपूर्ण गैस की खोज की थी, जिसे बाद में लिवोज़ियर ने ऑक्सीजन नाम दिया।

से गैस निकलती है, और इसी के आधार पर उसने तर्क दिया कि हो सकता है कि पत्तियां इससे उलटा, हवा में से गैस सोखती हों। इसके बाद एक और प्रयोग हुआ जिसने मामले में कुछ नए पहलू जोड़े।

दूषित हवा और ताज़ी हवा

प्रयोगकर्ता थे एक प्रसिद्ध रसायनज्ञ जोसेफ प्रीस्टले। यह पहले वैज्ञानिक थे जिनका ध्यान इस बात पर गया कि श्वसन और जलाने की क्रिया में हम हवा को दूषित कर देते हैं और पेड़-पौधे इससे उलटा, इस दूषित हवा का उपचार कर उसे फिर से ठीक कर देते हैं। आइए देखते हैं प्रीस्टले के इस प्रसिद्ध प्रयोग को:

". . . कोई यह सोचेगा कि क्योंकि हवा जीवों और पेड़ पौधों दोनों के लिए ज़रूरी है इसलिए दोनों ही हवा के साथ एक समान व्यवहार करेंगे। और मेरी भी धारणा इस प्रयोग के पहले बिल्कुल यही थी।
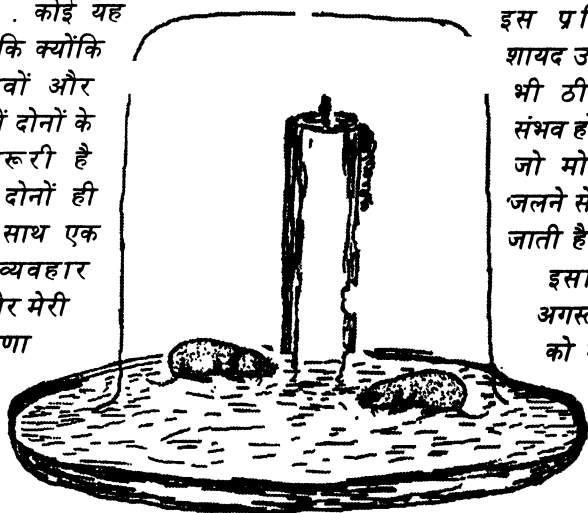
मैंने पुदीने की एक शाखा को पानी पर उलटे किए हुए कांच के जार में रखा। यह जार पानी से भरे हुए बर्तन में रखा गया था। कुछ महीनों तक यह शाखा उस जार में वृद्धि करती रही। मैंने पाया कि इस जार की हवा में न तो मोमबत्ती बुझी, न ही उस चूहे को कोई परेशानी हुई जिसे मैंने इस जार में रखा।

यह जानने के बाद कि जिस हवा में कई दिनों से पत्ती रखी थी उसमें मोमबत्ती काफी अच्छी तरह जली, यह विचार आया कि यहां पेड़-पौधे से जुड़ा कोई मामला है जो श्वसन के द्वारा दूषित हवा को ठीक कर देता है। इसलिए मैंने सोचा कि इस प्रक्रिया से शायद उस हवा को भी ठीक करना संभव होना चाहिए जो मोमबत्ती के जलने से दूषित हो जाती है।

इसलिए 17 अगस्त, 1771 को मैंने पुदीने

प्रकाश संश्लेषण और श्वसन में पौधों की भूमिका

हमारी अधिकतर पाठ्य पुस्तकों में बहुत ज़ोर देकर लिखा होता है कि जिस हवा को हम गंदी कर देते हैं उसे पेड़-पौधे साफ करते हैं और इस तरह वायुमंडल में गंदी और स्वच्छ हवा का संतुलन बना रहता है। यहीं से एक भ्रम उत्पन्न होता है कि जंतुओं और पेड़-पौधों की श्वसन क्रिया अलग-अलग है। यह भ्रम उच्चस्तर की महाविद्यालयीन कक्षाओं तक बना रहता है। विद्यार्थियों को बार-बार समझाने पर भी वे यही कहते हैं कि हमने तो यह किताबों में पढ़ा है। क्या वे गलत हैं? मेरी समझ में यह भ्रम पेड़-पौधों और जंतुओं की क्रियाओं को अलग-अलग करके नहीं समझाने के कारण पैदा होता है। अगर वहीं यह भी स्पष्ट कर दिया जाए कि कार्बन डाइऑक्साइड का उपयोग पौधे अपना भोजन बनाने (प्रकाश संश्लेषण) में करते हैं और बदले में ऑक्सीजन छोड़ते हैं; परंतु दोनो की श्वसन क्रिया एक-सी है जिसमें ऑक्सीजन का उपयोग होता है और कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ी जाती है, तो कुछ बात बन सकती है।

की एक शाखा को उस हवा में रखा जिसमें मोमबत्ती जल कर बुझ चुकी थी; और पाया कि उसी महीने 27 तारीख को एक दूसरी मोमबत्ती उसी हवा में काफी अच्छे से जली। बिना कुछ भी बदले इसी प्रयोग को मैंने उन गर्मियों में आठ-दस बार दोहराया। कई बार मैंने उस हवा को – जिसमें मोमबत्ती जलकर बुझ चुकी थी – दो भागों में विभाजित किया। एक हिस्से में पौधे को रखा और दूसरे को वैसा ही रहने दिया, उसी तरह पानी पर उलटाकर रखे हुए कांच के जार में, पर बिना किसी टहनी के। और हमेशा मैंने पाया कि पौधे वाले हिस्से में मोमबत्ती फिर से जली, जबकि दूसरे वाले हिस्से में नहीं। मैंने पाया कि अगर पौधा प्रबल हो तो हवा को फिर से ठीक करने के लिए पांच से छह दिन पर्याप्त होते हैं। . . "

आज हम इस निष्कर्ष पर गौर करें तो फटाक से पहचान जाएंगे कि प्रिस्टले ऑक्सीजन की बात कर रहा है। लेकिन उस समय ऑक्सीजन की खोज नहीं हुई थी। न ही हम इसके जीवनदायी गुण से परिचित थे। तो प्रीस्टले न तो 'दूषित हवा' को सुधारने वाले तत्व को पहचान पाए, न ही इस पूरी प्रक्रिया में प्रकाश के योगदान पर गौर कर पाए। लेकिन फिर भी उन्होंने लोगों

को इस दिशा में और शोध की ओर प्रेरित कर ही दिया। प्रीस्टले की यह खोज वनस्पतियों और जंतुओं के बीच आपसी सामंजस्य को समझने की एक प्रमुख कड़ी थी।

औरों को प्रीस्टले के इस प्रयोग पर शक था क्योंकि सब लोग इसे दोहरा नहीं पा रहे थे। परन्तु प्रीस्टले के प्रयोग के कुछ साल बाद हुए कुछ और प्रयोगों ने सिद्ध कर दिया कि प्रीस्टले सही है, और इस बात पर भी प्रकाश डाला कि सब से यह प्रयोग क्यों नहीं हो पा रहा।

सूर्य का प्रकाश, पौधे का हरा भाग

प्रीस्टले के बाद प्रकाश सश्लषण को समझने की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण प्रयोग डच वैज्ञानिक जान इन्जेनहोज़ का है। इन्जेनहोज़ ने जो प्रयोग किया उसका आधार प्रीस्टले के प्रयोग ही थे। उन्होंने 1779 में अपने प्रयोगों के निष्कर्ष प्रस्तुत किए।

इन्जेनहोज़ ने अपने प्रयोग में यह सिद्ध किया कि 'दूषित हवा' को फिर से शुद्ध करने के लिए सूर्य का प्रकाश ज़रूरी है। प्रकाश की उपस्थिति में ही वह तत्व बनता है जो श्वसन या दहन से 'दूषित हवा' को फिर से ठीक कर देता है। साथ ही उन्होंने यह सिद्ध किया कि यह प्रक्रिया पौधे के हरे भाग की उपस्थिति में ही होती है, और पौधे के अन्य भाग जो हरे नहीं हैं हवा के साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसे कि प्राणी।

यह खोज हुई उस वक्त भी हवा की संरचना के बारे में ठीक से जानकारी नहीं थी। परन्तु कुछ ही सालों में आधुनिक रसायन शास्त्र के प्रणेता फ्रेंच वैज्ञानिक लेवोइज़ियर ने ऑक्सीजन की एक पदार्थ के रूप में पहचान बना ली थी, और सन् 1784 तक यह स्पष्ट हो गया था कि प्रकाश की

इन्जेनहोज़: जिसने अपने प्रयोग से सिद्ध किया कि 'दूषित हवा' को फिर से शुद्ध करने के लिए सूर्य प्रकाश ज़रूरी है।

स्टोमेटा: उन्नीसवीं सदी के शुरुआती सालों में यह पता चला कि पत्तियों पर मौजूद सूक्ष्म छिद्रों (स्टोमेटा) से पेड़-पौधे गैसों का आदान-प्रदान करते हैं।

उपस्थिति में हरे पौधे ऑक्सीजन बनाते हैं।

लगभग उसी समय सन् 1782 में एक स्विस ज्यों सेनेबियर ने निष्कर्ष निकाला कि 'दूषित हवा के शुद्धिकरण की प्रक्रिया एक अन्य गैस पर निर्भर है।' इस अन्य गैस को सेनेबियर ने 'फिक्स्ड हवा' नाम दिया। सन् 1804 तक यह भी पता चल गया था कि यह कार्बन डाइऑक्साइड गैस है यानी कि कार्बन डाइऑक्साइड को पहचानकर नाम दिया जा चुका था।

तो उन्नीसवीं सदी की शुरुआत तक आते-आते हम पौधों के पोषण यानी प्रकाश संश्लेषण में सक्रिय सब प्रमुख कलाकारों को पहचान चुके थे – पानी, ऑक्सीजन, पौधों का हरा भाग और कार्बन डाइऑक्साइड।

अगला दौर

इसी दौरान सूक्ष्मदर्शी के विकास ने भी पौधों में भोजन निर्माण की प्रक्रिया पर कुछ प्रकाश डाला और हमें यह पता चला कि पत्तियों पर और हरे तनों पर हज़ारों सूक्ष्म छिद्र होते हैं। इन छिद्रों को स्टोमेटा कहा गया। अतः यह विचार भी सामने आया कि पौधों के भोजन निर्माण में इन छिद्रों की भी कुछ भूमिका अवश्य होगी। पौधे केवल जड़ों से ही नहीं पत्तियों से भी कुछ लेन-देन कर सकते हैं। अतः पहली बार पेड़ पौधों के संदर्भ में गैसों की उपयोगिता का तरीका उजागर हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत में ही, 1804, में एक और स्विस शोधकर्ता निकोलस थियोडोर ने पौधों द्वारा गैसों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया पर कुछ प्रयोग किए। थियोडोर ने अपने प्रयोगों में पौधों के द्वारा ली जाने वाली कार्बन डाइऑक्साइड और बनने वाले कार्बनिक पदार्थ तथा निकलने वाली ऑक्सीजन के मात्रात्मक संबंधों का अध्ययन किया। थियोडोर ने बताया कि पौधे जो वज़न हासिल करते हैं वह कार्बन, जो उन्हें कार्बन डाइ-ऑक्साइड के अवशोषण से मिलता है

– और पानी, जो पौधों की जड़ों यानी उसने पक्के तौर पर बताया कि पानी भी पौधों के भोजन निर्माण की प्रक्रिया में एक कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल होता है।

प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के बारे में अब तक की जानकारी को हम इस तरह भी लिख सकते हैं:

कार्बन डाइऑक्साइड + पानी

पौधा सूर्य प्रकाश

कार्बनिक पदार्थ + ऑक्सीजन

हरा पदार्थ क्लोरोफिल

सन् 1847 में दो फ्रेंच रसायनज्ञ पेलेटीयर और केवेनटो ने पत्तियों का हरा पदार्थ अलग किया और उसे क्लोरोफिल नाम दिया। पौधों द्वारा भोजन निर्माण के इतिहास में एक जर्मन फिज़िशियन मेयर ने सन् 1845 में कहा कि हरे पौधे सूर्य की ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में बदलते हैं।

इस क्रिया में जितनी कार्बन डाइ-ऑक्साइड खर्च होती है उतनी ही ऑक्सीजन निकलती है यह बात सर्वप्रथम पक्के तौर पर एक फ्रेंच वैज्ञानिक केसिनगॉल्ट ने सन् 1864 में बताई। यानी कि प्रकाश संश्लेषण में कार्बन डाइऑसाइड/ऑक्सीजन का अनुपात एक होता है। इसी वर्ष सेक्स ने बताया कि प्रकाश संश्लेषण क्लोरोप्लास्ट में होती है और इसमें स्टार्च के कण बनते हैं। यह प्रयोग स्टार्च आयोडीन टेस्ट द्वारा किया गया था।

वर्तमान सदी की शुरुआत तक पौधों में भोजन निर्माण की प्रक्रिया का यह स्वरूप हमारे सामने आ चुका था।

कार्बन डाइऑक्साइड + पानी + सूर्य प्रकाश

हरे पौधे | क्लोरोफिल

↓

मंड + रासायनिक ऊर्जा + ऑक्सीजन

हालांकि अब तक यह पता नहीं चला था कि इस क्रिया में निकलने वाली ऑक्सीजन, कार्बन डाइऑक्साइड के टूटने से आती है या पानी से ।

किशोर पंवार: सेंधवा में शासकीय महाविद्यालय में वनस्पति शास्त्र पढ़ाते हैं।

कहां से आती है ऑक्सीजन

सन् 1796 में इन्जेनहोज़ ने सुझाया था कि प्रकाश संश्लेषण में कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन और ऑक्सीजन में टूट जाती है। इस वजह से ऑक्सीजन गैस बाहर निकलती है। इस समय लगभग यह मान लिया गया था कि कार्बोहाइड्रेट, कार्बन और पानी के मिलने से बनता है; और ऑक्सीजन, कार्बन डाइऑक्साइड से निकलती है। यह परिकल्पना जैसा कि हम जानते हैं, आगे चलकर गलत साबित हुई।

यह महत्वपूर्ण कार्य स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के एक ग्रेजुएट विद्यार्थी सी. बी. वाननील ने किया। नील विभिन्न प्रकार के प्रकाश मंश्लेषी बेक्टीरिया पर कार्य कर रहे थे। ये बेक्टीरिया कार्बन को अपचयित कर कार्बोहाइड्रेट बनाते हैं। परंतु इस क्रिया में ऑक्सीजन नहीं बनती। नील ने इस हेतु 'परपल सल्फर बेक्टीरिया' चुना था। इसे भोजन निर्माण के लिए कार्बन डाइऑक्साइड और हाइड्रोजन सल्फाइड चाहिए। कार्बन डाइऑक्साइड का अपचयन होने से सल्फर के कण या तो बाहर निकलते हैं या इसके अंदर ही जमा हो जाते हैं। यह क्रिया कुछ इस तरह होती है:

$$CO_2 + 2H_2S \xrightarrow[\text{परपल बैक्टीरिया}]{\text{प्रकाश}} (CH_2O) + H_2O + 2S$$
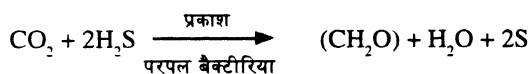
वैसे तो यह खोज सामान्य थी, और उस समय इसकी ओर किसी ने कोई खास ध्यान भी नहीं दिया; जब तक कि नील ने इसका एक साहस भरा विस्तार कर के एक व्यापक स्वरूप न दिया। उसने सभी प्रकार के प्रकाश संश्लेषण के लिए एक सामान्य समीकरण प्रस्तुत किया:

$$CO_2 + 2H_2A \xrightarrow{\text{प्रकाश}} (CH_2O) + H_2O + 2A$$
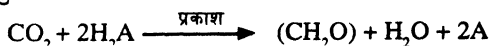
इस समीकरण में H_2A ऑक्सीकृत होने वाला पदार्थ है। जैसे H_2S, स्वतंत्र हाइड्रोजन या पानी। हरे पौधों में H_2A पानी है। यानी वॉन नील का कहना था कि यह पानी है जो टूटकर ऑक्सीजन

बनाता है, न कि कार्बन डाइऑक्साइड जैसा कि इन्जेनहोज़ ने सुझाया था। अर्थात:

$$CO_2 + 2H_2O \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{\text{प्रकाश}} (C\,H_2O) + H_2O + O_2$$
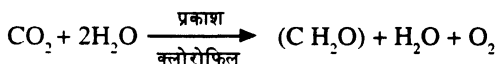
चमत्कारी ^{18}O

यह धमाकेदार तर्क 1930 के शुरुआती दौर में प्रस्तुत किया गया था जो लंबे समय तक सिद्ध न हुआ। परंतु 1941 में केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के रूबेन और कॉमेन ने इसे सही साबित कर दिया। अब उनके हाथ ऑक्सीजन का एक चमत्कारी रूप हाथ लग चुका था। यह था ^{18}O जो कि ऑक्सीजन का एक आयसोटोप है। सामान्य आक्सीजन ^{16}O होती है। रूबेन और कॉमेन ने पौधों को पानी ($H_2{}^{18}O$) में प्रकाश संश्लेषण कराया और देखा कि इस क्रिया में निकलने वाली आक्सीजन ^{18}O है न कि ^{16}O, जो कि सामान्य कार्बन डाइऑक्साइड में थी। इससे यह सिद्ध हो गया कि प्रकाश संश्लेषण में पानी का विघटन होता है, न कि कार्बन डाइऑक्साइड का।

$$CO_2 + 2H_2{}^{18}O \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{\text{प्रकाश}} (CH_2) + H_2O + {}^{18}O_2$$
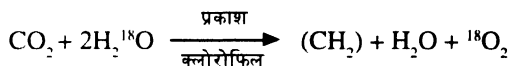
परंतु जब यही क्रिया $C\,{}^{18}O_2$ के साथ करायी गई तो निकलने वाली ऑक्सीजन $^{16}O_2$ ही थी।

$$C\,{}^{18}O_2 + 2H_2O \xrightarrow{\text{प्रकाश}} (CH\,{}^{18}O) + H_2O + O_2$$
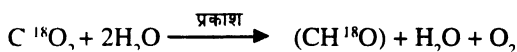
इसी वैज्ञानिक जोड़ी ने कार्बन का एक आयसोटोप खोजा जिसका उपयोग अन्य वैज्ञानिकों द्वारा प्रकाश संश्लेषण में कार्बन डाइऑक्साइड से ग्लुकोज़ बनने के दौरान जन्मने वाले मध्यवर्ती पदार्थों की खोज में किया गया।

— किशोर पंवार

शोध-कार्य

पदमा सारंगपाणि

यह शोधकार्य दिल्ली के पास के एक गांव अलीपुर में किया गया था। इसका उद्देश्य इस बात की जांच-पड़ताल करना थी कि स्कूली विज्ञान की किताबों को जिन लक्ष्यों को सामने रखकर लिखा जाता है, उन लक्ष्यों में से कितने स्कूलों, कक्षाओं और शिक्षकों के माध्यम से बच्चों तक पहुंच पाते हैं? जिन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर स्कूली पाठ्यक्रम में विज्ञान का समावेश किया गया, क्या उनकी पूर्ति हो पा रही है?

भाषा और गणित के बाद यदि पाठ्यक्रम में कोई विषय महत्वपूर्ण माना जाता है तो वह है विज्ञान। स्कूल में विज्ञान की पढ़ाई के साथ यह बात गहराई से जुड़ गई है कि इससे लोगों में एक वैज्ञानिक और तर्कसंगत मानसिकता आएगी। ये दोनों ही बातें राष्ट्रीय मूल्यों की श्रेणी में मानी जाती हैं और इनको बढ़ावा देना बहुत

ज़रूरी माना जाता है। स्कूली विज्ञान के साथ एक और धारणा भी अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है – कि प्रगति करने के लिए तकनीकी विकास बहुत महत्वपूर्ण है। विज्ञान का पाठ्यक्रम बनाने के पीछे जो भी सोच और विचार है, उसमें ये भावनाएं अंतरंग रूप से शामिल हैं। इनका ज़िक्र न सिर्फ महत्वपूर्ण दस्तावेज़ों में साफ तौर पर किया जाता है पर ये प्राथमिक शाला की पुस्तकों में भी छपी हुई मिलती हैं।

विज्ञान से जुड़े मूल्य

* अपने आसपास की चीज़ों और बातों को लेकर जिज्ञासु बनो।
* सभी मान्यताओं और तौर-तरीकों पर सवाल करने का साहस रखो।
* प्रश्न पूछो – 'क्या', 'क्यों', 'कैसे' – और इनका उत्तर पाने के लिए ध्यान से अवलोकन करो, प्रयोग करो, चर्चा करो, तर्क करो।
* अपनी प्रयोग शाला में या बाहर तुमने जो भी प्रयोग किए उन्हें सच्चाई के साथ दर्ज़ करो।
* ज़रूरत हो तो अपने प्रयोगों को दोहराओ पर किसी भी हालत में उनके परिणामों को तोड़ने-मरोड़ने की कोशिश मत करो।
* हमेशा तथ्यों व तर्कों के आधार पर सोचो। किसी भी एक पक्ष के साथ पूर्वाग्रह मत रखो।
* अपनी मेहनत और लगन के बल पर नई खोज और आविष्कार करो।

(राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद द्वारा कक्षा तीसरी, चौथी एवं पांचवीं के लिए तैयार की गई पर्यावरण अध्ययन की पाठ्यपुस्तकों से।)

इन मूल्यों को बच्चों के लिए सीधे निर्देशों व उपदेशों के रूप में पेश किया जाना मुझे विचलित करता है। और हमें यह भी सोचने पर मजबूर करता है कि बच्चे खुद इन भावनाओं को किस तरह लेते हैं?

मैंने 1992-93 में दिल्ली के नज़दीक बसे एक गांव के स्कूल में कुछ शोध किया था। इसमें मैंने बच्चों और शिक्षकों से बात करके, उन्हें काम करते देख यह जानने की कोशिश की थी कि बच्चे स्कूली पढ़ाई को किस रूप में देखते हैं। मैंने कक्षा 4-5 के तकरीबन 120 बच्चों के साथ यह काम किया। इसी संदर्भ में मैंने बच्चों से ऐसे सवाल भी पूछे थे – "तुम्हें विज्ञान क्यों पढ़ना चाहिए, विज्ञान विषय क्या है, प्रयोग क्या है, वैज्ञानिक कौन होते हैं और क्या करते हैं?" इन सवालों के जवाब में बच्चों ने जो

कहा उनमें से कुछ किस्सों के उद्धरण मैं यहां दूंगी। ये उद्धरण हमें बच्चों में आमतौर से पाए जाने वाले नज़रिए की जानकारी देते हैं। कुछ उद्धरण अपवाद भी हैं और मैंने उन्हें अलग से बताया है।

विज्ञान क्यों पढ़ना चाहिए?

– "तुम विज्ञान क्यों सीखते हो?"
"क्योंकि हमें कभी वैज्ञानिक भी बनना पड़ सकता है?'"

यह बात दिखाती है कि बच्चे वैज्ञानिक के रूप में रोज़गार पाने को विज्ञान पढ़ने का एक प्रमुख मकसद मानते हैं। यह संबंध विज्ञान और वैज्ञानिक शब्दों से सीधे ही निकलता है। 'वैज्ञानिक' शब्द सीधे तौर पर एक तरह के रोज़गार का आभास देता है।

– "विज्ञान क्यों पढ़ाया जाता है?"
नीरज, "अरे सतीश, वो हमें विज्ञान क्यों पढ़ाते हैं?"
सतीश, "हमें पेड़-पौधों के बारे में बताने के लिए।"
नीरज, "ताकि हम वैज्ञानिक बन सकें।"

– "और सामाजिक अध्ययन?"
"उसी लिए।"

बच्चे भाषा की किताब में दो वैज्ञानिकों मैडम क्यूरी और जे.सी. बोस के बारे में भी पढ़ते हैं। वैज्ञानिक बनने के अलावा, डॉक्टर बनने की संभावना भी विज्ञान की पढ़ाई से जोड़ी जाती है। विपिन मुझे बता रहा था कि उसे विज्ञान अच्छा नहीं लगता।

– "अगर तुम्हें विज्ञान अच्छा नहीं लगता तो इसे क्यों पढ़ते हो?"
विपिन, "क्योंकि हमें पढ़ना पड़ता है।"

– "क्या तुम्हें विज्ञान पढ़ने में कोई फायदा दिखाई देता है?"
"हां, क्योंकि फिर हम वैज्ञानिक या डॉक्टर बन सकते हैं।"

कुछ बनने की यह बात तो दूर की बात थी। ज़्यादातर बच्चे अभी विज्ञान इसलिए पढ़ रहे थे क्योंकि उन्हें पढ़ना होता था। जैसा विपिन कह रहा था। फिर, यह बात भी थी स्कूल की परीक्षाओं में व स्कॉलर-शिप की परीक्षाओं में विज्ञान पर प्रश्न आते हैं। इसलिए, यह 'ज़रूरी' ज्ञान बन जाता है।

यह सब जानना क्यों ज़रूरी है – जैसे राकेश शर्मा के बारे में यह जानना; और सदाबहार वन के बारे में क्यों पढ़ते हैं?

तो एक ही जवाब है – कि गुरुजी हमसे पूछेंगे। इन्सपेक्टर भी हमसे पूछ सकता है। और ये पांचवीं की बोर्ड परीक्षा में भी आ सकता है।

मैंने बातचीत आगे बढ़ाते हुए पूछा, "नहीं, पर तुम खुद जब बड़े हो जाओगे, और कोई काम करोगे, जैसे चित्रकारी, तब क्या विज्ञान तुम्हारे कुछ काम आएगा?"

इस पर विपिन मुस्कुराया और बोला, *"हम लोगों को चकमा दे सकेंगे। जैसे मैं एक बाल्टी में दूध भर दूंगा और लोगों से कहूंगा कि देखो अब मैं एक जादू करूंगा – और बाल्टी से एक बूंद भी नहीं गिरेगी। फिर मैं छू-मंतर कहकर बाल्टी घुमाकर दिखा दूंगा।"*

इस तरह की बातचीत से ज़ाहिर होता है कि विपिन को अपने भावी जीवन में विज्ञान की कोई सार्थकता नज़र नहीं आती थी सिवाय इसके कि वह विज्ञान की मदद से लोगों का मनोरंजन कर सकेगा। ज़्यादातर बच्चे तो अपने जीवन में विज्ञान की सार्थकता को और भी कम देख पा रहे थे। वे यह सोचते थे कि अगर कोई चीज़ पाठ्यक्रम में है तो उसकी कोई उपयोगिता होगी ही।

"क्या मालूम हमें बाद में अपनी नौकरी में इस सबकी ज़रूरत पड़ जाए?" देवेंदर ने कहा।

– "इस तरह की पढ़ाई नौकरी में कैसे काम आ सकती है?"

"भई, अगर कोई चिट्ठी आती है तो हमें पढ़ना तो आना चाहिए।"

– "हां, और विज्ञान व सामाजिक अध्ययन?"

"आगे जाकर ज़िंदगी में किसी काम आ सकते हैं।"

भाषा और गणित की कुशलता उपयोगी होती है यह तो बच्चों को स्पष्ट था, पर पाठ्यक्रम की अधिकांश बातों पर उनके मन में एक गूढ़ विश्वास था। वो यह महसूस करते थे कि अगर बड़े लोगों ने कुछ बातें पढ़ाने के लिए चुनी हैं तो इसके पीछे कोई अच्छे कारण रहे ही होंगे।

जब जोगी ने मेरे सामने यह घोषणा की कि विज्ञान तो जीवन के लिए ज़रूरी है तो मैंने सोचा कि वह यह बताना चाह रहा है कि विज्ञान ने मानवता की भलाई के लिए कैसे योगदान किया है। मैं कहूंगी कि यह स्कूली विज्ञान का 'कल्याणकारी' आयाम है – जो विज्ञान को, या दरअसल तकनॉलॉजी को 'प्रगति' और 'विकास' में सहायक मानता है।

यह विचारधारा विज्ञान की किताबों में दर्ज़ पाई जाती है और पढ़ने वालों को एक दृष्टिकोण देने की कोशिश करती है। एन. सी. ई. आर. टी. की किताबों के आमुख में लिखा है कि "इस बात का खास-तौर पर ख्याल रखा गया है कि

बच्चों को मौजूदा समस्याओं के बारे में सोचने का बढ़ावा मिले और ऐसे कामों की पहल करने में मदद मिले जिससे व्यक्ति और समुदाय का जीवन बेहतर बन सके।"

किताब के हर पाठ में कुछ अच्छी बात सीखने और अच्छे काम करने की बात उभर आती है, चाहे तो अपने आसपास मोहल्ले में सफाई रखने की बात हो या संतुलित भोजन खाने की बात हो। यह दिलचस्प बात थी कि विज्ञान के ये कल्याणकारी आयाम जो मान्य पाठ्यक्रम में प्रमुख थे, बच्चों की नज़र में गायब थे। वे इन्हें विज्ञान पढ़ने के कारणों के रूप में आत्मसात नहीं कर रहे थे। वे कुल मिलाकर पढ़ाई को और विज्ञान को भी नौकरी से जुड़ी हुई बात मानते थे।

प्रयाग क्या हैं?

विज्ञान में जानकारी तक पहुंचने के लिए प्रयोगों की एक बड़ी अहम भूमिका रही है। बल्कि विज्ञान की प्रगति प्रायोगिक विधि के विकास के साथ ही हो पाई है। प्रयोगों द्वारा की जाने वाली जांच-पड़ताल और सत्यापन ही विज्ञान के तथ्यों और सिद्धांतों को आधार देता है। इसलिए यह उल्लेखनीय है कि अलीपुर स्कूल के बच्चे भी प्रयोगों को विज्ञान का एक अभिन्न पहलू मानते हैं। मैंने उनसे बात की कि वे प्रयोगों से क्या समझते हैं?

मैंने पाया कि अधिकांश बच्चे यह तो जानते थे कि विज्ञान में प्रयोग किए जाते हैं, पर ऐसा क्यों करते हैं इसकी कोई समझ उनमें नहीं थी।

क्या पता?

– "तुम विज्ञान में प्रयोग क्यों करते हो?"

दिनेश, "क्योंकि प्रयोग दिए गए होते हैं।"

– "फिर सामाजिक अध्ययन में प्रयोग क्यों नहीं करते?"

अभय, "उसमें हमसे प्रयोग नहीं कराए जाते।"

दिनेश, "सामाजिक अध्ययन में हम प्रश्नोत्तर करते हैं, फिर घर जाकर उन्हें पूरा करते हैं।"

– "क्या प्रयोग किए बिना विज्ञान पढ़ाया जा सकता है?"

दोनों, "नहीं।"

– "क्यों?"

अभय, "पता नहीं।"

कुछ बच्चों ने प्रयोगों को लेकर 'कुछ करने' यानी चीज़ों से कुछ क्रियाएं करके देखने और उनके नतीजे देखने के पहलू की तरफ भी

इशारा किया।

"विज्ञान में प्रयोग करते हैं।"

– "क्यों?"

"देखो, वे कहते हैं न, यह करो, फिर यह करो। आप कल मेरे घर आना, मैं आपको एक प्रयोग दिखाऊंगा। एक गिलास लो। एक कागज़ को गुड़ी-मुड़ी करके उसमें भर दो.....।" (वह हवा के होने और जगह घेरने के प्रयोग का ब्यौरा बताता है)

– "यह तुमने कहां सीखा?"

"कांता मैडम ने हमें यह करके दिखाया था।"

– "यह प्रयोग क्यों किया था उन्होंने?"

"पता नहीं।"

– "इससे तुमने क्या सीखा?"

उसने कंधे उचका दिए।

जोगी की समझ में प्रयोग एक गतिविधि है। प्रयोग में जो देखा जा रहा है, उसकी व्याख्या करते हुए किसी बात को समझना ही उद्देश्य होता है, यह धारणा उसके मन में नहीं थी।

भाषा की किताब में मैडम क्यूरी पर जो पाठ था उसमें रेडियम की खोज और उसकी जीवन में उपयोगिता पर चर्चा थी। यह भी कहा गया कि क्यूरी ने अपनी खोज के सिलसिले में बहुत से प्रयोग किए। पर, इस बात का कोई संकेत नहीं था कि ये प्रयोग किस तरह के थे या इनमें क्या किया गया था।

– "मैडम क्यूरी ने रेडियम की खोज कैसे की होगी – तुम्हें क्या लगता है?"

विपिन, "उन्हें विज्ञान पसंद था।"

– "क्या तुम्हें लगता है कि उन्होंने प्रयोग किए होंगे?"

विपिन, "शायद ... पहले द्रव इधर से उधर .... फिर उधर से इधर।"

विपिन का कथन किताब में क्यूरी के प्रयोगों के धुंधले प्रस्तुतिकरण को दर्शाता है। सभी बच्चे एक कथन, एक वाक्य के रूप में यह पक्की तौर पर जानते थे कि प्रयोग वैज्ञानिक अध्ययन के लिए निहायत ज़रूरी हैं। लेकिन इस कथन का मतलब शायद ही किसी बच्चे को स्पष्ट था। मुझे लगता है कि 'खोज' शब्द से भी कुछ भ्रांति पनपती होगी। यही शब्द शोध के लिए, ढूंढने के लिए व आविष्कार के लिए इस्तेमाल होता है। कभी-कभी जब बच्चे यह कहते थे कि वैज्ञानिकों ने किसी बात का खोज करके पता लगाया तो मैं सोचने लगती हूं कि कहीं वे इसे शब्दशः तो नहीं समझ रहे कि कुछ चीज़ पहले से थी। उसे वैज्ञानिकों ने बस ढूंढ

लिया है?

उपयोगी चीज़ का आविष्कार

वैज्ञानिक 'प्रयोग' करते हैं, इस कथन में 'प्रयोग' शब्द के एक दूसरे अर्थ की ध्वनि भी निकलती है – "किसी चीज़ को इस्तेमाल या उपयोग में लाना।" किसी चीज़ को प्रयोग करना ऐसा हम कहते हैं। इससे भी शब्दश: यह अर्थ निकलता है कि 'प्रयोग' यानी किसी चीज़ को इस्तेमाल में लाना।

नवीन, "प्रयोग मतलब जब हम कुछ नया बनाते हैं – फिर उसे प्रयोग में लाते हैं। तब वह प्रयोग हो जाता है। आपको मालूम है न, वैज्ञानिकों ने कितनी सारी चीज़ें बनाई हैं – चश्मा, टेलीफोन – इस तरह की और चीज़ें।"

"विज्ञान तो एक कला है। वैज्ञानिक अपने दिमाग से काम करते हैं।"

– "ठीक। लेकिन प्रयोग क्या है?"

"किसी चीज़ को प्रयोग लाना। वैज्ञानिक बहुत-सी चीज़ें प्रयोग में ले आए हैं जैसे पंप।"

वैज्ञानिक उपयोगी चीज़ों का आविष्कार करते हैं – इस धारणा से बच्चे परिचित थे। उनकी किताब भी उन्हें साफ तौर पर यह संदेश देती है कि वैज्ञानिक आविष्कारों और खोजों से मानव की प्रगति में कितनी सहायता मिली है। इससे यही संकेत मिलता है कि प्रयोग करने का अर्थ है कुछ उपयोगी बनाना।

प्रमाणित करना

चाहे क्यूरी के प्रयोगों के बारे में बच्चों की समझ बड़ी ही धुंधली रही हो, विपिन और कुछ और बच्चों की अपनी मानसिक क्रियाओं में यह आभास नज़र आता है कि वे प्रयोगों को ज्ञान हासिल करने की एक विधि के रूप में जानते हैं। यह मुझे ऐसे समझ में आया कि एक बार मैंने विपिन से कहा, "अगर 50 बार सिक्का उछाला जाए तो 25 बार चित आएगा और 25 बार पट।" इस पर विपिन एक सिक्का उछालकर देखने लगा और परिणामों का हिसाब भी बारीकी से रखने लगा। फिर उसने मुझे समझाते हुए कहा, "हम यह इसलिए कर रहे थे ताकि कुछ प्रमाणित कर सकें। यह बस एक प्रयोग था।"

एक ही और बच्चा था जो प्रयोग के इस पहलू से वाकिफ नज़र आता था। मैंने नरेश के सामने एक कथन रखा, "अगर पौधों को सींचने के लिए नमक का पानी डाला जाए तो वे अच्छी तरह बढ़ेंगे।"

नरेश, "ऐसी बात आज तक नहीं

सुनी मैंने।"

– "तो तुम कैसे पता लगाओगे?"

वह सपाट, आवाज़ में बताने लगा: *"पहले-हम-दो-गमले-लेंगे। हम-एक-गमले-में ...... (वह प्रयोग का वर्णन करता है) फिर-हम-दोनों-में-फर्क-देख-सकेंगे।"*

–"तुम दो गमले क्यों लोगे?"

"नहीं तो हमें पता कैसे लगेगा? दो चीज़ों में फर्क तो दिखाना पड़ेगा न? यही तो विज्ञान की चीज़ है।"

– "ऐसा क्यों कह रहे हो?"

"हमने यह प्रयोग किया था, पता लगाने के लिए"

– "पर जो बात किताब में लिखी होती है वो सच मानी जाती है। फिर प्रयोग क्यों करना होता है?"

"हम अपनी आंखों के सामने देखना चाहते हैं, इसलिए फिर हम वह बात कभी भूलेंगे नहीं। हमें याद रहेगी। और वो परीक्षा में आ गई तो?"

नरेश की सपाट आवाज़ ध्यान देने योग्य है। अक्सर प्रश्नों का जवाब देते हुए बच्चे इस तरह की आवाज़ में बोलते हैं। यह आवाज़ एक स्पष्ट आभास देती है – कि जो कहा जा रहा है – वो याद करके कहा जा रहा है। वह कहते समय उनके मन में समझने-समझाने की क्रियाएं नहीं हो रहीं। पर नरेश का उत्तर उसकी अपनी तार्किक सोच को दिखा रहा था। उसकी आवाज़ का उबाऊ सपाटपन यह दिखा रहा था कि उसके मन में यह बात बैठी है कि याद की हुई बातें ही ज्ञान हैं और याद रखना सीखने का सही तरीका है। चीज़ें जो पहले से जानी जा चुकी हैं वे ही जानने योग्य हैं, याद करने और दोहराने योग्य हैं।

सिखाने-समझने का एक ढंग है प्रयोग

– "क्या हम प्रयोगों के बिना विज्ञान सीख सकते हैं?"

विपिन, "हां, जो समझना चाहते हैं वो सीख सकते हैं।"

–"क्या तुम प्रयोग करके सीखते हो?"

"बिल्कुल नहीं। हमें तो ज़रूरत नहीं पड़ती।"

विपिन की धारणा को समझने के लिए हमें देखना चाहिए कि प्रयोगों को पुस्तकों में किस परिप्रेक्ष्य से प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रयोग किसी खोज को आगे बढ़ाने के लिए नहीं दिए जाते। किताब में तथ्यों को बयान कर दिया जाता है। जैसे – "सभी सजीव प्राणी बढ़ते हैं।"

यह तथ्य अपने आप में एक पूरी तरह ज़ाहिर बात है। ऐसे तथ्यों को कहने के साथ प्रयोग बताने से ही विपिन के मन में यह धारणा बन

रही होगी कि प्रयोगों का मकसद कुछ पता लगाना या जानना नहीं है, बल्कि इनका मकसद कुछ और है। शायद बातों को सरल करना। यही बात कृष्ण के मुंह से भी सुनने को मिल जाती है, "जो लोग होशियार हैं वो तो प्रयोग के बिना भी समझ जाते हैं। जब आंटी लाकर कोई प्रयोग दिखाती है, तो हमें वो बात अच्छे से याद हो जाती है – पक्की तरह देख लेने पर हम उस बात को भूलते नहीं हैं।"

दूसरे कई छात्रों को यह भी लगता था कि चित्र भी 'प्रयोग' हैं। इसी तरह, तालिकाएं, रेखाचित्र आदि भी प्रयोग के समान थे। उनकी समझ में प्रयोग से तात्पर्य था वे सब चीज़ें जिन्हें 'पढ़ना' नहीं होता है, जिन्हें देखकर और अनुभव करके कोई जानकारी मिल जाती है।

जब विज्ञान की किताबों में प्रयोग महज समझने का साधन हो, तो आश्चर्य नहीं कि बच्चों के लिए वे बहुत महत्व नहीं रखते। लिखे हुए को पढ़कर भी समझा जा सकता था। और-तो-और किताबों में इतने सारे तथ्य यूं ही दिए हुए थे जिन्हें अंधविश्वास के साथ स्वीकार करना होता था। सिर्फ बड़ी सीधी और ज़ाहिर बातों के लिए प्रयोग दिए हुए थे, जिनके लिए ध्यान से प्रयोग करना और अवलोकन लेना, सच में ज़रूरी था ही नहीं। इस पूरे संदर्भ में, बड़ी बेमानी नज़र आ रही थीं वैज्ञानिक मूल्यों की बातें, जो किताबों के शुरू में दी हुई थीं।

प्रयोगः मन बहलाने का ज़रिया

अब जो उद्धरण मैं दे रही हूं उसमें सुलेमान को लगता है कि प्रयोगों से जो सच बात है उसे जांचा जा सकता है। पर कुल मिलाकर प्रयोगों का किया जाना मन बहलाने की बात ही है।

सुलेमान, "हमें जानकारी तो सिर्फ पढ़कर मिलती है।"

– "पर जो लिखने वाले होते हैं उन्हें कैसे पता चलती हैं बातें?"

"वो खोज करते हैं। फिर लिखते हैं।"

– "खोज क्यों करते हैं?"

"देखने के लिए। नहीं तो विश्वास कैसे होगा?"

– "विश्वास नहीं करना क्या बुरी बात नहीं है?"

"नहीं वो एक-दूसरे से पूछते हैं फिर हंसी-मज़ाक में कहते हैं – कि चलो प्रयोग करके दिखाओ यह बात।"

– "और फिर।"

"फिर, वो विश्वास कर लेते हैं। इससे मनोरंजन भी होता है।"

– "बस ऐसे ही प्रयोग करते रहते हैं?"

सुलेमान हंसकर जवाब देता है, "नहीं तो। उनको तो सरकार से पैसे मिलते हैं। उनको तो यह सब सरकार की तरफ से करना ही होता है।"

वैज्ञानिक कौन हैं?

सुलेमान की बात से लगा कि उसके लिए वैज्ञानिक कोई बहुत ऊंचे लोग नहीं थे। वे सरकार की नौकरी में थे – विज्ञान करने के लिए। पर और बच्चों की नज़र में वैज्ञानिक देश के अच्छे नागरिक थे जो देश के लिए कई उपयोगी काम करते थे, अच्छी चीज़ें बनाते थे।

– "वैज्ञानिक क्या करते हैं?"

नीरज, "अच्छी-अच्छी चीज़ें। जैसे हम गरीब हैं। अगर कोई हमारे यहां से हार चुरा ले, तो वो उंगलियों के निशान देखते हैं और पता लगाते हैं।"

उन्हें लगता था कि प्रयोगों से भी अच्छे और बुरे का पता लगाने में मदद मिलती है। सही और गलत का नहीं, पर 'अच्छे' और 'बुरे' का। विज्ञान से जुड़ी यह एक अजीब नैतिक धारणा थी जो बच्चों की सोच में नज़र आती थी।

दैनिक जीवन में वैज्ञानिक मानसिकता

आमतौर पर, जो भी व्यवहार और मान्यता प्रचलित थी उसे सही मानने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। जब भी मैं किसी बात के सही होने का कारण पूछती थी तो अक्सर यही प्रतिक्रिया मिलती। 'ऐसा ही होता है।' जब किसी बात के बारे में पता लगाना होता तो बच्चे कहते कि हम किसी बड़े से पूछेंगे। सिर्फ नरेश और विपिन ही थे जिन्होंने कहा था कि वे प्रयोग करके देखेंगे। हालांकि नरेश को भी लगता था कि कुछ चीज़ों के लिए तो शिक्षक के पास ही जाना होगा।

"हर एक बात के लिए तो प्रयोग नहीं है।" वो कहता था।

मैंने जानबूझकर एक उदाहरण उनके सामने रखा जिसमें शिक्षक की बताई बात को प्रयोग गलत साबित कर रहा था। दीपक और दिनेश से मैंने पूछा, "वे किस पर भरोसा करेंगे?"

"प्रयोग पर, क्योंकि गुरुजी ने वो तो यह देखने के लिए कहा था कि हमें अपने आप पर भरोसा है कि नहीं।" बहुत सावधानी से दीपक ने प्रयोग की सच्चाई का संतुलन गुरुजी के कथन के साथ बिठा दिया। उसने शिक्षक के मान में कमी नहीं आने दी। यानी, अपने से 'बड़ों' का सम्मान रखना एक निहायत ज़रूरी बात थी। ज्ञान खोजने के तरीकों में यह भी एक ज़रूरी बात थी।

मैंने पाया कि व्यक्तिगत सम्मान व विश्वास के रिश्तों का महत्व सिर्फ

बड़े-छोटों के बीच ही नहीं बल्कि आपस में भी था। जब बच्चे दोस्तों के बीच आपस में बातचीत करते थे तो एक-दूसरे की बातों के प्रति उनके मन में भरोसा कर लेने की प्रवृत्ति नज़र आती थी। दूसरे का कहा आसानी से मान लेने का यह भाव तभी बदलता था जब उनमें मन-मुटाव हो गया हो, और वे एक-दूसरे को 'दुश्मन' समझने लगे हों। ऐसे में दूसरे बच्चे की हर बात पर शक करना सहज था, क्योंकि वह भरोसे के लायक नहीं था, झूठ बोल सकता था। इस स्थिति में बहस होती नज़र आती थी, बच्चे किसी बात को स्थापित करने के लिए तर्क और तथ्य पेश करते पाए जाते थे।

इस पहलू पर गौर करें तो यह समझ में आता है कि लोगों के मन में तभी शक उठता है जब किसी के नैतिक चरित्र पर संदेह हो इसलिए शिक्षक व मित्र की बातों पर प्रश्न सहज नहीं उठते, लेकिन 'दुश्मन' की बातों पर सदैव ही प्रश्न चिन्ह उठते रहते हैं। एक बार फिर मानसिकता में जो लकीर खिंची हुई है, वो सही और गलत के बीच नहीं खिंची, सच और झूठ के बीच खिंची है ऐसा समझ में आता है।

दैनिक जीवन में विज्ञान का ज्ञान

बच्चे के गांव का जीवन किसी भी तरह से स्कूली पढ़ाई के साथ नहीं जोड़ा जाता था। जब उन्हें समझ में आया कि मैं 'स्कूली ज्ञान' से संबंधित सवाल पूछने में उनके गांव का हवाला दे रही हूं तो वे चौंक पड़े 'इस प्रश्न में अलीपुर कैसे आ गया?'

शिक्षक भी कड़ाई के साथ स्कूल और बाहर की बातों को एक-दूसरे से जुदा रखते थे। वे बच्चों के अनुभव को देखने, कहने, बताने को कक्षा की प्रक्रिया में ज़रा भी जगह बनाने की अनुमति नहीं देते थे।

शिक्षक, "चिकने फर्श पर चलना क्यों मुश्किल है?"

पंकज, "जूते फिसल जाते हैं इसीलिए।"

शिक्षक, "नहीं। किताब में जो लिखा है उसके अनुसार उत्तर बताओ।"

शिक्षक विज्ञान की विशेष शब्दावली के उपयोग पर भी ज़ोर दिया करते हैं।

शिक्षक, "ऐसी पांच चीज़ें बताओ जो बल लगने से गति करती हैं।"

पवन–1, "ट्रेन, साइकिल, स्कूटर, बस ....।"

पवन–2, "साइकिल बल लगने से चलती है।"

शिक्षक ने टोका, "गति करती है, ऐसा कहना चाहिए। हम विज्ञान की बात कर रहे हैं।"

एक तरफ तो बच्चों को अपनी स्थानीय हरयाणवी छोड़कर मानक हिन्दी में ही सारी पढ़ाई-लिखाई करनी होती थी। उस पर, विज्ञान की विशेष 'भाषा' बोलने की भी लगातार अपेक्षा की जाती थी। इससे उनके जीवन से पढ़ाई की दुनिया और दूर चली जाती थी।

पाठ्यक्रम से अलग किसी भी बात को दर किनार करने के कई तरीके शिक्षकों के पास थे। सबसे आम तरीका था कि बच्चों की बात की तरफ ध्यान ही मत दो। इससे बच्चों को यह महसूस होता था कि वे जो भी कह रहे हैं वो किसी महत्व का नहीं, किसी मतलब का नहीं।

एक दूसरा तरीका यह था कि बच्चों ने जो भी अलग से कहा उसे संदिग्ध साबित कर दो – "तब तो तुम जन्में भी नहीं थे। तुम्हें पता ही क्या है?" इस तरह के जुमलों से शिक्षक अपनी हैसियत के बल पर बच्चों की बात को गलत करार कर देते थे। बच्चों के लिए इस सबका संदेशा साफ था – कि उन्हें चुप रहना चाहिए।

निष्कर्ष

जॉन डयूई कहते हैं कि जब कोई मूल्य खत्म हो रहा होता है, तब उसकी चर्चा सबसे ज़्यादा होती है। प्राथमिक विज्ञान की किताबों में घोषित विज्ञान के मूल्यों को लेकर यह फैसला सुनाना बेहद कड़वा ज़रूर होगा, पर इसमें कोई शक नहीं कि न तो पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु न शिक्षकों के सिखाने के तरीके यह आभास देते हैं कि उक्त मूल्य स्कूली विज्ञान की दुनिया में जीवित हैं। बच्चों के बोले हुए वाक्य जाने-पहचाने हैं पर उनमें एक कसक है, और वे बहुत बारीकी से इस बात का खुलासा करते हैं कि बच्चों को विज्ञान में वो सब नज़र नहीं आता, जो वैज्ञानिकों और शिक्षा -शास्त्रियों के लिए सबसे मूल बातें हैं।

इस कटु संदर्भ में हमें पाठ्यक्रमों को सुधारने के लिए उठाए गए कई कदमों का ज़िक्र करना चाहिए, जिनमें होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम एक है, जो अब एकलव्य के ज़िम्मे है। यह कार्यक्रम 'विज्ञान करने' का मौका बच्चों को देता है और इस तरह स्कूली विज्ञान को एक नया आधार देता है। इसमें प्रयोग, अवलोकन और विश्लेषण करने की भूमिका प्रमुख हो जाती है क्योंकि सीखने का मतलब खुद बच्चों द्वारा ज्ञान की संरचना करने से लिया गया है।

नई किताबों व प्रयोग सामग्री के अलावा अनिवार्य तौर पर शिक्षकों का प्रशिक्षण किया जाता है ताकि वे

इस नए नज़रिए से विज्ञान 'पढ़ा' सकें

यह कार्यक्रम मिडिल स्कूल स्तर के लिए है यह सच है। यह सोचना सही ही होगा कि प्रायमरी स्तर पर विज्ञान का तरीका और विषयवस्तु अलग होनी पड़ेगी।

ऐसे कार्यक्रम विकसित करने की ज़रूरत है जो प्रायमरी स्तर पर भी विज्ञान सीखने की क्रिया को ऐसा बनाएं कि वह बच्चे के अपने परिवेश से जुड़ पाए, कि बच्चे ज्ञान की संरचना खुद कर सकें।

यशपाल समिति की रिपोर्ट ने यह दिखाया है कि स्कूली बच्चों पर असल बोझ जो है वो न समझने का बोझ, निरर्थकता का बोझ है। बच्चों की बातों से भी इस बोझ की तकलीफ झलक जाती है। स्कूलों की इस असलियत को सुधारना एक निहायत ज़रूरी मुद्दा है।

पदमा सारंगपाणि: दिल्ली विश्वविद्यालय से शिक्षा में शोध करने के बाद अब 'दिगंतर' जयपुर में काम कर रही हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के 'सेंटर फॉर साइंस एज्यूकेशन एंड कम्यूनिकेशन' के तहत चल रहे प्राथमिक शाला में गणित शिक्षण के प्रयोग के साथ भी संलग्न रही हैं।

मूल लेख अंग्रेज़ी में। **अनुवाद: रश्मि पालीवाल** – रश्मि एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से संबद्ध हैं।

माइकल फैराडे एक जीवट वैज्ञानिक

कोई क्रमबद्ध शिक्षा नहीं, बस सीखने और प्रकृति के नियमों को समझने की अगाध ललक। जिल्दसाज़ से दुनिया का एक महान वैज्ञानिक – सचमुच फैराडे धुन का पक्का था।

ब्रिटेन के सर हम्फ्री डेवी अपने समय के महान रसायनज्ञ थे। वैज्ञानिक के रूप में उनकी प्रतिष्ठा का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि 1807 में जब फ्रांस और ब्रिटेन के बीच घमासान युद्ध छिड़ा हुआ था तब डेवी को 'इंस्टिट्यूट द फ्रांस' का 'नेपोलियन पुरस्कार' दिया गया था। डेवी से जीवन के अंतिम दिनों में जब पूछा गया कि उनकी महान खोजें क्या-क्या हैं तो उन्होंने उत्तर दिया – "खदान में जलने वाला सुरक्षा लैंप, कुछ विद्युतीय व रासायनिक खोजें और माइकल फैराडे।" कौन था यह फैराडे?

फैराडे का बचपन

एक बेहद गरीब परिवार में जन्मे माइकल फैराडे ने किसी स्कूल में शिक्षा नहीं ली। चर्च में रविवार को लगने वाली पाठशाला में ही उसने लिखना और पढ़ना सीखा। 14 वर्ष की छोटी-सी उम्र में उसने अखबार बांटना शुरू कर दिया और एक जिल्दसाज़ के यहां नौकरी कर ली। यहीं पर फैराडे को रसायन शास्त्र की पुस्तकें पढ़ने का मौका मिला और उसकी रुचि इस विषय में बढ़ती गई।

1812 में सर हम्फ्री डेवी ने लंदन के रॉयल इंस्टिट्यूशन में व्याख्यानों की

एक शृंखला आयोजित की। फैराडे ने इन व्याख्यानों को सुना। वह इनसे इतना प्रभावित हुआ कि उसने विस्तार पूर्वक उन व्याख्यानों को लिखा और उन पर जिल्द चढ़ा कर डेवी को भेंट किए। साथ ही उनसे उनकी प्रयोगशाला में काम देने का अनुरोध किया। डेवी फैराडे के उत्साह से काफी प्रभावित हुए और उन्होंने फैराडे का इंटरव्यू लिया। लेकिन उन्होंने तुरंत उसे कोई काम नहीं दिया।

कुछ ही समय के बाद डेवी प्रयोगशाला में घटी एक दुघर्टना के कारण आंशिक रूप से अंधे हो गए। इसके बाद उन्होंने फैराडे को अपने नोट्स लेने के लिए रखा। थोड़े और दिनों बाद ही डेवी का अपने एक सहायक से झगड़ा हो गया। उन्होंने उसे निकाल दिया और उसकी जगह सहायक के पद पर फैराडे को रखा। यह साल था 1813.

इसी साल डेवी यूरोप की यात्रा पर निकले, फैराडे भी उनके साथ में था। इस दौरे में दुनिया के कुछ प्रमुख रसायनशास्त्रियों से उसकी मुलाकात हुई। साथ ही डेवी रोज़ाना उसे पढ़ाते। यह दौरा 1815 में समाप्त हुआ। और शायद फैराडे के ज्ञान में इस दौरे ने काफी बढ़ोत्तरी की। फैराडे डेवी के साथ 1820 तक रहा। इस दौरान फैराडे ने डेवी की सहायता तो की ही साथ ही खुद भी स्वतंत्र रूप से प्रयोग करने शुरू कर दिए थे।

कुछ स्वतत्र शोध

फैराडे का सबसे पहला उल्लेखनीय काम था 1820 में कार्बन व क्लोरीन के यौगिकों का निर्माण - C_2Cl_6 और C_2Cl_4। उन्होंने एथिलीन गैस में हाइड्रोजन को क्लोरीन द्वारा विस्थापित करके ऐसा किया। रसायन शास्त्र में यह पहली विस्थापन क्रिया थी। बाद में इन्हीं यौगिकों के द्वारा बर्ज़ीलियस के रासायनिक संयोग सिद्धांत को चुनौती दी गई।

इसी वर्ष फैराडे ने लौह मिश्र धातुओं पर प्रयोग शुरू किए जिसकी बुनियाद पर आगे चलकर धातुविज्ञान का ढांचा खड़ा हुआ। इसके अगले वर्ष ही फैराडे ने टेट्राक्लोरोएथिलीन का निर्माण किया। शीघ्र ही टेट्राक्लोरोएथिलीन का एक घोलक के रूप विभिन्न उद्योगों में व्यापक रूप से इस्तेमाल होने लगा क्योंकि यह अज्वलनशील व विषरहित रसायन है।

विद्युत के प्रयोग

1820 में डेनमार्क के हैंस क्रिश्चियन ऑरस्टेड नामक वैज्ञानिक ने एक महत्वपूर्ण खोज की कि किसी भी तार में विद्युत धारा का प्रवाह, उस तार के चारों ओर एक चुंबकीय क्षेत्र पैदा करता है। फ्रांस के वैज्ञानिक एंपीयर ने यह दिखाया कि यह चुंबकीय क्षेत्र वृत्ताकार होता है।

विद्युत चुंबकीय घूर्णन को प्रदर्शित करने वाला फैराडे का उपकरण: जब उपकरण में विद्युत बहती है तो बाईं तरफ लगा चुंबक एक स्थिर तार के चारों ओर घूमता है। वहीं दाहिनी तरफ वाले हिस्से में एक तार इस तरह लटका है कि वह स्थिर चुंबक के चारों ओर घूम सके।
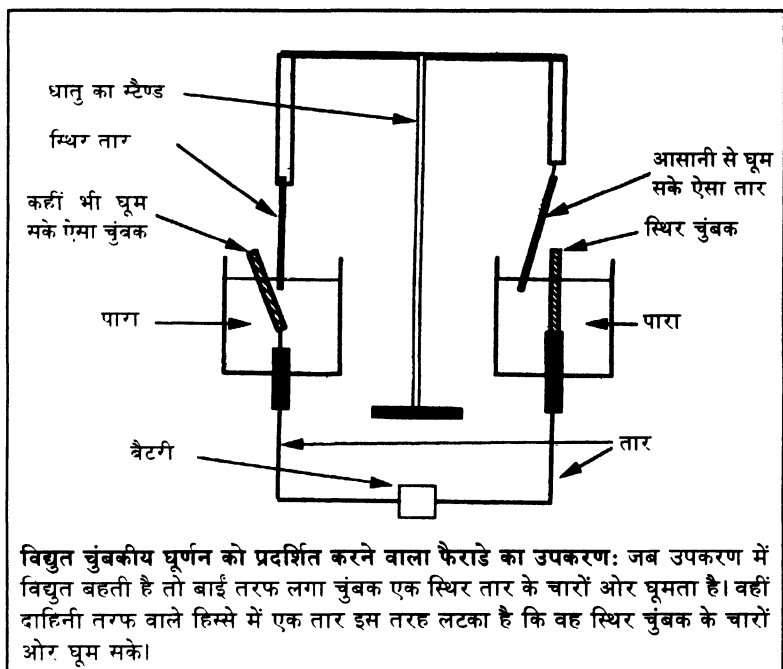
फैराडे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इस निष्कर्ष के महत्व को समझा। उनका विचार था कि यदि एक चुंबकीय ध्रुव को अलग किया जा सके तो वह विद्युत प्रवाहित होने वाले तार के चारों ओर एक वृत्ताकार पथ में समान गति से घूमेगा। अपनी प्रतिभा और प्रयोग शाला तकनीकों की विशिष्टता का उपयोग करते हुए फैराडे ने एक उपकरण का निर्माण किया जिससे उसके विचारों की पुष्टि होती थी। यह उपकरण पहली ऐसी विद्युत मोटर थी जिसके द्वारा विद्युत ऊर्जा यांत्रिक ऊर्जा में बदली गई।

इस प्रयोग की सफलता के बाद फैराडे को विद्युत के स्वभाव के बारे में जिज्ञासा हुई। अपने समकालीन वैज्ञानिकों के मत के विपरीत, वे इस बात से संतुष्ट नहीं थे कि विद्युत, तार में उसी तरह बहती है जैसे पाइप में पानी। उनका विचार था कि विद्युत एक प्रकार का कंपन या बल है जो विद्युत ले जाने वाले माध्यम में पैदा हुए तनाव के कारण एक जगह से दूसरी जगह स्थानांतरित होती है। लेकिन एक प्रयोग ने फैराडे को बहुत

फैराडे का ट्रांसफार्मर: लोहे की चकती पर लपेटकर बनाई गई कुंडली (A) में से धारा प्रवाहित की जाती है। इस विद्युत धारा को क्रमशः बंद कर, प्रवाहित कर साथ लगी दूसरी कुंडली (B) में प्रेरित विद्युत धारा पैदा की जाती है।
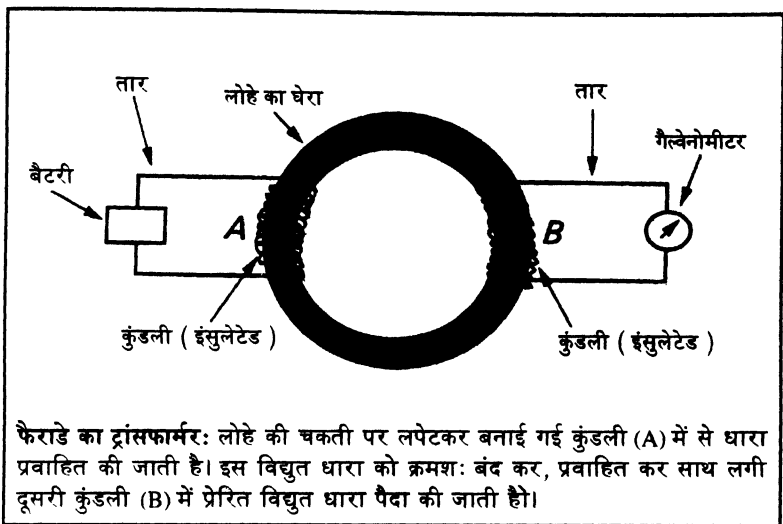
परेशान किया। उसका विचार था कि यदि ध्रुवीकृत प्रकाश की किरणें एक ऐसे घोल में से प्रवाहित की जाएं जिसमें विद्युत रासायनिक पृथक्करण हो रहा हो तो विद्युतधारा के बहाव के कारण होने वाली अंतराण्विक क्रियाओं का पता लगाया जा सकता है। अपने जीवन के अंत तक उन्होंने बार-बार इस धारणा की पुष्टि के लिए प्रयोग किए किंतु हर बार असफल रहे।

1820 में फैराडे को लंदन की रॉयल सोयाइटी द्वारा एक शोध परियोजना दी गई। इसके अंतर्गत उन्हें दूरदर्शी में लगने वाले लैंसों की गुणवत्ता में सुधार करना था। इस काम में किए गए प्रयोगों द्वारा उन्होंने अत्यंत उच्च अपवर्तनांक वाले कांच का निर्माण किया। कुछ वर्ष बाद फैराडे ने बेंज़ीन को खोज निकाला – लेकिन इसका नाम बेंज़ीन एक जर्मन रसायनज्ञ फॉन हॉफमैन ने रखा, जिसने इसे कोलतार में पाया था।

1830 में फैराडे ने भौतिकी में बलों की रेखाओं की धारणा प्रस्तुत की। 1831 में उन्होंने अपने प्रयोगात्मक परीक्षणों द्वारा चुंबकीय क्षेत्र में बदलाव के कारण, विद्युत क्षेत्र में होने वाले बदलाव का उससे एक गुणात्मक संबंध स्थापित किया। फैराडे ने प्रतिपादित किया कि चुंबकीय क्षेत्र कई प्रेरण रेखाओं से बना होता है। जब प्रेरण रेखाओं का झुंड किसी निश्चित क्षेत्र को काटता है तो इसे

चुंबकीय-विद्युतीय प्रेरण को दर्शाने के लिए फैराडे ने इस उपकरण का उपयोग किया: इसमें तार की एक कुंडली में एक चुंबक अंदर बाहर होता है – इस कुंडली से एक गैल्वेनोमीटर जुड़ा हुआ है; चुंबक की इस गति से कुंडली में विद्युत धारा पैदा होती है।
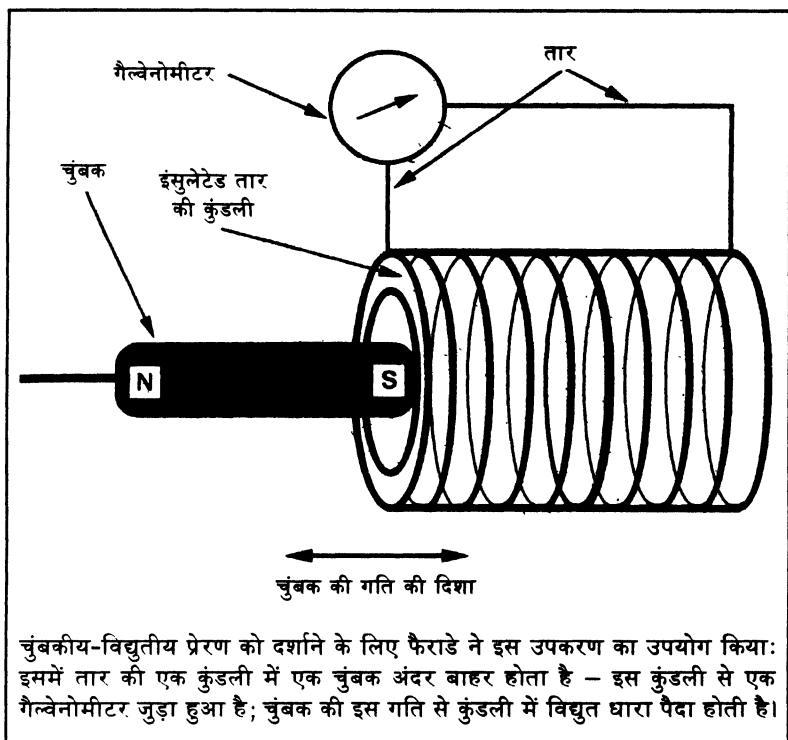
चुंबकीय फ्लक्स कहते हैं।

चुंबकीय फ्लक्स में बदलाव का बुनियादी प्रभाव होता है विद्युत क्षेत्र का उत्पन्न होना। कुछ वर्षों बाद एक ब्रिटिश भौतिक-शास्त्री मैक्सवेल ने इस धारणा को गणितीय सूत्र दिया। इसे फैराडे का 'प्रेरण का नियम' कहते हैं।

1833 में फैराडे ने अपने प्रयोगों द्वारा विद्युत अपघटन के नियम स्थापित किए जिन्हें फैराडे के 'विद्युत अपघटन नियम' कहते हैं। ये दो नियम इस प्रकार हैं।

1. किसी भी विद्युत धारा द्वारा अपघटित होने वाले रासायनिक परिवर्तन की मात्रा इलेक्ट्रोड व इलक्ट्रोलाइट सीमा पर लगने वाली विद्युत की मात्रा का समानुपाती होती है।
2. विभिन्न पदार्थों में समान विद्युत धारा से पैदा होने वाले रसायन की मात्रा, उनके समतुल्य भारों के समानुपाती होती है।
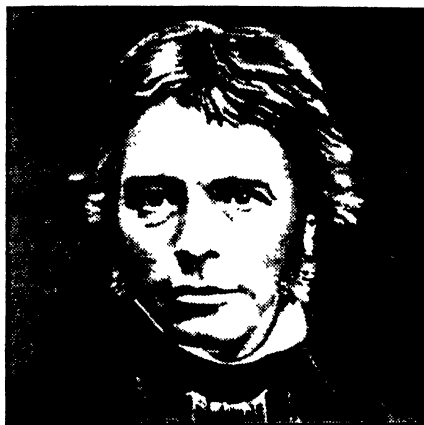
माइकल फैराडे

इसी वर्ष फैराडे ने मैग्नीशियम के विद्युत अपघटन द्वारा सर्वप्रथम मैग्नीशियम प्राप्त किया। 1866 में एक जर्मन कंपनी फॉर्बेन इंडस्ट्री ने फैराडे द्वारा विकसित विधि का उपयोग करते हुए मैग्नीशियम का व्यावसायिक उत्पादन शुरू किया।

दरअसल फैराडे के विद्युत अपघटन के नियमों के पीछे एक किस्सा छुपा हुआ है। 1830 में, उस समय के वैज्ञानिकों में यह बहस छिड़ी हुई थी कि विद्युत-चुंबक द्वारा या बैटरी द्वारा प्राप्त बिजली अलग-अलग है या एक? फैराडे ने अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि सभी प्रकार की विद्युत के गुण व प्रभाव एक से हैं अतः सभी प्रकार से पैदा होने वाली विद्युत एक ही है। इन्हीं प्रयोगों के दौरान विद्युत अपघटन नियमों का पता चला।

लेकिन एक क्षेत्र ऐसा था जहां फैराडे पूर्णतः असफल रहे। फैराडे ने अगस्त 1831 में अपने कुछ प्रयोगों के आधार पर बिजली ले जाने वाले तार में कणों की 'इलेक्ट्रोटॉनिक' अवस्था की अवधारणा प्रस्तुत की। यद्यपि उन्हें प्रयोगों द्वारा इस अवस्था के होने का कोई प्रमाण नहीं मिला फिर भी इस दिशा में वे लगातार प्रयोग करते रहे।

लेकिन लगातार शोध में उलझे रहने के कारण उनका स्वास्थ्य पूरी तरह बिगड़ गया था। अंततः 1834 में बीमारी के कारण उन्होंने सक्रिय प्रयोग बंद कर दिए और 1845 तक कोई विशेष काम नहीं किया। 1845 में उन्होंने पुनः अपने प्रयोग शुरू किए। इसी वर्ष उन्होंने एक महत्वपूर्ण खोज की, जिसे अब फैराडे प्रभाव कहा जाता है। उन्होंने अपने प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि जब ध्रुवीकृत प्रकाश की किरणें चुंबकीय क्षेत्र से गुज़रती हैं और यदि प्रकाश पथ तथा चुंबकीय क्षेत्र समानांतर हों, तो ध्रुवण तल घूम जाता है।

फैराडे ने विद्युत रसायन तत्वयागमिति के नियमों की स्थापना भी की। उन्होंने बताया कि विद्युत का एक कूलम्ब (विद्युत आवेश की मात्रा) किसी पदार्थ की निश्चित मात्रा से ही क्रिया

फैराडे का डायनमो: इसमें हाथ की सहायता से तांबे की एक चकती को एक शक्तिशाली चुंबक के ध्रुवों के बीच घुमाया जाता है। इस प्रक्रिया से इसमें विद्युत की लगातार धारा पैदा होती है।

करता है जैसे कि किसी भी पदार्थ का एक ग्राम 96,487 कूलम्ब से ही क्रिया करता है।

अपने वैज्ञानिक काम की शुरुआत से ही उनको विश्वास था कि प्रकृति के सभी बल एक ही सर्वव्यापी बल के विभिन्न रूप हैं और इसलिए एक बल को दूसरे बल में बदलना संभव है। उन्होंने इस संबंध में अपने विचार भी व्यक्त किए। फैराडे, रॉयल इंस्टिट्यूशन के साथ मिलकर विज्ञान को लोकप्रिय बनाने का काम भी किया करते थे।

एक बार ऐसी ही एक सभा में श्रोता की हैसियत से फैराडे ने भाग लिया। लेकिन वहां हुआ यह कि जिसे भाषण देना था वह भीड़ देखकर भाग गया। तब फैराडे को भाषण देने को कहा गया।

यहां भाषण देते हुए फैराडे ने कहा कि विद्युत व चुंबकीय बलों की रेखाएं, जो अणुओं से जुड़ी होती हैं वे प्रकाश तरंगों को प्रसारित करने में एक माध्यम की तरह काम करती हैं। इन्हीं विचारों के आधार पर कई वर्षों बाद मैक्सवेल ने विद्युतचुंबकीय क्षेत्र सिद्धांत प्रस्तुत किया।

समचुंबकत्व या विषम चुंबकत्व

फैराडे का अंतिम योगदान था विषम चुंबकत्व और सम चुंबकत्व की खोज। उसने यह पाया कि चुंबकीय क्षेत्र में रखने पर अलग -अलग पदार्थों पर अलग-अलग असर होता है। कुछ पदार्थ, जैसे लोहा निकल, कोबाल्ट आदि की रवेदार संरचनाएं चुंबकीय बल रेखाओं के समानांतर हो जाती हैं और ये पदार्थ सघन चुंबकीय क्षेत्र की ओर आकर्षित होते हैं। इन्हें नाम दिया गया सम चुंबकत्व या पैरामैग्नेटिक पदार्थ। दूसरी प्रकार के पदार्थों की रवेदार संरचनाएं चुंबकीय क्षेत्र के समकोण घूम जाती हैं और ये पदार्थ विरल चुंबकीय क्षेत्र की ओर आकर्षित हो जाते हैं। ऐसे पदार्थों को विषम चुंबकत्व या डायमैग्नेटिक पदार्थ का नाम दिया गया।

1850 तक फैराडे ने आकाश (स्पेस) व बलों के संबंध में अपनी स्पष्ट विचारधारा बना ली थी। उसके अनुसार आकाश एक ऐसा माध्यम था जो विद्युत व चुंबकीय बलों की सहायता करने में समर्थ था और विश्व की ऊर्जा उसके आसपास के आकाश में निहित है। इस प्रकार क्षेत्र सिद्धांत (फील्ड थ्योरी) का जन्म हुआ। मैक्सवेल ने स्वीकार किया कि उसके गणितीय सिद्धांत फैराडे के विचारों से आए हैं।

1855 तक आते-आते फैराडे का दिमाग कमज़ोर होने लगा। उन्होंने गुरुत्वाकर्षण बल को विद्युत बल में बदलने की कोशिश की पर असफल रहे और अंततः उन्होंने सक्रिय शोध बंद कर दी। 25 अगस्त 1867 को उनकी मृत्यु हुई।

फैराडे के काम से ऐसा प्रतीत हुआ था मानो उन्होंने न्यूटनी भौतिकी की जड़ों पर सीधे प्रहार किया हो। पर मैक्सवेल ने जब फैराडे के काम की गणितीय व्याख्या की तो यह स्पष्ट हो गया कि न्यूटन और फैराडे के सिद्धांतों में पूरी एकरूपता है। फैराडे ने अपनी पीढ़ी के कई वैज्ञानिकों को प्रभावित किया। उसमें सबसे प्रमुख थे मैक्सवेल। एक जर्मन वैज्ञानिक हेमहॉल्ट्ज़ भी फैराडे से अत्यधिक प्रभावित थे। 1881 में लंदन में फैराडे की स्मृति में दिए गए एक भाषण में हेमहॉल्ट्ज़ ने कहा कि यदि वैज्ञानिक रासायनिक अणुओं का अस्तित्व मानते हैं (जो कि उस समय लगभग सभी वैज्ञानिक मानते थे) तो विद्युत के स्वभाव को समझने के लिए फैराडे के रासायनिक अपघटन नियमों को मानना आवश्यक हो जाता है। और यदि कहा जाए कि अमेरिका वैज्ञानिक थॉमस अल्वा एडीसन को तो प्रेरणा ही माइकल फैराडे थे तो गलत नहीं होगा।

यह जीवनी स्रोत के अगस्त 1989 के अंक से ली गई है।

जब हमला हो तो. . .

कहानियों में पढ़ा है न कि भालू चढ़ा पेड़ पर मधुमक्खियों के छत्ते से शहद चुराने . . . एक मधुमक्खी ने उसे देख लिया, उड़ के पहुंची और ज़ोर से मारा डंक उसकी नाक पर और उसके बाद तो मधुमक्खियों का पूरा का पूरा हुजूम ही उसके पीछे पड़ गया!

खैर यह तो कहानी वाली बात थी। लेकिन सवाल है कि उस पहली मधुमक्खी के डंक में ऐसी क्या खास बात थी कि सभी को मालूम पड़ गया कि आया है कोई हमलावर?

तो पहली मक्खी के पहले डंक के साथ ही एक रसायन निकला। इस रासायनिक संकेत ने दूसरी मक्खियों को उस स्थान की ओर – जैसे कि भालू – आकर्षित किया। चींटियो में भी ऐसा ही होता है। समूह का कोई सदस्य रसायन के रूप में खतरा संकेत छोड़ता है। अन्य चींटियां इसे ग्रहण कर उस स्थान पर पहुंचना शुरु कर देती हैं।

अलग-अलग जीवों में चेतावनी या अपने समूह के दूसरे सदस्यों तक खतरे की सूचना पहुंचाने के अलग अलग तरीके विसकित हुए हैं। क्योंकि प्रकृति में हमला या दूसरे जीवों से खतरा एक बिल्कुल ही सहज चीज़ है।

और कई बार तो ऐसा भी होता है कि संकेत किसी दूसरे समूह के सदस्य से आए। जैसे कि चीतल, हनुमान लंगूर आदि के द्वारा दिए जा रहे खतरे के संकेतों को समझ कर सचेत हो जाता है।

अब इससे क्या समझें? इस मिलेजुलेपन का असर शायद यह होता है कि हमलावर को उस क्षेत्र में शिकार मिलने की संभावना काफी कम हो जाती है। इस वजह से इस क्षेत्र की तरफ उसका आकर्षण भी कम हो जाता होगा। यानी इससे सभी का फायदा है।

कहानी

टॉर्च बेचने वाले

हरिशंकर परसाई

चित्र: विप्लव शशि
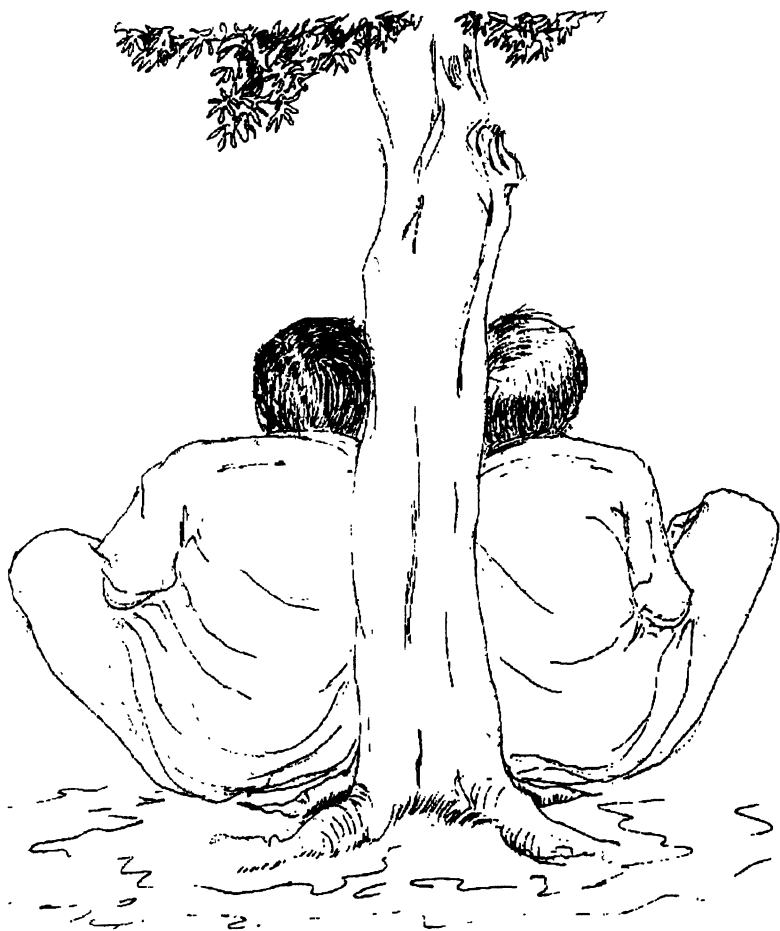
वह पहले चौराहों पर बिजली के टॉर्च बेचा करता था। बीच में कुछ दिन वह नहीं दिखा। कल फिर दिखा मगर इस बार उसने दाढ़ी बढ़ा ली और लंबा कुरता पहन रखा था।

मैंने पूछा, "कहां रहे, और यह दाढ़ी क्यों बढ़ा रखी है?"

उसने जवाब दिया, "बाहर गया था।"

उसने जवाब यह दिया और दाढ़ी पर हाथ फेरने लगा।

मैंने कहा, "आज तुम टॉर्च नहीं बेच रहे हो?"

उसने कहा, "वह काम बंद कर दिया अब तो आत्मा के भीतर टॉर्च जल उठा है। ये सूरज छाप अब व्यर्थ मालूम होते हैं।"

मैंने कहा, "तुम शायद सन्यास ले रहे हो। जिसकी आत्मा में प्रकाश फैल जाता है, वह इसी तरह हराम खोरी पर उतर आता है। किससे दीक्षा ले आए?"

मेरी बात से उसे पीड़ा हुई। उसने कहा, "ऐसे कठोर वचन मत बोलिए। आत्मा सबकी एक है। मेरी आत्मा को चोट पहुंचाकर आप अपनी ही आत्मा को घायल कर रहे हैं।"

मैंने कहा, "यह सब तो ठीक है मगर यह बताओ तुम एकाएक ऐसे कैसे हो गए, क्या बीवी ने तुम्हें त्याग दिया, क्या उधार मिलना बंद हो गया, क्या साहूकारों ने ज़्यादा तंग करना शुरू कर दिया, क्या चोरी के मामले में फंस गए हो, आखिर बाहर का टॉर्च भीतर आत्मा में कैसे घुस गया?"

उसने कहा, "आपके सब अंदाज़ गलत हैं, ऐसा कुछ नहीं हुआ। एक घटना हो गई है जिसने जीवन बदल दिया। उसे मैं गुप्त रखना चाहता हूं। पर मैं आज ही यहां से दूर जा रहा हूं इसलिए आपको सारा किस्सा सुना देता हूं।"

उसने बयान शुरू किया:

पांच साल पहले की बात है। मैं अपने एक दोस्त के साथ हताश एक जगह बैठा था। हमारे सामने आसमान को छूता हुआ एक सवाल खड़ा था। यह सवाल था कि पैसा कैसे पैदा करें। हम दोनों ने उस सवाल की एक-एक टांग पकड़ी और उसे हटाने की कोशिश करने लगे, हमें पसीना आ गया पर सवाल हिला भी नहीं। दोस्त ने कहा, 'यार इस सवाल के पांव ज़मीन में गहरे गड़े हैं। यह उखड़ेगा नहीं। इसे टाल जाएं।'

हमने दूसरी तरफ मुंह कर लिया पर वह सवाल फिर हमारे सामने आकर खड़ा हो गया। तब मैंने कहा, 'यार यह सवाल टलेगा नहीं, चलो इसे हल ही कर दें। पैसा पैदा करने के लिए कुछ काम-धंधा करें। हम इसी

वक्त अलग-अलग दिशाओं में अपनी किस्मत आज़माने निकल पड़ें। पांच साल बाद ठीक इसी तारीख को इसी वक्त हम यहां मिलें।'

दोस्त ने कहा, 'यार साथ ही क्यों न चलें।'

मैंने कहा, 'नहीं किस्मत आज़माने वालों की जितनी पुरानी कथाएं मैंने पढ़ी हैं, सबमें वे अलग-अलग दिशा में जाते हैं। साथ जाने में किस्मतों के टकराकर टूटने का डर होता है।'

तो साहब हम अलग अलग दिशा में चल पड़े। मैंने टॉर्च बेचने का धंधा शुरू कर दिया। चौराहे पर या मैदानों में लोगों को इकट्ठा कर लेता और बहुत नाटकीय ढंग से कहता, 'आजकल सब जगह अंधेरा छाया रहता है। रातें बेहद काली होती हैं। अपना ही हाथ नहीं सूझता। आदमी को रास्ता नहीं दिखता। वह भटक जाता है, उसके

पांव कांटों से बिंध जाते हैं, वह गिरता है और उसके घुटने लहूलुहान हो जाते हैं। उसके आसपास भयानक अंधेरा है, शेर और चीते चारों तरफ घूम रहे हैं। सांप ज़मीन पर रेंग रहे हैं, अंधेरा सबको निगल रहा है। अंधेरा घर में भी है, आदमी रात में पेशाब करने उठता है और सांप पर उसका पांव पड़ जाता है, सांप उसे डस लेता है और वह मर जाता है . . . .।'

आपने तो देखा ही है साहब मेरी बातें सुनकर लोग कैसे डर जाते थे भरी दोपहरी में वे अंधेरे के डर से कांपने लगते थे। आदमी को डराना कितना आसान है।

लोग डर जाते जब मैं कहता, 'भाइयों यह सही है कि अंधेरा है मगर प्रकाश भी है। वही प्रकाश मैं आपको देने आया हूं। हमारी सूरज छाप टॉर्च में वह प्रकाश है, जो अंधकार को दूर भगा देता है। इसी वक्त सूरज छाप टॉर्च खरीदो और अंधेरे को दूर करो। जिन भाइयों को चाहिए हाथ ऊंचा करें।'

साहब मेरे टॉर्च बिक जाते और मैं मज़े की ज़िंदगी गुज़ारने लगा।

वायदे के मुताबिक ठीक पांच साल बाद मैं ठीक उसी जगह पहुंचा जहां मुझे दोस्त से मिलना था। वहां मैंने दिन भर उसकी राह देखी। वह नहीं आया। क्या हुआ, क्या वह भूल गया या अब वह इस संसार में नहीं है?

मैं उसे ढूंढ़ने निकल पड़ा।

एक शाम जब मैं एक शहर की सड़क पर चला जा रहा था। मैंने देखा कि पास के मैदान में खूब रोशनी है और एक तरफ मंच सजा है। लाऊड स्पीकर लगे हैं। मैदान में हज़ारों नर-नारी श्रद्धा से झुके बैठे हैं। मंच पर सुंदर रेशमी वस्त्रों से सजे एक भव्य पुरुष बैठे हैं। वे खूब पुष्ट हैं, संवारी हुई लंबी दाढ़ी है और पीठ पर लहराते हुए केश हैं।

मैं भीड़ में एक कोने में बैठ गया।

भव्य पुरुष फिल्मों के संत लग रहे थे। उन्होंने गुरु गंभीर वाणी में प्रवचन शुरू किया। वे इस तरह बोल रहे थे, जैसे आकाश के किसी कोने से कोई रहस्यमय संदेश उनके कान में सुनाई पड़ रहा है जिसे वे भाषा दे रहे हैं।

वे कह रहे थे, 'मैं आज मनुष्य को घने अंधकार में देख रहा हूं। उसके भीतर कुछ बुझ गया है। यह युग ही अंधकारमय है। यह सर्वग्राही अंधकार संपूर्ण विश्व को अपने उदर में छुपाए है। आज मनुष्य इस अंधकार से घबरा उठा है। वह पथ-भ्रष्ट हो गया है। आज आत्मा में भी अंधकार है। अंतर की आंखें ज्योतिहीन हो गईं हैं। वे उसे भेद नहीं पातीं। मानव आत्मा अंधकार में घुटती है। मैं देख रहा हूं मनुष्य की आत्मा भय और पीड़ा से त्रस्त है।'

इसी तरह बोलते गए और लोग स्तब्ध सुनते गए।

मुझे हंसी छूट रही थी एक-दो बार दबाते-दबाते भी हंसी फूट गई और पास के श्रोताओं ने मुझे डांटा।

भव्य पुरुष प्रवचन के अंत पर पहुंचते हुए कहने लगे, 'भाइयों और बहनों डरो मत। जहां अंधकार है, वहीं प्रकाश है। अंधकार में प्रकाश की किरण है। जैसे प्रकाश में अंधकार की किंचित कालिमा है, प्रकाश भी है। प्रकाश बाहर नहीं है उसे अंतर में खोजो। अंतर में बुझी ज्योति को जगाओ। मैं तुम सबका उस ज्योति को जगाने के लिए आह्वान करता हूं। मैं तुम्हारे भीतर वही शाश्वत ज्योति को जगाना चाहता हूं। हमारे साधना मंदिर में आकर उस ज्योति को अपने भीतर जगाओ।'

साहब अब तो मैं खिलखिलाकर हंस पड़ा। पास के लोगों ने मुझे धक्का देकर भगा दिया। मैं मंच के पास जाकर खड़ा हो गया।

भव्य पुरुष मंच से उतरकर कार पर चढ़ रहे थे। मैंने उन्हें ध्यान से पास से देखा। उनकी दाढ़ी बढ़ी हुई

थी इसलिए मैं थोड़ा झिझका। पर मेरी तो दाढ़ी नहीं थी, मैं तो मौलिक रूप में था। उन्होंने मुझे पहचान लिया, बोले, 'अरे तुम!' मैं पहचानकर बोलने ही वाला था कि उन्होंने मुझे मेरा हाथ पकड़कर कार में बिठा लिया। मैं फिर कुछ बोलने लगा कि उन्होंने कहा, 'बंगले तक कोई बातचीत नहीं होगी, वहीं ज्ञान-चर्चा होगी।'

मुझे याद आ गया कि वहां ड्रायवर है।

बंगले पर पहुंचकर मैंने उसका ठाठ देखा। उस वैभव को देखकर मैं थोड़ा झिझका पर तुरंत ही मैंने अपने उस दोस्त से खुलकर बातें शुरू कर दीं।

मैंने कहा, 'यार तू तो बिल्कुल बदल गया।'

उसने गंभीरता से कहा, 'परिवर्तन जीवन का अनंत क्रम है।'

मैंने कहा, 'साले फिलासफी मत बघार, यह बता तूने इतनी दौलत कैसे कमा ली पांच सालों में?'

उसने पूछा, 'तुम इन सालों में क्या करते रहे?'

मैंने कहा, 'मैं तो घूम-घूमकर टॉर्च बेचता रहा। सच बता क्या तू भी टॉर्च का व्यापारी है?'

उसने कहा, 'तुझे क्या ऐसा ही लगता है, क्यों लगता है?'

मैंने उसे बताया, 'जो बातें मैं कहता हूं, वही तू कह रहा था। मैं सीधे ढंग से कहता हूं। तू उन्हीं बातों को रहस्यमय ढंग से कहता है। मैं अंधेरे का डर दिखाकर लोगों को टॉर्च बेचता हूं। तू भी अभी लोगों को अंधेरे का डर दिखा रहा था। तू भी ज़रूर टॉर्च बेचता है।'

उसने कहा, 'तुम मुझे नहीं जानते, मैं टॉर्च क्यों बेचूंगा? मैं साधु, दार्शनिक और संत कहलाता हूं।'

मैंने कहा, 'तुम कुछ भी कहलाओ बेचते तुम टॉर्च हो। तुम्हारे और मेरे प्रवचन एक जैसे हैं। चाहे कोई दार्शनिक बने, संत बने या साधु बने, अगर वह लोगों को अंधेरे का डर दिखाता है तो ज़रूर अपनी कंपनी का टॉर्च बेचना चाहता है। तुम जैसे लोगों के लिए हमेशा ही अंधकार छाया रहता है। बताओ तुम्हारे जैसे किसी आदमी ने हज़ारों में कभी भी यह कहा है कि आज दुनिया में प्रकाश फैला है? कभी नहीं कहा। क्यों, इसलिए कि उन्हें अपनी कंपनी का टॉर्च बेचना है। मैं खुद, भर-दोपहर में लोगों से कहता हूं कि अंधकार छाया है। बता किस कंपनी का टॉर्च बेचता है?'

मेरी बातों ने उसे ठिकाने पर ला दिया था। उसने सहज ढंग से कहा, 'तेरी बात ठीक है, मेरी कंपनी नई नहीं है। सनातन है।'

मैंने पूछा, 'कहां है तेरी दुकान, नमूने के लिए एकाध टॉर्च तो दिखा।

क्या 'सूरज छाप' टॉर्च से बहुत ज़्यादा बिक्री है उसकी?'

उसने कहा, 'उस टॉर्च की कोई दुकान बाज़ार में नहीं है। वह बहुत सूक्ष्म है, मगर कीमत उसकी बहुत मिल जाती है। तू एक-दो दिन रह तो मैं सब समझा देता हूं।'

"तो साहब मैं दो दिन उसके पास रहा। तीसरे दिन सूरज छाप टॉर्च की पेटी को नदी में फेंककर नया काम शुरू कर दिया।"

वह अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरने लगा। बोला, "बस एक महीने की देर और है।"

मैंने पूछा, "तो अब कौन-सा धंधा करोगे?"

उसने कहा, "धंधा वही करूंगा यानी टॉर्च बेचूंगा। बस कंपनी बदल रहा हूं।"

हरिशंकर परसाई: हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध व्यंग्यकार। व्यंग्य रचनाओं के अलावा उपन्यास, लेख भी लिखे हैं।

'टॉर्च बेचने वाले' परसाई रचनावली खंड: 1 (राजकमल प्रकाशन दिल्ली) से साभार।

विप्लव शशि: बड़ौदा, गुजरात की एम. एस. यूनिवर्सिटी में फाईन आर्टस की पढ़ाई कर रहे हैं।
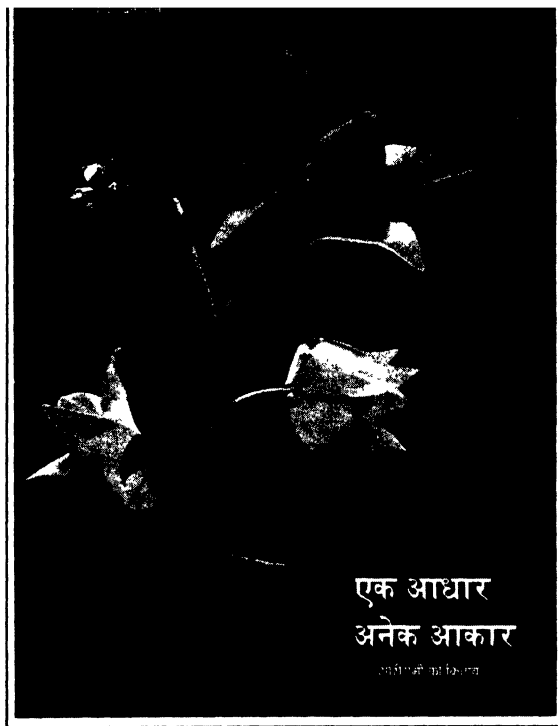
किसने थूक दिया पत्तों पर

के. आर. शर्मा

बचपन में जब हम अपने गांव से दूसरे गांव स्कूल में पढ़ने जाते थे तो रास्ते में यहां-वहां पौधों पर थूक के गोले चिपके देखने को मिलते थे। हममें से कई इन थूक के गोलों को देखकर नाक-भौं सिकोड़ते थे। पर मेरे मन में यह विचार आता था कि पौधों पर कितने इतना सारा थूका होगा?

इस बात को जानने के लिए मैंने जो कुछ भी किया उसे दोस्तों नें गंदा काम समझा। हुआ यूं कि एक दफा मैंने तिनके से थूक को कुरेदा तो देखा कि अंदर कोई कीड़ा कुलबुला रहा है। तब मैंने यही अंदाज़ लगाया था कि कोई कीड़ा वहां बैठा होगा और उसपर किसी ने थूक दिया होगा।

खैर तब बात आई-गई हो गई। लेकिन पिछले दिनों उस थूक और कीड़े के रहस्य को जानने का मौका मिला तो मामला और भी रोचक निकला। पहली बात तो यह पता चली कि पेड़-पौधों पर किसी इंसान ने नहीं थूका बल्कि एक कीट का कमाल है वह। है न अचरज की बात!

खुद थूकेगा और . . .

असल में एक किस्म के कीट का बच्चा खुद 'थूकता' है और फिर उसके अंदर घुसकर आराम फरमाता है। चूंकि यह थूक जैसे पदार्थ के अंदर रहता है इसलिए इसे 'थूक का कीड़ा' और अंग्रेज़ी में 'स्पीटल इनसेक्ट' (Philaenus Spumarius) के नाम से जाना जाता है। बरसात के दिनों में फसलों और अन्य पौधों पर इसको आसानी से देखा जा सकता है।

थूक के कीट की मादा पौधों की पत्तियों व तनों पर अंडे देती है। अंडों सें जो जीव निकलता है वह अपने माता-पिता से काफी मिलता-जुलता है। संदर्भ के पिछले किसी अंक में

आपने पढ़ा होगा कि मक्खी-मच्छर आदि में कायांतरण होता है। अर्थात इनमें अंडों से निकलने वाले बच्चे माता-पिता से काफी फर्क होते हैं। अंडे से क्रमशः लार्वा, प्यूपा और वयस्क बनते हैं। लेकिन थूक के कीड़े में कायातरण नहीं होता। अंडे फूटते हैं। उनमें से सीधे बच्चे निकलते हैं। ये बच्चे शरीर की बनावट तथा व्यवहार में वयस्क कीट से काफी साम्य रखते हैं।

बहरहाल अंडों से निकला बच्चा पौधों का रस चूसकर अपना पेट भरता है और इस दौरान वह अपने मलद्वार से एक तरल पदार्थ छोड़ता है। एक तरफ तो वह तरल पदार्थ छोड़ता जाता है और वहीं दूसरी तरफ अपने पेट में स्थित एक वाल्व युक्त छेद से इस तरल पदार्थ में हवा फूंकता है। जब हवा इस तरल पदार्थ पर पड़ती है तो उसमें खूब सारा झाग बन जाता है, जो थूक जैसा दिखता है।

इस झाग युक्त तरल पदार्थ के भीतर यह शिशु कीट रहने लगता है। आप सोच रहे होंगे कि यह भोजन कहां से और कैसे करता है? दरअसल यह जिस पौधे पर रहता है, वहीं पर — थूक के गोले से बाहर निकले बिना ही — अंदर-ही-अंदर पौधे का रस चूसता रहता है।

सुरक्षा कवच

इस कीट को इस झागदार तरल पदार्थ से सुरक्षा प्राप्त होती है। यह तरल पदार्थ चिपचिपा और बदबूदार होता है अतः कोई अन्य शिकारी जंतु इसके नज़दीक भी नहीं फटकता। यही कारण है कि चरने वाले जानवर ऐसे पौधों के पत्तों आदि को नहीं खाते। यह कीट बरसात के दिनों में कई फसलों जैसे मूंग, उड़द आदि पर भी हमारे यहां देखा जाता है।

थूक के कीड़े की लगभग 2,000 प्रजातियां देखी गई हैं। वयस्क कीट की लम्बाई डेढ़ से.मी. होती है। इस कीट की कुछ किस्में ऐसे पदार्थ का स्राव करती हैं जो घोंघे के शरीर पर पाए जाने वाले खोल जैसा कड़क हो जाता है। शायद यही वजह थी कि किसी समय जीव-शास्त्रियों ने इस कीट को कड़क खोल के आधार पर भ्रमवश घोंघे के साथ वर्गीकृत कर दिया था।

के. आर. शर्मा: एकलव्य के विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े हैं। उज्जैन में रहते हैं। मांपों में विशेष दिलचस्पी रखते हैं।

थूक के कीड़े का थूक

एकलव्य की ओर से राजेश खिंदरी द्वारा भंडारी ऑफसेट, ई-3/12, अरेरा कॉलोनी, भोपाल से मुद्रित एवं एकलव्य, ई-1/25, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 से प्रकाशित। संपादक - राजेश खिंदरी।

संपादनः
राजेश खिंदरी
रश्मि पालीवाल
सी.एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान

सहसंपादकः
माधव केलकर
दीपक वर्मा

चित्रांकनः
शिवेंद्र पांडिया
धनंजय खिरवड़कर

सहयोगः
टुलटुल विश्वास
जया विवेक
शशि सबलोक

मुखपृष्ठः
दूध पीता हाथी का बच्चा
(आईविटनेस एलिफेन्ट गाईड से)

पिछला पृष्ठः
दुनिया का राजनैतिक मानचित्र
(पीटर्स एटलस पर आधारित)

मुखपृष्ठ पर संदर्भः
अनीता वैद्य

संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-3, जनवरी-फरवरी 1995

संपादन एवं वितरणः

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद- 461 001 (म.प्र.)
फोनः 07574 - 3518

वार्षिक सदस्यता (6अंक) : 35 रुपये
(एकलव्य के नाम से ड्राफ्ट/मनीऑर्डर से भेजें)

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित।

इस अंक में

दुनिया का नक्शा

क्या हम जो नक्शा देखते हैं वह सही सही दिखाता है कि दुनिया कैसी है? कक्षा में ग्लोब तथा नक्शे का उपयोग करते समय क्या आपको लगा कि इस नक्शे और ग्लोब में कुछ फर्क है? क्या होता है जब ग्लोब से कागज़ पर नक्शा बनाया जाता है? 51

'ह' में बड़े 'आ' की मात्रा 'हा'

शिक्षक के लिए डायरी लिखना क्यों महत्वपूर्ण है? ताकि वह कक्षा में आज किए गए अपने प्रयासों का विश्लेषण कर सके और कुछ नया ढूंढ सके जिससे कि बच्चे कुछ सीख सकें। ऐसी ही एक डायरी के अंश - 41

प्रिय संपादक,

संदर्भ के दोनों अंक पढ़े। मेरा एक सुझाव है कि संदर्भ में प्राथमिक एवं पूर्व प्राथमिक शिक्षकों के लिए भी ऐसी सामग्री प्रकाशित की जाए जिससे उनको मदद मिले। क्योंकि प्राथमिक शाला तक बच्चों की उम्र ऐसी होती है कि वे तब अपने मस्तिष्क में प्रत्ययों का निर्माण करते हैं, शिक्षकों को प्रत्यय निर्माण और दृष्टिकोण में अनेक कठिनाइयां आती हैं। कभी-कभी शिक्षकों में उस दृष्टिकोण का अभाव होता है। इस दिशा में यदि संदर्भ में सामग्री हो तो शिक्षकों को बहुत मदद मिलेगी।

मीना जोशी
व्याख्याता,
पागनीस पागा, इंदौर

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' के लेख जहाँ तार्किक क्षमता बढ़ाने में सहयोगी हैं वहीं संदर्भ सामग्री के रूप में भी महत्वपूर्ण हैं।
दूसरे अंक में 'इतिहास - ऐसे भी मिलते हैं सुराग' लेख विषय में रोचकता लाने और चिंतन को बढ़ावा देने में सार्थक कदम है। यतीश कानूनगो का लेख 'आगे पाठ पीछे सपाट' वर्तमान शैक्षणिक स्तर का एक नमूना पेश करता है। मैं सुझाव देना चाहूंगा कि स्थानीय परिस्थितियों से जुड़े लेख एवं सामग्री ज़रूर दी जाए। इससे शिक्षकों एवं छात्रों को मदद मिलेगी।

राजेंद्र दुबे (शिक्षक)
घाटली, इटारसी
ज़िला होशंगाबाद

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' का अंक मिला। मैं काफी समय से इस तरह की पत्रिका की कल्पना कर रहा था। मेरे विद्यालय के बच्चों ने पत्रिका को बहुत चाव से पढ़ा। इसका अंदाज़ा शायद इस बात

आपत्ति है ....

प्रिय संपादक,
आपने 'आया समझ में' लेख का अंत यह कह कर किया है –"फिर भी आगे बढ़ने का रास्ता तो किसी तरह ढूंढना होगा।"
इस निष्कर्ष पर मेरे कुछ सवाल हैं – मुझे ऐसा लगता है कि किसी भी बात को समझने, ग्रहण करने, आत्मसात करने का सवाल अंततः 'डिग्री' का सवाल है या यूं कहें कि 'स्तर' का सवाल है। समझ के अलग-अलग स्तर होते हैं।
दिन-रात और ऋतु परिवर्तन के बारे में आपकी जो समझ है उसके आधार पर आप कैसे कह सकते हैं कि वही सही है? हमें कैसे पता चला कि पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाती है? अगर हम याद करें तो पाएंगे कि हमें अपनी भूगोल की किताबों में पढ़कर पता चला था। किताब में रेखाचित्र वगैरह भी थे और तब पढ़कर वो बातें ठीक लगी थीं। और अब अगर हम डूबते सूरज के साथ सामने आते क्षितिज को देखें और कहें कि यह देखो पृथ्वी घूम रही है - वाह! तो शायद हम कुछ हद तक महसूस कर पाएंगे कि भूगोल हमसे क्या कहता है! पर एक हद के बाद तो इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता... क्योंकि, हो सकता है कि हमें डूबते सूरज के समय के

से लग सकता है कि मेरे शहर की रेडियो की दुकान से चुंबक और तार लेने के लिए बच्चों में होड़ लगी हुई थी, शायद उन्होंने 'चलती का नाम मोटर' को समझ लिया था। 'संदर्भ' में कुछ मॉडल बनाने के सस्ते तरीके देते रहें ताकि शिक्षक ऐसे मॉडल तैयार कर पढ़ाने के लिए सहायक सामग्री जुटा पाएं।

कल्याण सिंह रावत
ज़िला विज्ञान कांग्रेस
चमोली (उ.प्र.)

प्रिय संपादक,

संदर्भ का दूसरा अंक पढ़ा। रोहित धनकर का लेख 'कुछ बातें - बीते ज़माने की' प्रासंगिक लगा। मेरा लेखक एवं आपसे अनुरोध है कि लेख में बताए ताश के पत्तों का गणित अगर सुलझा दें तो हमारी जिज्ञासा भी शांत होगी।

नागरसिंह शर्मा
उप प्रधानाध्यापक, भादरा
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

कारण ये नहीं...

प्रिय संपादक,

मूंगफली में निषेचित फूल ज़मीन की तरफ जाता है और फिर भूमिगत हो जाता है यह सही है - परन्तु यह डंठल की लंबाई बढ़ने और नीचे की ओर झुक जाने के कारण नहीं है। दरअसल मूंगफली के फूल में अंडाशय और पुष्पासन के बीच एक ऊतक पाया जाता है (इसे अंतर्वेशी प्रविभाजी ऊतक कहते हैं)। जैसे ही फूल निषेचित होता है यह ऊतक क्रियाशील हो जाता है। इस ऊतक के क्रियाशील होने से जो नई कोशिकाएं बनती हैं वे अंडाशय और पुष्पासन के बीच एक कमज़ोर-सा डंठल बनाती हैं जिसे गायनोफोर कहते हैं। निषेचन के बाद अंडाशय के फल में बदलने के कारण अंडाशय भारी होता जाता है जिसका वज़न नहीं संभाल पाने के कारण गायनोफोर नीचे को झुकता जाता है और धीरे-धीरे ज़मीन में धंसता जाता है

डॉ. ओ.पी. जोशी
इंदौर

बादलों को देखना ही बहुत अच्छा लगता हो - या मानसून की बारिश का ज़ोरों से गिरना या ठंड में गर्म कम्बल में दुबकना....।
क्यों न बच्चों को अपनी प्रिय ऋतु पर कविता लिखने के लिए प्रेरित किया जाए - शायद वे जो 23 डिग्री का झुकाव न समझते हों जानदार नन्हें कवि निकलें! और हो सकता है कुछ बच्चों को भक-भक करता इंजन अच्छा लगता हो.... और काला-काला धुआं और सीटी का गूंजना... और वे सोच रहे हों कि ये दोनों (लेखक) यह जानने पर क्यों उतारू हैं कि मैं ऋतुओं के बारे में कितना समझ गया हूं? मुझे सब पता है पर बस नहीं बताना.... मुझे ..... मैं अपना मुँह नहीं खोलने वाला.... ये पूछती रहें....
कुरेदती रहें... मेरा मतलब है कि बच्चे कभी-कभी बहुत 'मूडी' हो जाते हैं - है न! बहुत ज़िद्दी, बहुत सनकी - गोपनीय!
पर यह भी तो हो सकता है कि लेखकों ने यह लेख सिर्फ इसलिए लिखा हो कि शिक्षक तथा अन्य लोग ऐसे मुद्दों के बारे में सोचें - और लेखक स्वयं इस बात को इतना महत्वपूर्ण नहीं मानते कि बच्चों को ऋतु परिवर्तन आदि समझाने का कोई-न-कोई रास्ता निकालना ही पड़ेगा!!

राजा मोहंती, इंडस्ट्रियल डिज़ाइन सेंटर, आई. आई. टी., बम्बई

बहस से निकले निष्कर्ष

• राजेन्द्र दुबे

बच्चों के पास भी जानकारी का एक भंडार होता है – खास तौर पर अपने आसपास की चीज़ों के बारे में। एक विवादास्पद विषय पर बिना अपना मत थोपे कक्षा में सामूहिक चर्चा से निष्कर्ष निकालने का एक शिक्षक का प्रयास।

कक्षा छठवीं में छात्रों के साथ पोषण के संदर्भ में जंतुओं और उनके भोजन पर चर्चा चल रही थी। टोलियों में बंटे विद्यार्थी बहस कर रहे थे। जब किसी जंतु के भोजन को लेकर सभी विद्यार्थी सहमत हो जाते तो जंतु का नाम एवं उसका भोजन एक तालिका में शामिल कर लिया जाता। अब तक तालिका में भैंस, बिल्ली, चूहा, कौआ, बकरी, मुर्गी, शेर का नाम एवं भोजन शामिल किया जा चुका था। इसी दौरान टोली क्र. 2 के एक छात्र ने जंतु का नाम सर्प एवं उसका भोजन कीड़े, मकोड़े, मेंढक, दूध, बताया। छात्रों के बीच चर्चा चली और सहमति के बाद इसे तालिका में शामिल कर लिया गया। मैंने भी इस चर्चा में शामिल होते हुए सांप की प्रकृति, उसके भोजन एवं सर्प जैसे अन्य जंतुओं के भोजन संबंधी जानकारी पर बच्चों से प्रश्न पूछे।

लगभग सभी विद्यार्थी ग्रामीण परिवेश के थे और सांप के बारे में उनकी जानकारी अच्छी थी। इसलिए सभी ने चर्चा में पूरी तरह भाग लिया। टोली क्र. 3 के एक छात्र ने बताया कि उसने सर्प को कीड़े-मकोड़े पकड़ते हुए देखा है तो इसी टोली के एक और विद्यार्थी ने सर्प को मेंढक निगलते हुए देखा था। दूसरी तरफ अनेक छात्रों ने सर्प को दूध पिलाते हुए देखा था।

बहस आगे बढ़ी - सभी छात्रों ने इस बात पर सहमति व्यक्त की कि कीड़े-मकोड़े और मेंढक को तो सांप का भोजन माना लेकिन कुछ

छात्रों का कहना था कि उनको ऐसी जानकारी है कि सांप दूध नहीं पीता है। इस तरह सांप के भोजन पर फिर से चर्चा शुरू हो गई। टोली क्र. 4 के एक छात्र ने बताया कि नागपंचमी के दिन एक बार वह अपनी मौसी के घर गया था उसी दौरान उनके घर एक सपेरा आया। मौसी ने दूध से लगभग तीन चौथाई भरी कटोरी लाकर सपेरे को दे दी। सपेरे ने सर्प का मुंह पकड़कर कटोरी में डाल दिया। कुछ देर बाद जब उसने सांप का मुंह कटोरी से बाहर निकाला तो देखा कि कटोरी में आधा दूध ही बचा था। एक दूसरे विद्यार्थी ने बताया कि हर साल नागपंचमी के दिन हमारे घर में नागदेवता का चित्र दीवार पर बनाकर उसकी पूजा की जाती है। पूजन के बाद एक मिट्टी के दिए में दूध भरकर उसे सांप की बांबी के पास रख देते हैं। नागदेवता पूरा दूध पी जाते हैं और कुछ समय बाद दिया खाली मिलता है। इसी टोली के एक छात्र ने बताया कि उसने सपेरे को सांप के मुंह में एक नली फंसाकर दूध पिलाते हुए देखा है।

इन जानकारियों से यह बात तो प्रमाणिक तौर पर सिद्ध हो रही थी कि सांप को स्वाभाविक ढंग से दूध पीते हुए किसी ने भी नहीं देखा, जबकि सर्प को कीड़े-मकोड़े आदि खाते हुए अनेक छात्रों ने देखा था। साथ ही सांप जैसा कोई अन्य ऐसा जंतु नहीं देखा जो कि दूध पीता हो। सार्थक बहस के बाद इस बात को स्वीकार किया गया कि सांप का स्वाभाविक भोजन दूध नहीं है। इसी चर्चा के दौरान एक छात्र ने बताया कि सांप की जीभ बीच से कटी होती है इसलिए वह किसी भी प्रकार का तरल पदार्थ पी ही नहीं सकता। तरल पदार्थ पीने के मामले में जीभ की ही प्रमुख भूमिका होती है। इसके कटे होने पर सारा तरल बाहर निकल जाएगा।

बहस के अंत में एक टोली के छात्र ने सुझाव दिया कि क्यों न सवालीराम को चिट्ठी लिखकर इस विषय पर जानकारी प्राप्त की जाए। छात्रों ने सवालीराम को पत्र लिखा। कुछ दिनों बाद जब जवाब आया तो उन्हें बहुत खुशी हुई। सवालीराम ने भी उनके निष्कर्षों को सही बताया था एवं यह जानकारी दी थी कि सर्प कीड़े-मकोड़े का भोजन करता है। इसी के द्वारा वह अपनी पानी की आवश्यकता को भी पूरी कर लेता है इसलिए उसे पानी पीने की ज़रूरत नहीं होती।

(राजेन्द्र दुबे, शासकीय माध्यमिक शाला, घाटली, ज़िला होशंगाबाद, म. प्र.)

सीधे-सवाल, टेढ़े—जवाब

अमिताभ मुखर्जी
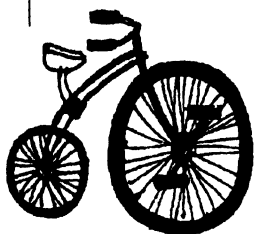
बच्चों ने सवाल पूछे – सोचा था जवाब देना आसान होगा। लेकिन जब लिखने बैठे तो जो कसरत हुई कि हमारे मुगालते दूर हो गए। सवालीराम के सवालों से जूझने का एक अनुभव।

इस पत्रिका के जो पाठक होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (हो.वि.शि.का.) के क्षेत्र में रहते हैं या रह चुके हैं, वे तो सवालीराम से भली भांति परिचित होंगे। औरों की जानकारी के लिए बता दें होशंगाबाद विज्ञान पढ़ने वाले बच्चों के दिमाग में जो ढेरों सवाल उठते हैं उन सबका जवाब कक्षा में तो मिल नहीं सकता। इसलिए एक सवालीराम की कल्पना की गई। बच्चे सवालीराम को अपने प्रश्न लिख सकते हैं। सवालीराम कई बार इन प्रश्नों के जवाब देता है तो कई बार उत्तर खोजने का तरीका इंगित कर देता है। आगे चलकर 'होशंगाबाद विज्ञान' पत्रिका में भी एक प्रश्नोत्तर स्तम्भ के रूप में सवालीराम के जवाब लिखे जाने लगे। बच्चों को खुली दावत दी गई कि वे सवालीराम को अपने सवाल भेजें। हर बच्चे को व्यक्तिगत रूप से जवाब दिया जाएगा और चुने हुए सवाल और जवाब पत्रिका में छपेंगे, यह आश्वासन था। उसके बाद क्या कुछ नहीं हुआ - पहले खतों का प्रवाह, फिर सैलाब; एकलव्य के कुछ

कार्यकत्ताओं के सपनों में भी सवालीराम का आना, जवाब खोजते-खोजते कुछ लोगों के असमय सफेद हुए बाल - कुल मिलाकर यह एक लम्बी कहानी है, जो अब भी चल रही है। आशा है कि 'एकलव्य' के कार्यकर्त्ता कभी इस को विस्तार से लिपिबद्ध करेंगे। फिलहाल मैं सवालीराम से जुड़े हुए कुछ व्यक्तिगत अनुभवों का ब्यौरा देना चाहता हूँ।

उन दिनों मैं कानपुर स्थित भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (I.I.T) में शोधरत् था। 'हार्डी' का पत्र आया, "सवालीराम के नाम बहुत खत आ रहे हैं। अगर हम कुछ खत कानपुर भेज दें तो क्या तुम लोग उनके जवाब लिखकर भेज सकते हो?" इतनी-सी बात! मैं भारत के एक चोटी के शैक्षणिक संस्थान में था। वैज्ञानिकों से घिरा हुआ। होनहार प्रतिभाओं के चमकते चेहरे, अध्ययन और अध्यापन का अनुकूल माहौल। इसमें छठी-सातवीं के बच्चों के सवालों के जवाब देना ब ुश्कल था!

हमने एक टीम बनाई। इसमें शामिल थे कुछ शोध छात्र-छात्राएं और एम.एस सी. के विद्यार्थी। चूंकि मैं खुद भौतिकी विभाग में था, इसलिए टीम के लगभग सभी सदस्य भी इसी विभाग के थे। जीव विज्ञान के प्रश्नों को लेकर हमें थोड़ी परेशानी हो सकती है, यह हमने अनुमान लगाया था। किन्तु भौतिकी और रसायन के सवालों को पोहा-जलेबी की तरह चबा जाएंगे,
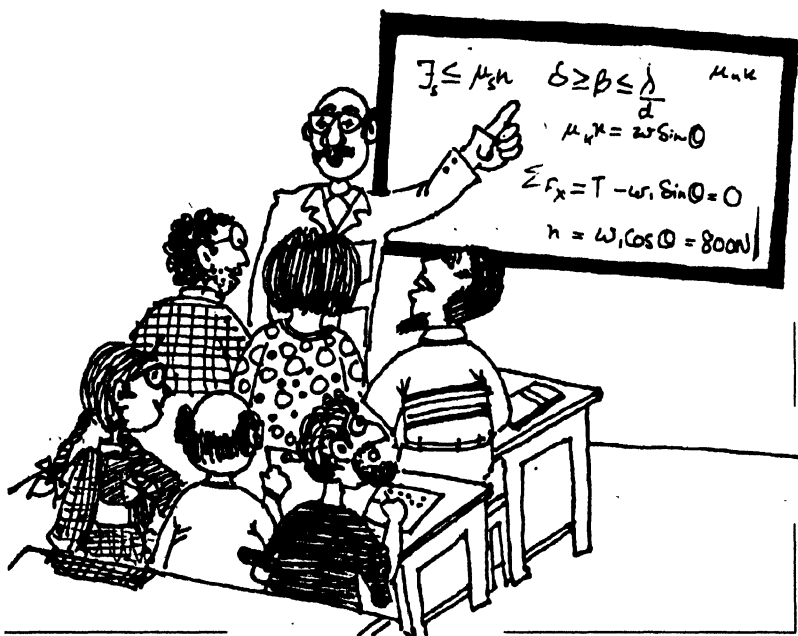
कुछ ऐसा ख्याल था हमारी टीम का। हमने तय किया कि हफ्ते में एक बार सभी मिलेंगे। सवाल बांटकर जवाब लिखे जाएंगे। उन पर साप्ताहिक गोष्ठी में सामूहिक चर्चा होगी। जिसके आधार पर उन्हें अंतिम रूप दिया जाएगा। छोटे सवालों के जवाब सीधे बैठक में ही लिखे जा सकते हैं। तब तक मुझे खतों का एक पुलिंदा मिल चुका था, और मुझे लगने लगा था कि यह काम इतना आसान नहीं होगा।

हमने अपने विषयों को छोटे-छोटे हिस्सों में बांट रखा था। जैसे 'प्रकाश', 'ध्वनि', 'यांत्रिकी' आदि। (Mechanics को हिंदी में यांत्रिकी कहते हैं यह हमारे अधिकांश सदस्यों को पता नहीं था। खैर इस पहलू पर कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है) पहले पुलिन्दे में बच्चों के जो सवाल मिले वे कुछ ऐसे थे, उदाहरण के लिए:

1. *आकाश का रंग नीला क्यों है?*
2. *किसी चीज़ को पीटने से आवाज़ क्यों होती है?*
3. *साइकिल को पहियों पर खड़ी करते हैं तो वह गिर जाती है, पर जब चलाते हैं तब क्यों नहीं गिरती?*
4. *पृथ्वी गोल क्यों है? (अब इसको किस हिस्से में डालेंगे। और तो और ये बच्चे तो विषय की सीमाओं को भी नहीं मानते)*

कुछ सवाल रसायन के थे? जैसे:

5. *जासौन के फूल पर चूना लगाने से रंग फीका क्यों पड़ जाता है?*

तो कुछ सवाल जीव-विज्ञान के थे:

6. *बाल क्यों गिरते हैं?*
7. *कुत्ता बैठने से पहले गोल-गोल क्यों घूमता है?*

यहाँ तक तो ठीक है पर, अब इस सवाल को भौतिकी का मानें या जीव-विज्ञान का?

8. *जब आदमी मरता है तो उसका शरीर भारी क्यों हो जाता है?*

दूसरी बात यह थी कि अक्सर सवाल विज्ञान के दायरे के बाहर होते थे, मसलन:

9. *आत्मा है या नहीं?*

और इस 'सवाल' को किस नाम से पुकारेंगे:

10. *सवालीराम जी क्या आप हमें अपना फोटो भेजेंगे?*

तीसरी बात यह थी कि बच्चे विज्ञान की सुलझी हुई भाषा और शैली से अपरिचित थे। 'पृथ्वी गोल क्यों है?' इस प्रश्न का मकसद क्या है - 'पृथ्वी गोल कैसे बनी?' या 'हमें कैसे पता चलता है कि पृथ्वी गोल है?'

बहरहाल, हमारी बैठकें शुरू हुईं। शोध-छात्रों में इस नए और अनोखे काम के लिए काफी उत्साह था। जवाब लिखने में किस तरह की समस्याएं आएंगी यह हमारी टीम ने जल्दी ही पकड़ लिया। उदाहरण स्वरूप पहले प्रश्न, 'आकाश का रंग नीला क्यों है', को लेकर कुछ इस तरह की बातचीत हुई।

- "इसका कारण तो रैले स्केटरिंग है, पर यह किस तरह से लिखा जाए ?"
- "स्कटरिंग को हिन्दी में क्या कहते हैं?"
- "बिखरना, प्रकाश का बिखरना।"
- "इसमें असली बात तो यह है कि छोटी तरंग दैर्घ्य की तरंगें ज़्यादा बिखरती हैं।"
- "वेवलेंथ की हिन्दी है तरंग-दैर्घ्य, पर क्या हम इस पारिभाषिक शब्द का उपयोग कर सकते हैं?"
- "अरे नहीं, सातवीं के बच्चे ने सवाल पूछा है।"
- "यूँ कह सकते हैं कि हवा के अणुओं से टकराकर प्रकाश बिखर जाता है। अब सूर्य के प्रकाश में लाल,पीली, हरी, नीली, बैंगनी, सभी रंग की किरणें होती हैं। वैज्ञनिकों ने यह सिद्ध किया है कि प्रकाश एक तरह की तरंग है। अलग-अलग रंग की किरणों की तरंगों की लम्बाई अलग-अलग होती है। लाल तरंग लम्बी होती है और नीली तरंग छोटी।"
- "हाँ, छोटी तरंगें ज़्यादा बिखरती हैं और बड़ी तरंगें कम। यानी लाल रंग कम बिखरता है और नीला ज़्यादा। इन बिखरी हुई किरणों के कारण आकाश नीला लगता है।" (यह बातचीत काफी लम्बी रही, मैंने सिर्फ सार दिया है)

अब बात बन रही थी। एक आम सहमति बन चली थी कि उत्तर कुछ ऐसा ही होना चाहिए। एक शोध छात्र 'क' ने कहा कि वह इस उत्तर को लिख कर अगली बैठक में ले आएगा। पर अगली बैठक में एक नया और अनापेक्षित सवाल खड़ा हो गया। 'क' ने कहा, "मैंने जवाब तो लगभग लिख लिया है। लेकिन अगर बच्चा पूछे आकाश बैंगनी क्यों नहीं है तो इसका क्या उत्तर होगा?" ऐं! लोग एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। सच, यह तो किसी ने सोचा ही नहीं था! छोटी तरंगें ज़्यादा बिखरती हैं, इसमें कोई शक नहीं। रैले ने सौ साल पहले यह बात सिद्ध की थी।*

दिखाई देने वाले प्रकाश में बैंगनी तरंगें सबसे छोटी होती हैं। तो आकाश को बैंगनी होना चाहिए था! किसी ने कहा "कभी-कभी आकाश बैंगनी-सा भी लगता है।" पर यह उत्तर सन्तोषजनक नहीं था। इसका मतलब हमारी समझ में कहीं कमी थी। किसी ने लाइब्रेरी में रैले के पुराने शोधपत्र ढूँढ निकाले, पर वहाँ भी जबाब नहीं मिला।

अन्त में कई किताबें छानकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इसमें आँख की संरचना की भी भूमिका है। हमारी आँखें बैंगनी किरणों के प्रति उतनी संवदेनशील नहीं हैं जितनी कि नीली के लिए हैं। बैंगनी किरणें ज़्यादा बिखरती हैं। पर यदि 'बिखरने की मात्रा और आँख की संवेदनशीलता का गुणनफल' निकाला जाए तो यह, नीली किरणों के लिए सबसे

* एक गणित के सूत्र के रूप में रैले ने कहा था कि बिखरने की मात्रा तरंग लम्बाई के चौथे घात के विपरीत अनुपात में होती है:

$$\text{बिखरना} \sim 1/(\text{तरंग लम्बाई})^4$$
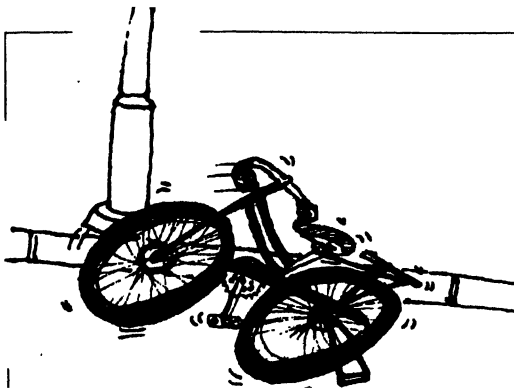
"एक सवाल है - अगर साइकिल पर कोई सवार न हो और उसे केवल धक्के से चला दिया जाए तो वह बहुत जल्दी लड़खड़ा जाती है। लेकिन अगर सिर्फ एक पाहिए को लुढ़का दें तो वह काफी दूर तक जाता है। ऐसा क्यों?"

"हाँ, कोणीय वेग तो दोनो में एक-सा ही है।"

"लगता है यह प्रश्न साइकिल की बनावट से जुड़ा हुआ है। दो पहिए, रॉड, हैंडिल... सोचना पड़ेगा।"

एक अन्य शोध छात्र 'अ' ने कहा कि वह इस बात की तह तक जाना चाहता है। यान्त्रिकी की किताबों में स्पष्ट जवाब नहीं मिला। उसने विज्ञान के विश्व कोश टटोले। फिर आगे की एक बैठक में 'अ' ने हमें अपनी खोजों के बारे में बताया। साइकिल की स्थिरता कई चीज़ों पर

ज़्यादा होगा। इस तरह एक सीधे सवाल का जवाब टेढ़ा निकला। 11वीं-12वीं की किताबों में इस सवाल का जो जवाब दिया जाता है व अधूरा है। और मज़ेदार बात यह है कि अब भी कहा नहीं जा सकता कि जवाब पूरा है। हमारी चर्चाओं में ऐसे सवाल भी उठाए गए –

"कभी-कभी (सूर्योदय और सूर्यास्त के समय) आकाश का कुछ अंश लाल लगता है। उस समय बादल हों तो वे पीले या नारंगी रंग के हो जाते हैं लेकिन हरा रंग कभी नहीं दिखाई देता। क्यों?"

साइकिल वाले सवाल में भी कुछ ऐसा ही हुआ:

"यह तो 'एंग्युलर मोमेंटम' यानी कोणीय वेग का कमाल है।"

"सरल भाषा में कह सकते हैं कि कोई भी चीज़ जब घूमती है तब उसकी दिशा बदलना बहुत मुश्किल होता है।"

"हाँ, जैसे घूमता हुआ लट्टू।"
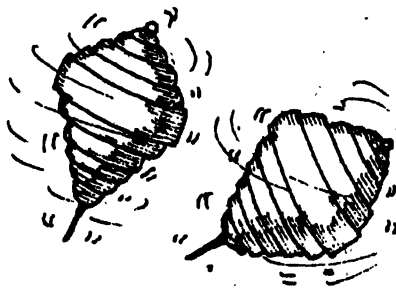
निर्भर करती है, जैसे पहियों के व्यासों का अनुपात, भारकेन्द्र कहां है, फोर्क (चिमटा) की बनावट आदि।

शुरू-शुरू में कुछ साइकिलें ऐसी होती थीं। इनमें पहियों के व्यासों का अनुपात बहुत महत्व रखता था।
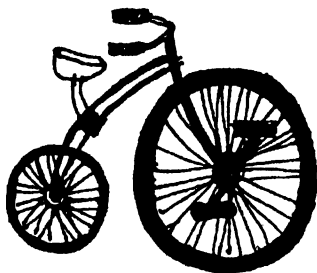
बाद में पाया गया कि अगर हम चाहते हैं कि साइकिल डोले भी कम और उसे चलाने में दम भी कम-से-कम लगे, तो पहियों को बराबर बनाना बेहतर है। आधुनिक साइकिलों में पहिए बराबर ही होते हैं। दूसरा सवाल है भारकेन्द्र का। यह तो एक आम अनुभव है कि जिस वस्तु का भारकेन्द्र ऊँचा होता है वह हल्के-से धक्के से हिल जाती है।

आधुनिक साइकिलों में विभिन्न मॉडलों में सीट और रॉड की बनावट अलग-अलग होती है। ज़ाहिर है कि जिस मॉडल का भारकेन्द्र ज़्यादा नीचे होगा वह ज़्यादा स्थिर होगा।

ये बातें तो हमारी टीम के लिए नई नहीं थीं। पर 'अ' ने एक और बात बताई जिसके बारे में लोगों ने कभी सोचा नहीं था। साइकिल के फोर्क अर्थात् अगले हिस्से की बनावट का उसकी स्थिरता पर बहुत असर पड़ता है। इसको लेकर कई प्रयोग हुए हैं। वस्तुतः फोर्क बनाते समय स्थिरता और चलाने में आसानी, इन दोनों में से एक को कम करना ही पड़ता है। अगर फोर्क का आकार चित्र 'क' की तरह हो, तो साइकिल का संतुलन बहुत बढ़िया होगा, पर चालक के लिए उसे चलाना (विशेषकर मुड़ना) बहुत मुश्किल होगा। इसके विपरीत चित्र 'ख' की तरह बनी साइकिल को मोड़ना बहुत आसान होता है, पर वह बहुत जल्दी लड़खड़ा जाती है। आजकल ज़्यादातर साइकिलों का फोर्क इन दोनों के बीचों-बीच, चित्र 'ग' की तरह होता है।

लेकिन 'अ' की खोजों से सबसे बड़ी बात जो सामने आई वह है - सवार की भूमिका। बात सीधी-सी है। जब साइकिल थोड़ी टेढ़ी हो जाती है, तब सवार अपने भारकेन्द्र को ज़रा-सा खिसका देता है, जिससे झुकाव की विपरीत दिशा में एक बल काम करता है। साथ ही दिशा को सुधारने के लिए वह हैंडिल का उपयोग करता है। इससे साइकिल फिर सीधी हो जाती है। यह काम सवार अनजाने में ही लगातार करता रहता है। यही कारण है कि जहाँ धक्के से चलाई हुई बिना सवार

की साइकिल आधा मीटर भी सीधी नहीं चलती, सवार समेत साइकिल चलती रहती है। यानी "साइकिल कोणीय वेग की वजह से नहीं गिरती" कहना पूरी तौर पर सही नहीं है!

कई और सवालों के लिऐ भी हमें इसी तरह से लाइब्रेरी की किताबें छाननी पड़ीं। अक्सर स्कूली किताबों में जो 'मानक' जवाब मिलते हैं वे अधूरे होते हैं या फिर 'सरलीकरण' के चक्कर में असली मुद्दों को छूते ही नहीं। यह भी स्पष्ट हुआ कि विशेषज्ञों की समझ में भी अक्सर खामियाँ रह जाती हैं।

कुछ और, खासकर 'जीव-विज्ञान' के सवालों में, दूसरी तरह की समस्याएं आईं। कुत्ते वाले सवाल (प्रश्न6) को ही लीजिए। क्या सचमुच कुत्ते ऐसा करते हैं? हम में से किसी ने नज़दीक से कुत्तों का अवलोकन नहीं किया था - कम-से-कम उनके बैठने से पहले की क्रिया का तो बिल्कुल नहीं। इसी तरह का एक और सवाल था कि टिटहरी पेड़ पर क्यों नहीं बैठती?

टिटहरी होती क्या है? एक पक्षी, यह तो पता था, लेकिन टीम में किसी को उसकी पहचान नहीं थी। वह सचमुच पेड़ पर बैठती है या नहीं, यह जानकारी तो दूर की बात है। इस तरह के सवालों में हमने यह पाया कि बच्चों ने काफी बारीकी से अवलोकन किया है, और जवाब देने के लिए हमारे पास समझ तो छोड़िए, तथ्य ही नहीं हैं।

कुछ सवाल आपस में मिलते-जुलते थे। इनमें स्वास्थ्य सम्बन्धी सवाल थे जैसे कि दाँत क्यों सड़ने लगते हैं? इससे मिलते-जुलते सवाल

1. 2. 3.

कई बच्चों ने पूछे थे। मौसम को लेकर पूछे गए सवाल भी इस श्रेणी में आते हैं जैसे कि बादल क्या हैं? या बिजली क्यों गिरती है? हमने तय किया कि 'बादल-बिजली-बरखा' सम्बन्धी एक लम्बा लेख लिखेंगे, जिसमें ये और इन से मिलते-जुलते प्रश्नों के उत्तर शामिल होंगे। एक एम.एस सी. की छात्रा ने काफी मेहनत करके लेख

लिखा - अंग्रेज़ी में। अब इसका हिन्दी अनुवाद करना था। लेकिन हाय! बैठक में आते समय उस लड़की की साइकिल के कैरियर से वह लेख कहीं गिर गया। (शायद उसका भारकेन्द्र कुछ ऊँचा था!) और बहुत ढूंढने पर भी नहीं मिला।

इसके बाद थोड़े दिनों में हमारी टीम बिखर गई - एम.एस.सी. के छात्र पास होकर चले गए। और लोग भी अपने कामों में कुछ ज़्यादा व्यस्त हो गए। इस तरह यह दौर यहीं समाप्त हो गया।

आज पीछे देखें तो यह अनुभव कैसा लगता है? जो लोग इस काम से जुड़े थे, उनकी इस बात पर सहमति है "पता नहीं हम बच्चों को कितना समझा पाए पर इस अनुभव से हमने बहुत कुछ सीखा और समझा है।" कुछ सबक जो हमने सीखे वे इस प्रकार हैं:

- हमने जाना कि प्रायः हमारी समझ अधूरी होती है। अक्सर पारिभाषिक शब्द समझ का स्थान ले लेते हैं।
- दूसरे को समझा पाना, वह भी सरल भाषा में, यही समझ की परख है।
- विषयों की सीमाएँ कृत्रिम हैं। इसलिए बड़ों के सवाल अक्सर सीमित होते हैं, जबकि बच्चों के सीधे सवाल हमें धराशाई कर देते हैं।
- बच्चे प्रकृति का अवलोकन करते हैं, अक्सर काफी बारीकी से।
- बच्चे जिज्ञासा और खोज की प्रवृत्ति को स्वाभाविक भावनाओं से अलग नहीं करते। तभी प्रश्नों के साथ-साथ सवालीराम को अपना प्यार भेजना नहीं भूलते।

यह तो स्पष्ट है कि सवालीराम को लिखे हुए बच्चों के खत हमें बच्चों के सामाजिक परिवेश, मनोवृत्ति व सोचने के ढंग के बारे में बहुत कुछ बताते हैं। इनका गहन रूप से अध्ययन किया जाए तो स्कूली पाठ्यक्रम को सुधारने में काफी मदद मिल सकती है। इस लेख में मैंने केवल कुछ अनुभवों को लिपिबद्ध किया है। आशा है कि आगे भी इस तरह के विश्लेषण का प्रयास किया जाएगा।

वैसे क्या आप भी सीधे सवालों से जूझने की इस अनोखी प्रक्रिया को आज़माना चाहेंगे?!

(अमिताभ मुखर्जी - भौतिकी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय)

●●●
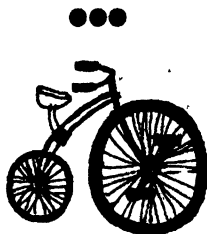
आस-पास बिखरे हैं सूचक

• पुरुषोत्तम खांडेकर

अम्ल और क्षार पहचानने के लिए लिटमस कागज़, फिनोफ्थलीन, मिथाइल ऑरेंज जैसे सूचक ही आवश्यक हैं क्या? हमारे आसपास जो इतने सारे सूचक बिखरे रहते हैं उनमें से कुछ इस्तेमाल करते हुए भी अम्ल-क्षार पहचानने की कोशिश की जा सकती है।

इस प्रयोग के लिए ज़रूरी चीज़ें

सफेद कागज़, लाल जासौन का फूल, पानी, इमली, कपड़े धोने का सोडा, खाने का सोडा, नमक, शक्कर, नींबू, चूना, आंवला और डिटर्जेंट पाउडर।

विधि : सफेद कागज़ के टुकड़े पर लाल जासौन की पंखुड़ी घिसिए ताकि कागज़ रंगीन बन जाए। ध्यान रहे कि कागज़ का हर हिस्सा समान रूप से रंगा जाए। इस कागज़ को धूप में सुखाकर उसके दो बराबर टुकड़े कीजिए। एक टुकड़े पर नींबू का रस मलिए। टुकड़े का रंग बदलता है। इस टुकड़े को भी सुखाइए। दूसरे को वैसे ही रहने दीजिए - जासौन के रंग में रंगा। अब आपके पास दो रंगों के टुकड़े हो गए। इनकी सात-आठ पट्टियां काट लीजिए।

अब साबुन, सोडा आदि वस्तुओं के अलग-अलग घोल पानी में बनाइए - इमली, आंवला जैसी वस्तुओं के घोल बनाने के लिए इनके टुकड़े कर पानी में कुछ समय भिगो कर रखना होगा। हर घोल के लिए साफ पानी अलग से लीजिए। इन घोलों को दोनों रंगों की पट्टियों पर लगाना है, और पट्टियों के रंग पर इनका क्या प्रभाव पड़ता है यह देखना है। अपने इस निरीक्षण को इस तरह की तालिका में दर्ज़ कीजिए।

घोल	नीली पट्टी पर असर	लाल पट्टी पर असर
इमली		
साबुन		
..		
..		

इस प्रयोग से क्या पता चला?

इसे जासौन के फूल के अलावा हल्दी से भी किया जा सकता है। जब हल्दी इस्तेमाल करें तो पहले जैसे ही प्रक्रिया करनी होगी - हल्दी के घोल से कागज़ रंगकर उसे सुखाकर दो टुकड़ों में काट लें। एक टुकड़े को साबुन (न कि डिटर्जेन्ट) के घोल से गीला कर लें। बाकी का काम बिल्कुल ऊपर जैसे ही करना है। इसी तरह से आप विद्यार्थियों के साथ मिलकर ढूंढने की कोशिश कर सकते हैं कि और कौन-कौन-सी ऐसी चीज़ें हैं अपने आस-पास जिन्हें इस तरह सूचक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

डॉ. पुरुषोत्तम खांडेकर, नागपुर

अमोनिया से बना एक फव्वारा!

उड़ती गंध ने दूर से ही बता दिया कि बन रही है कहीं अमोनिया, ज़रा देखें कैसे बनाया गया इससे एक फव्वारा।
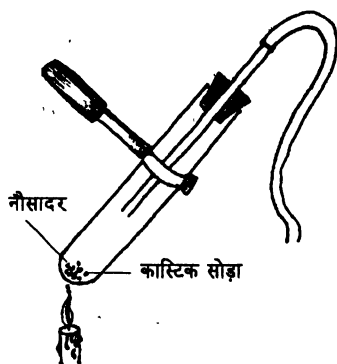
जब भी विद्यार्थियों को गैसें पढ़ाते हैं तो अमोनिया का ज़िक्र ज़रूर आता ही है। क्योंकि एक तो उसे बनाना आसान है और दूसरा, गुणधर्मों की वजह से उसे पहचानना भी बहुत-ही आसान होता है कि कौन-सी गैस बन रही है। यहां पर अमोनिया के गुणधर्मों का इस्तेमाल करते हुए एक जादुई-सा दिखने वाला फव्वारा बनाएंगे। उसके लिए सबसे पहले अमोनिया बना लें।

एक उफननली में लगभग आधा चम्मच नौसादर (अमोनियम क्लोराईड) लो और उसमें कॉस्टिक सोडा (सोडियम हाईड्रॉक्साइड) की तीन-चार टिकिया डालो। फिर चित्र में दिखाए मुताबिक उफननली को गर्म करो। पास जाकर सूंघने की कोशिश करने की ज़रूरत नहीं होती, दूर से ही उसकी तेज़ गंध से समझ में आ जाता है कि अमोनिया बनने लगी है।

सामग्री:

1. ग्लूकोज़ चढ़ाने वाली कांच की बोतल : किसी भी अस्पताल से ऐसी खाली बोतल मिल जाएगी, उसके साथ ही दो छेद वाला काले रंग का कॉर्क भी होता है।
2. बीकर : 250 मि.ली. का कांच या प्लास्टिक का बीकर।
3. इंजेक्शन की सिरींज : आजकल प्लास्टिक की डिस्पोज़ेबल सिरींज
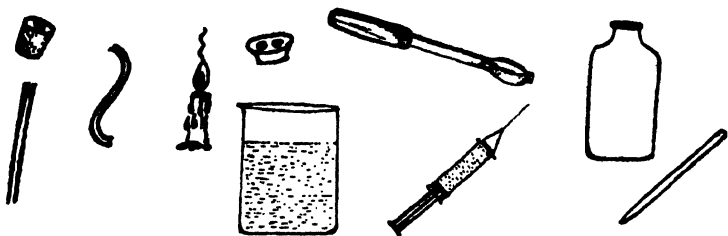
का काफी प्रचलन हो गया है। इसलिए किसी अस्पताल से मिल सकती है या फिर दवाई की दुकान से 3-4 रुपए में खरीद लें।

4. फिनोफ्थलीन का रंगहीन सूचक घोल : अगर प्रयोगशाला में फिनोफ्थलीन उपलब्ध न हो तो दवाई की दुकान से परगोलेक्स या वेक्युलेक्स जैसी कोई जुलाब की गोली खरीद सकते हैं। जिसमें सिर्फ फिनोफ्थलीन ही होती है। एक गोली 25 या 50 पैसे में मिल जाएगी। एक गोली पीसकर आधे लीटर पानी में घोलने पर फिनोफ्थलीन का रंगहीन सूचक घोल तैयार हो जाएगा।
5. जेट नली : कांच की नली जो एक तरफ से संकरी हो।
6. रबर की नली
7. उफननली
8. कांच की नली
9. एक छेदी रबर कार्क
10. कास्टिक सोडा (सोडियम हाईड्रॉक्साइड)
11. नौसादर (अमोनियम क्लोराईड)

अब बनाते हैं फव्वारा

1. एक सूखी उफननली में ऊपर बताए गए रसायन डालकर अमोनिया तैयार करनी होगी। उसे एक सूखी ग्लूकोज़ की बोतल में इकट्ठी कर लीजिए। दूसरी नली इसलिए डाली गई है ताकि ऊपर की हवा को बाहर निकलने का मौका मिले।
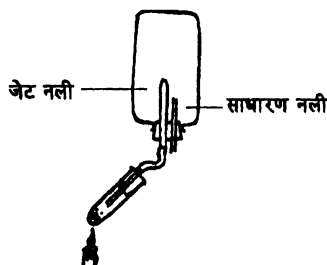
2. जब बोतल में अमोनिया गैस इकट्ठी हो रही है उसी समय आप अन्य तैयारियां कर लें। जिससे बाद में मदद मिलेगी। एक तो इंजेक्शन की सिरींज में पानी भर कर रख लें। और दूसरा, एक बीकर में फिनोफ्थलीन का रंगहीन सूचक घोल तैयार करके भर लें।

3. जैसे ही समझ में आए कि ग्लूकोज़ की बोतल अमोनिया से पूरी तरह भर गई है, यानी कि अमोनिया की तेज़ गंध कक्षा में फैलने लगे, तब कांच की खुली नली को निकालकर उसकी जगह उसी छेद में पानी से भरी हुई इंजेक्शन की सिरींज फंसा दीजिए। यह ध्यान रखिए कि ऐसा करते वक्त पानी की एक बूंद भी बोतल के अंदर नहीं जानी चाहिए।
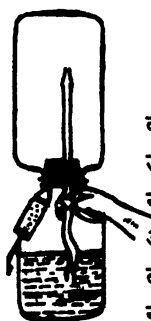
4. अब रबर की नली को मोड़कर दबाकर उसे उफननली में लगी कांच की नली में से निकाल लीजिए और उसी तरह पकड़े हुए, बंद रखते हुए रबर की नली को फिनोफ्थलीन के रंगहीन सूचक घोल से भरे बीकर में ऊपर तक डुबा दें।

5. बस अब आखिरी कदम है। इंजेक्शन की सिरींज का पिस्टन अचानक दबाकर थोड़ा-सा पानी बोतल में फेंकिए और साथ-ही फिनोफ्थलीन के रंगहीन सूचक घोल में डूबी रबर की दीजिए। जेट नली में से घुसता हुआ घोल ग्लूकोज़ की बोतल में तेज़ी-से फव्वारे की तरह बनकर फैलेगा और साथ ही रंग बदलकर एकदम लाल भी हो जाएगा।
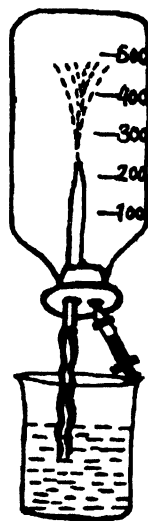
ऐसा क्यों हुआ?

1. अमोनिया पानी में अति घुलनशील है इसलिए जैसे ही इंजेक्शन की सिरींज से बोतल में थोड़ा-सा पानी

डालते हैं तो खूब-सारी अमोनिया उसमें तेज़ी से घुलने लगती है। जिससे बोतल में हवा का दबाव कम होने लगता है और जेट नली के ज़रिए फिनोफ्थेलीन का रंगहीन सूचक घोल ऊपर को खिंचता चला आता है।

2. अमोनिया क्षारीय है इसलिए फिनोफ्थेलीन के रंगहीन घोल को रंगीन बना देती है। इसलिए जेट नली में से ऊपर उठता हुआ रंगहीन घोल अचानक रंगीन फव्वारे में तब्दील हो जाता है।

3. क्योंकि अमोनिया हवा से हल्की होती है (यानी उसका घनत्व कम होता है) इसलिए ग्लूकोज़ बोतल को उल्टी रखकर अमोनिया को उसमें इकट्ठा किया गया है।

4. और उसकी तेज़ गंध से ही तो पता चला कि अमोनिया बन रही है।

अगर आप चाहते हैं कि फव्वारा अच्छे से चले :

1. इस प्रयोग में लिए जाने वाले सब उपकरण और रसायन एकदम सूखे होने चाहिए - नहीं तो अमोनिया पहले से ही पानी में घुलने लगेगी और इकट्ठी नहीं होगी।

2. जहां तक संभव हो हर जोड़ को हवाचुस्त रखने की कोशिश कीजिए ताकि अमोनिया ठीक-से इकट्ठी हो। खास तौर पर अंतिम हिस्से में ताकि बोतल के अंदर दबाव कम होने पर फिनोफ्थेलीन के रंगहीन सूचक घोल के बजाए कहीं हवा अंदर न घुस जाए।

3. जेट नली का सिरा जितना बारीक होगा - फव्वारा उतनी ही ज़्यादा देर तक चलेगा और सुंदर दिखेगा।

(प्रशांत साहू, दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा संकलित)

क्या कहता है यह चित्र?

इस चित्र से हम चीटियों के बारे में बहुत कुछ जान सकते हैं। क्या आप इस चित्र का विश्लेषण कर सकते हैं, संदर्भ द्वारा एकलव्य, कोठी बाज़ार होशंगाबाद के पते पर अपना विश्लेषण भेजें। सही विश्लेषण को हम अगले अंक में प्रकाशित करेंगे।

कहां-कहां नहीं है बल

* * *

बोलचाल में तो छुटपन से ही, पर तीसरी-चौथी तक आते-आते विज्ञान में भी बल और भार की बात आने लगती है। और वैसे भी 'बल' आम बोलचाल का शब्द है, इसलिए सब मान लेते हैं कि बल की अवधारणा तो सबको स्पष्ट होगी ही। पर आप कॉलेज की पढ़ाई कर रहे किसी छात्र से भी पूछकर देख लीजिए, कि ऊपर की ओर फेंकी गई गेंद पर कब, किस तरफ और कौन-सा बल लग रहा है। एकदम से समझ में आ जाएगा कि कैसे-कैसे भ्रम हैं बल की अवधारणा को लेकर ....

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि आमतौर पर विज्ञान की ऐसी अवधारणाओं पर जो अध्याय लिखे जाते हैं, उनमें परिभाषाओं और गणितीय सूत्रों के अलावा कुछ दिखता ही नहीं है, उस विषय की समझ बनाने या बढ़ाने की कोई कोशिश नज़र नहीं आती।

विद्यार्थियों को बल की अवधारणा समझाने के लिए **अनिता रामपाल** *का एक वैकल्पिक प्रयास यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।*

गेंद, गोल से बहुत दूर थी। छज्जू ने खूब ज़ोर से लात मारी और गेंद गोली की तरह उड़ती हुई गोल में घुस गई। सभी हैरान थे। छज्जू लगता तो पतलू-सा है पर इतना बल लगा सकता है, यह मालूम ही नहीं था।
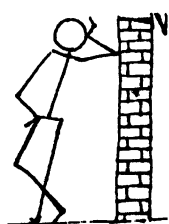
बल, बलवान - ये शब्द तो तुम शायद रोज़ इस्तेमाल करते हो। खेल में, लड़ाई या कुश्ती में, मेहनत-मज़दूरी में, ये शब्द आम सुनने में आते हैं। पर विज्ञान में "बल" शब्द का इस्तेमाल कुछ अलग ढंग से होता है। उदाहरण के लिए, अगर एक किताब को उठाना हो तो तुम शायद कहोगे कि "अरे, यह तो हल्की-सी है, इसको उठाने में कोई बल थोड़े ही लगा।" पर वैज्ञानिक कहेगा, "नहीं साहब - किताब क्या पेंसिल उठाने में भी बल लगता है" या फिर अगर तुम आराम से दीवार से टिककर खड़े हो, कोई हरकत नहीं कर रहे तब भी बल लग रहा है। है न अजीब-सी बात। तुम कहोगे, "नहीं जनाब - हम तो बिलकुल आराम से खड़े हैं। बल-वल का सवाल ही
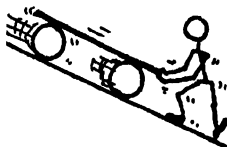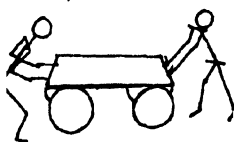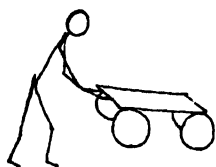
नहीं उठता।" पर यही नहीं, वैज्ञानिक तो इससे भी और अटपटी बात कहेंगे कि "दीवार भी तुम पर बल लगा रही है।" बस, यह सुनकर तो शायद तुम भाग निकलने की तैयारी में होगे। यह सोचते हुए कि भई, इन वैज्ञानिकों का शायद भेजा घूम गया है, इनकी बल-वल की बात अपने तो पल्ले नहीं पड़ती। पर रुको, यूं मैदान छोड़कर मत भागो। अभी साफ किए देते हैं यह उलझन। यह अध्याय पढ़ तो लो, फिर देखो तुम भी बल के मामले में कैसे महारथी बन जाते हो। सबसे पहले तो यह देख लें कि बल के बारे में कौन-सी बातें हम पहले से जानते हैं।

एक खाली ठेले को धक्का दें, यानी उस पर बल लगाएं, तो वह चलने लगता है।

जिस दिशा में बल लगाएं, ठेला उसी दिशा में चलता है। उस पर कहीं एक तीर बनाकर उस बल की दिशा दिखाते हैं।

अगर दो लोग आमने-सामने से ठेले पर बराबर बल लगाएं तो ठेला चलता नहीं, वहीं खड़ा रहता है।

ढलान पर लुढ़कते हुए ठेले को रोकने के लिए उस पर उल्टी दिशा में बल लगाना पड़ता है।

अब नीचे दिए हुए प्रश्नों का उत्तर तुम्हें अपनी-अपनी समझ से देना है।

उत्तर सही है या गलत इससे हमें मतलब नहीं। देखना तो यह है कि कितनी तरह के उत्तर सामने आते हैं। इन्हीं के आधार पर आगे का सिलसिला चलेगा।

नीचे दिखाई चीज़ों पर क्या कोई बल लग रहे हैं?

सोचकर बताओ कि वस्तु पर कोई बल लग रहा है या नहीं? और अगर हाँ तो किस दिशा में बल लग रहा है?

1. ढलान पर से लुढ़कता ठेला
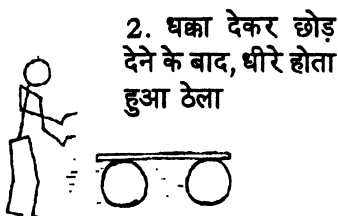
2. धक्का देकर छोड़ देने के बाद, धीरे होता हुआ ठेला
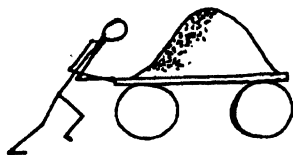
3. धक्का देने पर भी, खड़ा हुआ ठेला
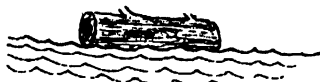
4. पानी पर तैरता पेड़ का तना

5. ज़मीन की ओर गिरती हुई गेंद
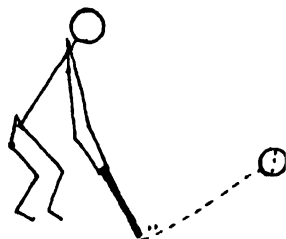
6. डंडे से उछाली गई गेंद

अब तक काफी सर खुजा लिया होगा तुमने। बहुत सोच विचार कर लिया, प्रश्नों के उत्तर देते-देते। चलो अब एक ऐसा प्रयोग करते हैं, जिससे गैलिलियो नाम के वैज्ञानिक ने बहुत पहले बल के एक रहस्य को समझा था।

प्रयोग-1

एक लकड़ी का पटिया लेकर कक्षा में उसे टाटपट्टी या दरी पर रख दो। उसके नीचे एक तरफ किताबें रखो जिससे पटिया तिरछा हो जाए। अब ऊपर की तरफ उठी हुई सतह पर कहीं एक जगह निशान लगाकर कंचा वहां रखकर छोड़ दो। देखो कंचा कितनी दूर जाता है?
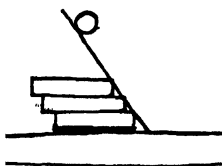
दूसरी बार, लकड़ी के पटिए को फर्श पर उसी तरह रखो और उसी जगह से कंचा छोड़कर देखो। इस बार कंचा लुढ़ककर कितनी दूर गया?

तीसरी बार, पटिए को एक बड़े से कांच के टुकड़े पर रखकर यही प्रयोग दोहराओ।

सतह बदल देने से कंचा अधिक दूरी तक क्यों जाता है?

गैलिलियो का ख्याली प्रयोग

गैलिलियो

बल की कहानी बहुत ही पुरानी है। भौतिकी में तो शायद सबसे पुराना विषय है, जिस पर हज़ारों साल पहले से लोगों ने सोच-विचार किया है। तीर हवा में कैसे चलता रहता है, लुढ़कता पत्थर क्यों रुक जाता है, फल नीचे को ही क्यों गिरता है, धुआँ ऊपर को ही क्यों जाता है, हम उड़ क्यों नहीं सकते?

ऐसे कई प्रश्नों पर लोग गौर तो करते, पर बहुत सटीक उत्तर न मिलते। इन्हीं कुछ प्रश्नों में उलझा हुआ था एक वैज्ञानिक गैलिलियो। कई प्रयोगों के दौरान उसने देखा कि किसी कंचे को ढलान से लुढ़काओ तो वह कुछ दूर जाकर रुक जाता है। उसने सोचना शुरू किया कि अगर कंचे को खूब दूर तक लुढ़काना हो तो क्या किया जाए।

प्रयोग करते-करते उसे पता चल ही गया कि अगर ज़मीन की सतह खुरदुरी हो तो कंचा बहुत दूर नहीं जाता।

गैलिलियो ने सतह को थोड़ा चिकना करके देखा और पाया कि कंचा कुछ और दूरी तक गया। फिर सतह को और अधिक चिकना किया तो कंचा और भी दूर जाकर रुका। इस बात से गैलिलियो ने यह नतीजा निकाला कि सतह का खुरदुरापन ही कंचे की गति में रुकावट डालता है। उसने सोचा, यदि कोई ऐसी काल्पनिक सतह हो जो बिलकुल ही चिकनी हो, तो वह कंचे पर कोई रुकावट नहीं डालेगी। ऐसी सतह तो वास्तव में काल्पनिक ही थी, क्योंकि असली सतह को आखिर कितना चिकना बना सकता था वह। पर एक आदर्श चिकनी सतह का न मिल पाना उसके लिए कोई रुकावट नहीं था। उसने ख्यालों में ही अपना प्रयोग पूरा कर लिया - और मन ही मन उसने भौतिकी का एक मुश्किल रहस्य खोज लिया। ज़रा सुनें

उसने अपने ख्याली प्रयोग से क्या निष्कर्ष निकाला।

उसने कहा कि कंचे पर अगर सतह का या हवा का यानी कोई बाहरी असर न हो, तो कंचा हमेशा चलता रहेगा, रुकेगा नहीं। उफ! कैसी अजीब-सी बात है यह! शायद तब भी लोगों को अजीब लगी होगी, जैसे आज हमें लग रही है। भला किसने देखा है ऐसे होते हुए कि कोई भी चीज़ चलती ही जा रही है, कभी रुकती ही नहीं।

इसी बात को न्यूटन ने पकड़ लिया। उसने कहा कि लुढ़कता हुआ कंचा इसलिए रुक जाता है क्योंकि न दिखने वाला एक बल उसे रोक लेता है। और सतह के साथ रगड़ने वाला यह बल कंचे पर उल्टी दिशा में लगता है। जैसे-जैसे कंचा सतह पर आगे बढ़ता है, यह 'रगड़न' बल एक छुपे हुए हाथ की तरह उसे रोकता है। आखिर में कंचा बेचारा रुक ही जाता है। **पर यदि रोकने वाला कोई बल ही न हो, तो हर चलती हुई वस्तु चलती ही जाएगी, रुकेगी नहीं**। वाकई, यह बात पचानी कुछ मुश्किल लगती है। इसलिए क्योंकि हमने ऐसा होते हुए कहीं भी देखा नहीं है। खास प्रयोग करें तो ज़रूर देख सकते हैं। पर आम ज़िन्दगी में देखने को नहीं मिलता, क्योंकि कई ऐसे बदमाश बल हैं जो छुपे-छुपे काम करते हैं और चलती हुई वस्तुओं को रोकते रहते हैं। पर हम समझ बैठते हैं कि वस्तु अपने आप ही रुक गई। चलो, आगे इन्हीं छुपे रुस्तमों को पहचानना सीखें।

अपनी समझ फिर परखें-

छुपे हुए बल को ढूंढ निकालें:

हम ठेले पर बल लगाते रहें तो ठेला चलने लगता है, और धीरे-धीरे उसकी गति तेज़ होने लगती है।

धक्का या बल लगाना छोड़ दें तो क्या होता है? ठेले की गति कम होती जाती है और फिर कुछ दूर जाने के बाद वह रुक जाता है।

हमने तो बल लगाना छोड़ दिया। पर ठेले पर एक विपरीत
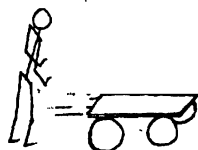
बल अब भी है। हां, वही, सतह का 'रगड़न' बल, जो उसकी गति रोक रहा है।

यह बल हमें दिखता तो नहीं, पर इसके असर को हम देख पाते हैं। ये 'रगड़न' मियां तो पहले से ही काम कर रहे थे, लेकिन हमारे बल के सामने ये कमज़ोर पड़ रहे थे।

कुछ छुपे रुस्तम, हैं तो ये भी रगड़न?

एक चलता हुआ ठेला दीवार से टकराकर रुक जाता है। ठेले की गति रोकने के लिए बल किसने लगाया? जी हां, ठीक समझे, दीवार ने ही ठेले पर बल लगाया। बात शायद अटपटी लगे, पर है तो सच। दीवार अगर बल न लगाती तो ठेला चलता ही जाता। सोचो, अगर ठेले के रास्ते में एक कागज़ की दीवार आती तो वह तो ज़रा भी बल नहीं लगा पाती। उसकी क्या हिम्मत कि वह ठेले को रोक पाए। तो बस, ठेला उसे यूं हटाकर निकल जाता।
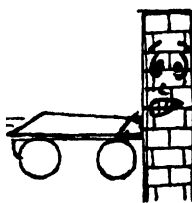
जब भी कोई चलती हुई वस्तु रुक जाती है, या उसकी गति धीमी हो जाती है, तो उस पर लग रहे बल को हमें ढूंढ निकालना होगा।

प्रयोग 2: बल ढूंढो

एक गेंद को कुछ ऊंचाई पर पकड़ो। फिर आराम से, बिना बल लगाए, गेंद को हाथ से छोड़ दो। गेंद नीचे गिरती है। सोचो, भला कौन-सा बल गेंद को नीचे की ओर दौड़ा रहा है? उस बड़े-से छुपे रुस्तम को क्या तुम पहचान पाए? तुमने तो नीचे की तरफ बल नहीं लगाया, फिर किसने लगाया? क्या गिरती हुई गेंद की गति में कुछ अंतर आता हुआ दिखता है? यदि ठीक से न देख पाओ, चूंकि पलक झपकने पर गेंद ज़मीन पर पहुंच जाती है, तो और ऊंचाई से छोड़ो उसे। क्या होता है, गिरती हुई गेंद की गति कम होती है या बढ़ती जाती है?
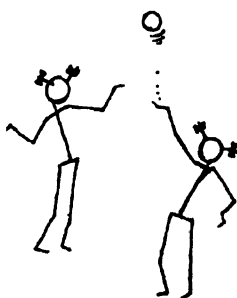
अगर फिर भी पता न चले तो गेंद को किसी ढलान से लुढ़काकर ध्यान से देखो कि गति बढ़ती है या कम होती है।

अब गेंद को ऊपर को उछालो। उछालने के लिए उस पर तुमने बल लगाया। बस उतनी ही देर गेंद पर बल लगाया जब तक उसे हाथ में पकड़कर घुमाया। हाथ से निकलते ही वह तुम्हारे बल से मुक्त हो गई। यानी तुम्हारे हाथ का बल अब उस पर नहीं लग रहा जब वह हवा में चल रही है। गेंद की गति को ध्यान से देखो।

क्या गेंद ऊपर को चलती ही जाती है?

हाथ से छूटने के बाद उसकी गति कम होती जाती है या बढ़ती है? कौन-सा बल है, जो गेंद की गति में अंतर लाता है?

ऊपर पहुंचकर गेंद क्षणभर के लिए रुकती है और फिर नीचे गिरने लगती है। ऊपर जाते समय भी वही बल लग रहा था जो अब उसे नीचे लाता है। क्या अब पहचान लिया उसे?

जी हां, यह पृथ्वी वास्तव में एक बहुत बड़ी छुपी रुस्तम है। हर चीज़ पर बल लगाती है। हर चीज़ को अपनी ओर खींचती है। दूर-दूर तक इसके बल का असर है। चांद तक को नहीं छोड़ा है - उस पर भी बल लगाती है। इसीलिए बेचारा चंदा पृथ्वी रानी के चक्कर काटता रहता है। इस बल का नाम शायद तुमने सुना हो, मुश्किल-सा लंबा-सा नाम है, गुरूत्वाकर्षण बल!

पढ़ पाए क्या इस भयंकर से नाम को। खैर, इस नाम से अभी हमें कुछ लेना देना नहीं । पहले इस बल का असर तो पहचान लें। ठीक है ना?
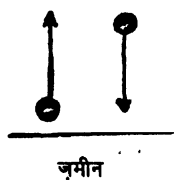
नीचे गिर रही गेंद पर लग रहे बल की दिशा दिखाओ। अब ऊपर उछाली गई गेंद पर लग रहे बल की दिशा दिखाओ।

क्यों, कहीं चक्कर में तो नहीं पड़ गए। यह तो नहीं सोच रहे कि गेंद ऊपर जा रही है पर बल कहीं और लग रहा है। ऊपर को क्यों नहीं लग रहा।

लो, फिर से ध्यान से सुनो। गेंद को तुमने उछाला, है ना। जब तक गेंद तुम्हारे हाथ में थी तुम उस पर बल लगा रहे

थे। बस तभी तक तुम ऊपर को बल लगा रहे थे। **हाथ से निकलते ही अब उस पर तुम्हारा बल नहीं लग रहा।** जा तो रही है ऊपर, पर उस दिशा में कोई बल नहीं लग रहा है। -उस पर तो बस एक ही बल लग रहा - पृथ्वी रानी का खिंचाव। और उस बल की दिशा पृथ्वी की ओर है।

यह बात बिल्कुल वैसी ही है जैसे ठेला छोड़ देने पर हो रहा था। धकेलते हुए ठेले को छोड़ दिया तो भी ठेला आगे को चल रहा था - पर एक छिपा हुआ बल, सतह का 'रगड़न' बल, उल्टी दिशा में लग रहा था। दरअसल यह सभी छुपे हुए बल हमारे दिमाग में परेशानी पैदा करते हैं। पर हमें सतर्क रहना है, और इनके चक्कर में नहीं पड़ना। हमें तो बस यह देखना है कि:

वस्तु की गति अगर कम हो रही है तो ज़रूर उल्टी दिशा में कोई बल उसे रोक रहा है।

वस्तु की गति तेज़ हो रही है तो ज़रूर कोई बल उसी दिशा में उसे खींच रहा है या धकेल रहा है।

यह दो बातें याद रहें तो उस छुपे चोर को तुम आसानी से ढूंढकर पहचान लोगे।

बूझो तो मानें:

एक माझी नाव चला रहा है। यदि वह चप्पू चलाना बंद कर दे तो चलती नाव की गति में क्या अंतर आएगा?

नाव की गति में इस अंतर का कारण बताओ। यहां कौन-सा छिपा बल काम रहा है, और किस दिशा में?

पृथ्वी रानी हमें अपनी ओर न खींचती तो....

हमने देखा कि पृथ्वी हर वस्तु को अपनी ओर खींचती है। गेंद हो या पत्थर, पेड़ या पुस्तक, गाय, भैंस, चूहा, मेंढक सभी पर पृथ्वी अपना बल लगा रही है। हां और हम पर, तुम पर सभी इंसानों पर भी पृथ्वी का बल लग रहा है। इसलिए

तो हम सब पृथ्वी पर पड़े हैं। नहीं तो दूर कहीं अंतरिक्ष में मंडरा रहे होते, क्यों है ना मज़ेदार ख्याल!

अच्छा, अब तुम कल्पना करो कि यदि पृथ्वी हर वस्तु को अपनी ओर न खींचती तो क्या-क्या होता। यह केवल कल्पना की बात नहीं है। ऐसा कई लोगों ने अनुभव भी किया है – उन सबने जो लोग अंतरिक्ष यान में बैठकर पृथ्वी से दूर चले जाते हैं। वहां ऊपर पृथ्वी का खिंचाव कम हो जाता है। और फिर उनके जीवन में बड़ी रोचक घटनाएं होने लगती हैं। जैसे, कोई भी वस्तु अपनी जगह पर टिक कर नहीं रहती। सामान नीचे बैठा नहीं रहता। बर्तन पटिए पर नहीं जमे रहते। पुस्तक, पेन, टेबिल पर नहीं पड़े रहते। और तो और, वे लोग खुद कुर्सी पर बैठ नहीं सकते - कुर्सी कहीं और, वे कहीं और मंडराने लगते हैं। पांव भी नीचे नहीं रहते - बल्कि व्यक्ति का सिर कहीं, और पैर किसी दूसरी दिशा में होते हैं।

और सुनो, गिलास में पानी उड़ेलना तक मुश्किल हो जाता है, क्योंकि पानी नीचे को न गिरकर कहीं भी जा सकता है। जितना सोचो, उतना ही अद्‌भुत दृश्य उभरता है। जीवन मानो पूरी तरह से उल्टा-पुल्टा हो गया है। जब भारत के राकेश शर्मा अंतरिक्ष यात्रा पर गए थे तो टी.वी. पर उनकी फिल्म दिखाई गई थी। फिल्म में भी उनके यान के अंदर का कुछ ऐसा ही मनोरंजक दृश्य था, किसी ने देखा था क्या?

अंतरिक्ष में तो हवा भी नहीं होती। वैसे, अंतरिक्ष यान में हवा का खास इंतज़ाम होता है।

पर हमारी पृथ्वी अगर एक दिन हवा को अपनी ओर खींचना बंद कर दे, तो हवा भी अंतरिक्ष में उड़ जाएगी, पृथ्वी के आसपास नहीं खिंची रहेगी। फिर तो सारी कहानी ही खत्म हो जाएगी।

पर रुको, मान लो यह हवा का चक्कर नहीं है। फिर क्या तुम इस कल्पना को आगे बढ़ा सकते हो? कोशिश करो, और कुछ

नई बातें सोचकर लिखो, जो तब घटेंगी जब पृथ्वी सब चीज़ों को अपनी ओर खींचना बंद कर दे।

प्रयोग-3: भार क्या है

अपनी बांह बाहर की ओर फैला लो और हथेली ऊपर को करो। अपने साथी से कहो कि तीन किताबें तुम्हारी हथेली पर रख दे। क्या हथेली पर कोई बल महसूस हुआ? इस बल कि दिशा क्या है?
अब साथी से एक और पुस्तक हथेली पर रखवाओ।
अब हथेली पर अधिक बल क्यों महसूस हुआ?
अनुमान से बताओ कि बांह को बिना झुकाए तुम अपनी हथेली पर ऐसी कितनी किताबें उठा सकते हो?
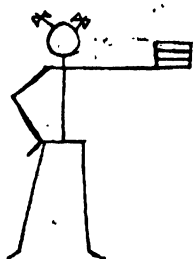
पुस्तकों के कारण जो बल तुम्हारी हथेली पर लग रहा है उसका एक आसान-सा नाम है। बता सकते हो? जी हां, वह बल पुस्तकों का भार भी कहलाता है। हां, वही भार या वज़न, जिसे तुम पहले से पहचानते हो। पृथ्वी जिस बल से पुस्तकों को खींचती है, वही बल पुस्तकों का भार है। और वही तुम्हारे हाथ पर महसूस हो रहा है। यानी हर वस्तु का भार दरअसल वह बल है जो पृथ्वी उस पर लगा रही है।

जब तुम कहते हो कि 'गेहूं' के बोरे का भार 20 किलो है, तो उसका मतलब है उस पर लग रहे खिंचाव बल की मात्रा 20 किलो भार है। दरअसल भार की इकाई को 'किलो भार' ही कहना चाहिए पर हम लोग अक्सर छोटे में उसे 'किलो' ही कहते हैं। अन्य किसी बल की इकाई को 'न्यूटन' कहते हैं, जो प्रसिद्ध वैज्ञानिक के नाम पर रखी गई है।

चांद पर तुम्हारा भार:

चौंक गए क्या? नहीं, नहीं हुजूर, तुम्हें चांद पर नहीं भेज रहे। केवल कल्पना कर रहे हैं कि यदि तुम चांद पर पहुंच जाओ तो वहाँ तुम्हारा भार कितना होगा।

हमने देखा है कि पृथ्वी हर वस्तु को अपनी ओर खींचती है। पर यह गुण केवल पृथ्वी का ही नहीं है। कोई भी विशाल वस्तु अन्य चीज़ों पर अपना खिंचाव बल लगाती है। जितनी ज़्यादा विशाल काया होगी उतना ही उसके खिंचाव का असर ज़्यादा होगा। चांद भी एक विशाल वस्तु है। इसलिए चांद भी अपने आसपास की चीज़ों पर खिंचाव बल लगाता है। पर चांद पृथ्वी से तो छोटा है। इसलिए जितने बल से पृथ्वी किसी चीज़ को खींचती है, चांद उसी चीज़ को कम बल से खींचेगा। चांद का खिंचाव बल पृथ्वी से 6 गुना कम है।

अब मान लो पृथ्वी पर तुम्हारा भार 36 'किलो भार' है। तो चांद पर पहुंच जाने पर क्या होगा? चांद पर तुम्हारा भार 6 गुना कम हो जाएगा। यानी देखने में तो तुम वैसे ही दिखोगे, उतने ही लंबे चौड़े, पर तुम्हारा भार चांद पर केवल 36 ÷ 6 = 6 'किलोभार' आएगा। यानी वहां तुम बिलकुल हल्के हो जाओगे। वाह, क्या मज़ा आएगा। एक कदम रखोगे तो दूर तक फुदक जाओगे। और चूंकि हर चीज़ वहां हल्की हो जाएगी, तुम बड़ी दिखने वाली वस्तु को आराम से उठा लोगे।

इसी तरह मान लो हम तुम्हें बृहस्पति जैस ग्रह पर पहुंचा देते हैं। बृहस्पति की काया तो पृथ्वी से भी अधिक विशाल है। इस लिए वहां पर खिंचाव बल पृथ्वी से 5 गुना अधिक है। उस ग्रह पर तुम्हारा भार यहां से 5 गुना अधिक होगा। वहां तुम हो जाओगे 36×5 यानी 180 किलो भार के। बाप रे, इतने भारी हो जाओगे कि लगेगा तुम लोहे के बने हो।

खैर, खिंचाव बल की यह भारी बातें छोड़ें। और अन्य ग्रहों की इस काल्पनिक सैर से लौटकर फिर पृथ्वी के दामन में लौट चलें।

बलों की कुश्ती: वस्तु पर कुल कितना बल?

तुमने पंजा तो लड़ाया होगा। नहीं! तो ज़रूर लड़ाकर देखना। जब तक दोनों लोग बराबर बल लगाते रहते हैं, दोनो
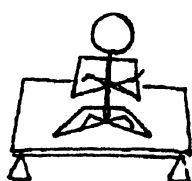
के पंजे बीच में रहते हैं। यानी दोनों बल आपस में कट जाते हैं और पंजे वहीं टिके रहते हैं। पर जैसे ही किसी एक का बल अधिक हो जाता है, पंजे उस बल की दिशा में झुकने लगते हैं।
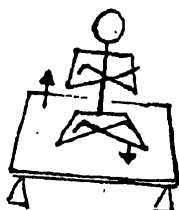
इसी तरह ठेले पर दो विपरीत और बराबर बलों की बात हमने पहले की थी। दो-दो बल लगने पर भी ठेला चलता नहीं, उसमें गति नहीं होती। चूंकि दोनों बल बिल्कुल बराबर हैं और ठीक उल्टी दिशा में हैं, इसलिए वैज्ञानिक कहते हैं कि ठेले पर कुल बल शून्य है।

अब एक उदाहरण लेते हैं। एक बच्चा चौकी पर बैठा है। इस बच्चे पर क्या कोई बल लग रहा है?
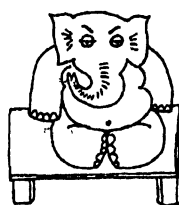
एक बल तो तुम जानते हो, पृथ्वी का खिंचाव बल। पर क्या केवल वही एक बल है? यदि एक वही बल होता तो बच्चा तेज़ी से पृथ्वी की ओर खिंचता चला जाना चाहिए। पर ऐसा नहीं हो रहा। क्यों? क्योंकि चौकी उसे सहारा दिए है। यानी चौकी बच्चे पर ऊपर की ओर बल लगा रही है - चौकी जो बल लगा रही है वह बच्चे के भार के बराबर है, और उससे उल्टी दिशा में है। तभी तो दोनों बल आपस में कट सकते हैं। चौकी उतना ही बल लगाकर ऊपर को सहारा देती है जितना भार उस पर लग रहा हो। पर यदि बहुत ही अधिक बल उसको नीचे दबाए, तो फिर उतना उल्टा बल लगाने की क्षमता उसमें नहीं रहती। फिर जो अन्जाम होता है वह कुछ ऐसा है।
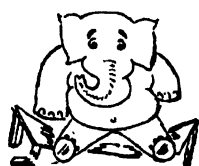
अब एक और उदाहरण देखते हैं, जिसमें दो बलों की कुश्ती में दोनों बराबर हैं। यानी कुल बल शून्य है।

एक नाव पानी पर तैर रही है। चल नहीं रही, खड़ी है। नाव पर क्या नीचे को बल लग रहा है? नाव स्थिर है, नीचे नहीं डूब रही। तो अवश्य कोई दूसरा उल्टा बल ऊपर को लग रहा है, जो उसे सहारा दे रहा है। नाव पर ऊपर की ओर कौन-सा बल लग रहा है?

इन दोनों उदाहरणों से हमने देखा कि जिन स्थितियों में लगता तो है कि, कोई बल-वल नहीं है वहां भी बलों का पंजा लड़ाना चल रहा होता है। लगता है कि वस्तुएं आराम से बैठी हैं, या लेटी हैं, पर उन पर दो-दो (या और भी) छिपे बल काम कर रहे होते हैं। दरअसल इस पृथ्वी पर तो बिना बल की कोई परिस्थिति नहीं होगी। हम ज़मीन पर खड़े हैं तब भी हम पर दो बराबर बल लग रहे हैं - एक पृथ्वी का खिंचाव बल, और दूसरा ज़मीन का सहारा देने वाला बल। पर आपस में ये दोनों कट जाते हैं इसलिए हमें कुछ महसूस ही नहीं होता। यानी हम पर कुल बल शून्य होता है। इसलिए हमें भ्रम होता है कि कोई बल ही नहीं लग रहा हम पर। एक आखिरी उदाहरण, जहां हम तो खूब बल लगाते हैं पर उसका असर नहीं दिखता।

खूब भरा हुआ ठेला है। बहुत धक्का लगाने पर भी ठेला टस से मस नहीं हो रहा। भला, कौन-सा बल हमारे धक्के को काट रहा है? बूझ पाए क्या? या हमें ही बताना पड़ेगा। हां, वही 'रगड़न' मियां। ठेला भारी होने से उस पर लग रहा सतह का 'रगड़न' बल भी अधिक है। अब यदि हमें इस 'रगड़न' बल से कुश्ती जीतनी है तो और अधिक बल लगाना होगा। यदि हम उतना बल अकेले न लगा पाएं तो एक साथी की मदद लेनी होगी।
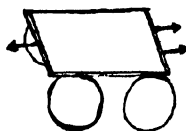
हां, अब देखो ठेला चल ही पड़ा - यानी हम दोनों का बल उस 'रगड़न' बल से अधिक हो ही गया।

इसको तीर से दिखाना हो तो ऐसे दिखा सकते हैं या फिर दूसरी तरह ऐसे।

यहाँ आगे को लगते दोनो बलों को जोड़कर एक लंबा तीर बना दिया है। जबकि पीछे को लग रहा सतह का रगड़न बल कम है, इसलिए तीर छोटा ही है।

अब कुछ करने के लिए

हमें विश्वास है अब तुम भी पूरी तरह से 'बलवान' हो गए हो, यानी बल का इतना ज्ञान हो गया है कि अब तुम किसी वैज्ञानिक से कम नहीं। क्यों, ठीक कहा हमने? अभ्यास के लिए नीचे दिए कुछ प्रश्नों के उत्तर दो:

नीचे दिखाई वस्तुओं पर क्या कोई बल लग रहे हैं?
यदि हां, तो किस-किस दिशा में? तीर से दिखाओ।

1. लात से उछाली गई गेंद

2. ढलान पर लुढ़कती गेंद

3. पत्थर पर बैठी चिड़िया

4. पेड़ से गिरता फल

5. पानी पर लेटकर तैर रहा बच्चा

नीचे कुछ अधूरे वाक्य लिखे हैं, जिन्हें पूरा करना तुम्हारा काम है।

1. ऊपर उछाली गई गेंद पर बल .... की दिशा में लग रहा होता है।
2. हर वस्तु पर पृथ्वी जो खिंचाव बल लगाती है उसे वस्तु का.......कहते हैं।
3. लुढ़कती हुई गेंद पर सतह का 'रगड़न' बल लगने से गेंद की गति ....होती जाती है।
4. पैडल चलाना बंद कर दें तो चलती साइकिल इसलिए रुक जाती है क्योंकि उस पर....................बल लग रहा होता है।

नीचे दिए वाक्यों में से सही/गलत चुनो:

1. हम खटिया पर सो रहे हों तो हम पर कोई भी बल नहीं लग रहा होता।
2. ढलान पर से लुढ़कते ठेले की गति नीचे आते-आते कम होती जाती है।
3. चलती हुई वस्तु पर कोई भी बल न लगे तो वह हमेशा चलती ही जाएगी, कभी रुकेगी नहीं।
4. हम चांद पर चले जाएं तो वहां हम पर कोई खिंचाव बल नहीं लगेगा।
5. पृथ्वी का खिंचाव बल आकाश में उड़ते पक्षियों पर भी लगता है।
6. हवा में चलते तीर पर केवल एक ही बल होता है जो नीचे पृथ्वी की ओर लगता है।

कुछ प्रश्न यहां दिए हैं। इनके उत्तर अपने शब्दों में समझाकर लिखो।

1. तुम पृथ्वी पर खड़े हो। पृथ्वी तुम्हें अपनी ओर खींच रही है, ठीक है। पर तुम्हें पृथ्वी का कोई खिंचाव बल महसूस नहीं होता। भला, ऐसा क्यों?
2. तुमने कंचे को दरी पर लुढ़काने वाला प्रयोग किया था। देखा था कि हर बार दरी पर कुछ दूर जाकर कंचा रुक जाता था। अब मान लो यही प्रयोग हम चिकनी बर्फ पर कर रहे हैं - तो बर्फ पर लुढ़कता कंचा पहले से कम दूरी पर रुकेगा या अधिक? दूरी में यह अंतर क्यों आएगा।

(अनीता रामपाल - होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध)

∞ ∞ ∞
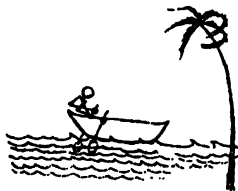
आइए सुनिए किस्सा, एक नए ढंग की परीक्षा का। चाहे अनचाहे परीक्षा शिक्षा व्यवस्था का एक आधार-स्तंभ बन ही जाती है। इस विषय पर भी शिक्षा के अन्य पहलुओं की तरह असंख्य मत हैं। हम यहां पर खुली किताब की परीक्षा के एक अनुभव का हिस्सा दे रहे हैं।

नई किताबें, नई परीक्षा

सामाजिक अध्ययन विषय कक्षा छह, सात एवं आठ में पढ़ाया जाता है। यही वह विषय है जिसके बारे में यह बात बहुत प्रचलित है -

इतिहास, भूगोल बड़े बेवफा,
रात को रटे और सुबह तक सफा।

इस बदनाम विषय को रटन्तपन की मजबूरी से छुटकारा दिलाने की कोशिश हमने की। इस प्रयास में बहुत-सी बातें भी हमने बदलीं। इसके लिए सबसे पहले तो जानकारी को रटने की बजाए समझने पर ज़ोर देने वाली पाठ्यपुस्तकें नए सिरे से तैयार कीं। ये

जब यह परीक्षा पद्धति शुरू हुई तो डर था कि लोग स्वीकार करेंगे या नहीं, लेकिन फिर लगा कि विषय को रटने की मजबूरी से छुटकारा दिलाना है तो यह कदम भी उठाना पड़ेगा। किस्सा खुली किताब परीक्षा का।

परीक्षा तो थी, फिर भी....

पाठ्यपुस्तकें मध्यप्रदेश सरकार की अनुमति से आठ स्कूलों में प्रयोग के तौर पर पढ़ाई जा रही हैं।

इसके बाद बच्चों का मूल्यांकन करने की प्रणाली को बदला गया। क्योंकि किताबें बदली जाएं और परीक्षा का तरीका न बदले तो सब किए कराए पर पानी फिर जाता है। इसलिए बच्चों की सोच-समझ और अभिव्यक्ति को जांचने वाले प्रश्न बनाने की कोशिश हुई और अहम् निर्णय लिया गया कि परीक्षा में छात्र पाठ्यपुस्तक का उपयोग कर सकते हैं, यानी परीक्षा खुली किताब वाली होगी।

यह निर्णय लिया तो बड़ी उधेड़बुन के बाद गया था। माध्यमिक शाला के स्तर पर खुली किताब वाली परीक्षा और वो भी फिर सामाजिक अध्ययन में - डर लग रहा था कि पता नहीं इस परीक्षा को लोग स्वीकार करेंगे या नहीं? अलग ढंग के नए-नए प्रश्न कैसे बनाएंगे, बच्चों के उत्तरों को अंक कैसे देंगे? आदि-आदि। पर दूसरी ओर मामला बिल्कुल साफ था। रटने, रटवाने की प्रवृत्ति पर रोक लगानी है तो पुस्तक तो देनी ही पड़ेगी। इस प्रयास को पूरा करने में कई अड़चनें आईं, कई बातें सीखीं, कई बातें सोचनी पड़ीं। इन सबके बारे में कभी बाद में। अभी इस खुली किताब वाली परीक्षा की कुछ झलकियां।

वे पन्ने पलटते रह गए

पहले तो बच्चों को लगा कि परीक्षा में पुस्तक होगी तो घर पर कुछ तैयारी करने की ज़रूरत ही नहीं है। सो वो बगैर पढ़े ही परीक्षा देने आ गए। पर जब प्रश्न-पत्र पढ़कर पुस्तक में से उत्तर निकालने की कोशिश शुरू की तो उनकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। वे पन्ने पलटते रहे, पलटते रहे - और उन्हें उत्तर ढूंढने में बहुत दिक्कत हुई। बहुत समय लगा। वे प्रश्न-पत्र अधूरा ही छोड़ कर उठ गए।

तब, बच्चों को समझ में आया कि पास में पुस्तक खुली होने से समस्या हल नहीं हो जाती। पाठ पढ़ना, समझना, तैयारी की मेहनत करना अब भी ज़रूरी है।

हमें भी कुछ महत्त्वपूर्ण बातों का अहसास हुआ। बच्चों को कई उत्तर पता थे फिर भी वे पन्ने पलट रहे थे कि किताब में देख कर ही लिखेंगे। उन्हें यह समझाने का तरीका ढूंढना ज़रूरी था कि पुस्तक का उपयोग तभी करें, जब कुछ पता न हो, या किसी चीज़ के बारे में संशय हो। पहली कोशिश अपनी समझ से, अपने शब्दों में उत्तर देने की ही होनी चाहिए। हर प्रश्न को पुस्तक में देखकर उत्तर देने से फिजूल समय

ही खराब होता है। तब हमने यह नीति बनाई व बच्चों के बीच इसका प्रचार भी किया कि अपने शब्दों में लिखे उत्तरों को एक अंक ज़्यादा दिया जाएगा।

उपशीर्षकों की भूमिका

दूसरी बात जिसका हमें तीव्रता से अहसास हुआ वह यह थी कि पुस्तक में जानकारी ढूंढने के तरीके बच्चों को स्पष्ट रूप से सिखाने पड़ेंगे। तब हमने कोशिश की कि हर पाठ में अधिक संख्या में सटीक उपशीर्षक डाले जाएं। साथ ही पाठ के अंत में दिए जाने वाले अभ्यास के प्रश्नों में उपशीर्षकों के उपयोग से संबंधित प्रश्न खासतौर से डाले गए। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शिक्षकों को भी उपशीर्षकों के उपयोग के प्रति सचेत किया गया।

सवाल पाठों की हैसियत का भी

इस पूरे अनुभव से सीखने का सिलसिला और बहुत आगे तक गया। जब हमने बच्चों के उत्तर जांचे और उनका विश्लेषण किया तो विभिन्न प्रश्नों का बड़ा ही अलग-अलग हश्र सामने आया। ऐसा कि जो हमारी सोच तक से बाहर था। उदाहरण के लिए यहां दो प्रश्नों के उत्तरों को देखते हैं:

एक प्रश्न था 'मुगल काल के गांव' नामक पाठ से कि *'गांवों के ज़मींदार मुगल अमीरों की क्या मदद करते थे?'* इस प्रश्न का सीधा उत्तर पाठ में कहीं एक जगह लिखा हुआ नहीं है। पाठ में एक मुगल गांव की कहानी है जिसकी घटनाओं और पात्रों के द्वारा मुगलकालीन व्यवस्था का चित्रण किया गया है।

इसका मतलब यह था कि छात्र पाठ के किसी एक अंश की नकल उतार कर नहीं लिख सकते थे और उन्होंने ऐसा किया भी नहीं। फिर भी यह प्रश्न बच्चों के लिए मुश्किल साबित नहीं हुआ। 50 में से 35 बच्चों ने संतोषजनक जवाब लिखे। उत्तर बिल्कुल न लिखने वाले सिर्फ सात बच्चे थे।

जब हमने मिलकर इन बातों का विश्लेषण किया तो यह बात समझ में आई कि ज़मींदार की गांव में जो भूमिका थी वह पाठ में कई घटनाओं के द्वारा बार-बार सजीव, रोचक व ठोस रूप से उभर कर आई थी। अतः बच्चों के मन में ज़मींदार की भूमिका की एक स्पष्ट व ठोस छवि बन गई थी और वे अपने मन में उतरी छवि और समझ के आधार पर प्रश्न का उत्तर दे पाए। इस प्रश्न के माध्यम से हम यह मूल्यांकन कर पाए कि बच्चों ने पाठ में बिखरी हुई जानकारी कैसे अपनी समझ के सहारे निकाली और अपने शब्दों में लिखी।

प्रश्नः गांव का ज़मींदार मुगल अमीरों की क्या मदद करता था?

विद्यार्थियों के उत्तरों के कुछ उदाहरण....

1. गांव के ज़मींदार मुगल अमीरों की लगान वसूल करने में मदद करते थे। और किसी किसान को गांव से भागने नहीं देते थे। उन्हें रोका जाता था। गांव में नए किसानों को बसाने के लिए पूरी छूट देते थे। ताकि वह ज़मीन जोतें। और लगान पूरा भरा जा सके।

2. गांव के ज़मींदार मुगल अमीरों की लगान वसूल करने में मदद करते थे। तथा किसानों को दबा धमका कर लगान इकट्ठा करते थे।

3. गांव के ज़मींदार मुगल अमीरों की मदद कर में करते थे। गांव गांव से कर इकट्ठा करते थे और सब हिसाब अपने पास रखते थे और बाद में कर का पूरा पैसा मुगल अमीरों को दे देते थे।

4. गांव के ज़मींदार मुगल अमीलों को किसानों से लगान इकट्ठी कर के देते थे। और आमिल वह लगान मुगल अमीरों को देता था। इस प्रकार गांव के ज़मींदार मुगल अमीरों की मदद करते थे।

यह पाठ छोटा-सा

अब आइए एक दूसरे प्रश्न के उदाहरण पर। यह ज़मींदार वाले प्रश्न से एक बिल्कुल अलग स्थिति प्रस्तुत करता है। प्रश्न था इतिहास के ही एक-दूसरे पाठ 'अंग्रज़ों के शासन में जंगल और आदिवासी' से।

प्रश्न: बाहर के लोग वन की ज़मीन पर लगान आसानी से क्यों चुका पाते थे?

पाठ के एक अंश में यह बताया गया है कि आदिवासी लोग अपनी ज़मीनों पर अंग्रेज़ों द्वारा मांगा लगान कई बार नहीं चुका पाते थे, जबकि बाहर के लोग (सेठ, साहूकार, ज़मींदार) वन की ज़मीन पर अधिकार करके लगान चुका पाते थे क्योंकि वे लकड़ी काट कर उसका व्यापार करते थे। उन दिनों लकड़ी की मांग बहुत बढ़ गई थी।

अचरज की बात यह है कि इस प्रश्न का उत्तर एक सटीक पैराग्राफ में इस छोटे से पाठ में लगभग शुरू में ही लिखा हुआ है। उम्मीद तो यह की जानी चाहिए थी कि अधिकांश बच्चे इस पैराग्राफ की नकल उतार कर लिख देंगे और प्रश्न को सही-सही हल कर देंगे। पर 50 में से 32 बच्चे इस सटीक पैराग्राफ को नहीं ढूंढ पाए। पैराग्राफ की नकल उतारी 11 बच्चों ने, 7 बच्चों ने इस अंश की बातें अपने शब्दों में लिखीं। यानी कुल 18 उत्तर ठीक थे। अब बताइए हम क्या सोचें?

प्रश्नः बाहर के लोग बन की ज़मीन पर लगान, आसानी से क्यों चुका पाते थे?

विद्यार्थियों के उत्तरों के कुछ उदाहरण....

1. मगर खेती करने को आदिवासी किसान इस तरह लकड़ी नहीं बेचते थे। वे सरकार को लगान समय पर नहीं चुकाना पाते लगान नहीं चुकायी तो जमीन नीलाम हो जाती नीलामी से बचने के लिए आदिवासी सेठ साहूकारों से कर्जा लेते थे। आदिवासियों की जमीन नीलाम करवा कर खरीद ली। अब आदिवासी साहूकारों के बटाईदार . . .

(यह अंश पाठ में सही अंश के ठीक बाद आता है)

2. स्वतंत्रता के बाद भारत में बेगार करवाना तो गैर कानूनी हो गया पर जंगल के उपयोग को लेकर वही पुरानी समस्याएं बनी हुई हैं। स्वतंत्रता के बाद भारत की सरकार ने वनों आरक्षित करने और लोगों द्वारा वन पर (इ)स्तमाल रोक लगाने की नीति कमयाब (कायम) रही। गांव के लोग को वनों का इस्तमाल करते थे। और इनमें उपयोगी चिज (चीज़) बेच कर लगान आसणि (आसानी) से देते थे।

(पहली सात पंक्तियां पाठ के अंत से ली गई हैं। फिर कुछ अपने आप जोड़ा गया है।)

3. क्योंकि जमीन पर अनाज बहुत होता उसे बेच कर जमीन की लगान दे देते थे और उन्हें देना अखरता नहीं था

(अपना अनुमान लगाते हुए लिखा गया है)

पाठों की तुलना

50 में से 32 छात्र क्यों नहीं ढूंढ पाए इस प्रश्न का उत्तर? पुस्तक सामने होते हुए भी।

चलिए ज़रा पाठ के स्वरूप को जानें। यह पाठ 'मुगल काल के गांव' से बिल्कुल अलग था। इसमें न कहानी थी, न किस्से, न पात्र, न घटनाएं। पाठ में कई जटिल प्रक्रियाएं संक्षेप में, तेज़ी से व एक बार में ही बताई गईं थीं।

ठोस, सजीव कहानीनुमा वर्णन जिसमें मुख्य बातों की कई बार पुनरावृत्ति हो जाती है - यह तकनीक इस पाठ के लिखने में नहीं अज़माई गई थी।

इसीलिए शायद बाहर के लोगों की गतिविधियों की छवि बच्चों के मन में नहीं बन पाई थी और वे इस प्रश्न का उत्तर ठीक से नहीं दे पाए। इस तरह मज़ेदार बात यह रही कि बच्चों की

मुगल काल के गांव...एक अंश

ज़मींदार सूरजदेव जाट ने पटवारी और पटेल को बुलाया और उनसे लगान इकट्ठा करने को कहा।

पटवारी बोला, "अगर कोई देने से इंकार कर दे तो?"

ज़मींदार बोला, "मेरे दो घुड़सवार और चार सिपाही आपके साथ चलेंगे - देखते हैं किस की हिम्मत है मना करने की।"

लगान इकट्ठा करने में तीन-चार दिन लग गए। कुछ किसानों के खेत में ओले पड़े थे तो उनसे लगान नहीं मिल सका।

जब जागीरदार का आमिल लौट कर आया तो ज़मींदार सूरजदेव ने उसे हिसाब समेत इकट्ठी लगान की रकम थमा दी। आमिल ने पूछा कि पैसे पूरे क्यों नहीं हैं।.....

अंग्रेज़ी शासन में वनों का उपयोग...एक अंश

...अब बाहर के सेठ, साहूकार व ज़मींदार आकर जंगल की ज़मीन अपने नाम से दर्ज कराने लगे। जंगल पर उनका हक होने लगा। मगर उन्हें जंगल से क्या लाभ मिला?

उन दिनों लकड़ी की खूब मांग बढ़ रही थी। रेल के स्लीपरों के लिए, जहाज़ों के लिए, शहर में बन रही कोठियों, दफ्तरों, घरों के लिए। सेठ, साहूकारों ने जंगल की ज़मीन लेकर लकड़ी दनादन काटी व बेच कर मालामाल हो गए। इस धन से वे सरकार का लगान आसानी से चुका पाए।

मगर खेती करने वाले आदिवासी, किसान इस तरह लकड़ी नहीं बेचते थे। वे सरकार का लगान समय पर नहीं चुका पाते थे। लगान नहीं चुकाई तो ज़मीन नीलाम हो जाती। नीलामी से बचने के लिए आदिवासी सेठ, साहूकारों से कर्ज़ा लेने लगे।......

(यह पाठ नए संस्करण में बदला जा चुका है)

क्षमता के साथ-साथ हम पाठों की क्षमता का मूल्यांकन भी करने लगे।

नकल और अक्ल

दूसरी बात जो स्पष्टतः कही जा सकती है वह यह कि किताब से उत्तर निकाल पाना (वो भी परीक्षा के एक निश्चित समय के अंदर) एक अच्छी खासी कुशलता जान पड़ती है। इसमें कई छोटी-छोटी कुशलताएं शामिल हैं - जैसे ध्यान से पढ़ना, विषय व प्रश्न के संदर्भ को समझना, पाठ के शीर्षक व उपशीर्षकों को उपयोग में लाना और सबसे बढ़कर तो धीरज रखना। पुस्तक हाथ में होने से परीक्षा में बच्चों के लिए करने को कुछ नहीं रहता - यह कहने से पहले लोगों को दुबारा सोच लेना चाहिए।

उपरोक्त दोनो प्रश्नों में ही देखें तो कई बच्चों ने पुस्तक के अंश को नकल करके लिखा था। इससे सहज ही हमारे मन में बड़ी दुविधा पैदा होती है। नकल को क्यों अच्छे नंबर दिए जाएं? हम सोचने लगते हैं उसने कुछ भी तो नहीं किया। सिर्फ नकल करके लिखा है - फिर अंक क्यों?

हमने इस मुद्दे पर बहुत मन टटोला। सोचा कि जब हम पुस्तक उपलब्ध करवा रहे हैं तो बच्चों द्वारा पुस्तक के अंश उतारकर लिखने की कोशिश स्वाभाविक है। इसे गौण क्यों मानें? अगर यह क्षमता इतनी सरल है तो सारे विद्यार्थी नकल क्यों नहीं कर पाए? फिर 'नकल' में भी बच्चों की क्षमता के विभिन्न स्तर दिखाई पड़ते हैं। कुछ बच्चों ने सटीक, स्पष्ट अंश पाठ में से उतारे हैं। कुछ ने उचित पाठ्यांश में से अधूरी व अस्पष्ट बात ही उतारी है। कुछ ने उचित अंश उतारने के साथ-साथ आगे या पीछे के असंगत वाक्य भी उतार डाले हैं।

हम तो यही निष्कर्ष पर पहुंचे कि नकल वाले उत्तरों में भी बच्चों की क्षमता का मूल्यांकन करने की बहुत गुंजाइश है। समझदारी के साथ पढ़ने व लिखने की क्षमता एकदम आधारभूत क्षमता है। अगर हमने अपने विद्यार्थियों को इसमें दक्ष नहीं किया और मूल्यांकन करके यह सुनिश्चित नहीं किया कि हमारे माध्यमिक शाला से उत्तीर्ण छात्र समझदारी के साथ पढ़ व लिख पाते हैं तो फिर हमने स्कूल लगाकर आखिर क्या किया?

आपको सामाजिक अध्ययन शिक्षा में खुली किताब परीक्षा के बारे में क्या लगता है? अपने विचार हमें लिखें। वैसे सामान्य सामाजिक अध्ययन की परीक्षा के बारे में आपका क्या कहना है? हम चाहेंगे कि परीक्षा पर इस बातचीत को जारी रखें ताकि मूल्यांकन के शैक्षिक उद्देश्यों को उभारा जा सके।

सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम, एकलव्य

‘ह’ में ‘आ’ की मात्रा ‘हा’ !

* * * *

शिक्षक ने कहा दहाई का 1, इसके पीछे लिखा 5 - क्या बना? बच्चों ने कहा ‘15’, ऐसे ही बात आगे बढ़ी... लेकिन नहीं, शिक्षक को लगा उसके प्रयास में कुछ गड़बड़ है - बच्चे ऊब रहे हैं, उसने यह बात अपनी डायरी में दर्ज की।

एक शिक्षक की डायरी यानी एक ऐसा रोज़नामचा जिसमें हर उस प्रयास का अवलोकन दर्ज है जो उसने बच्चों को कुछ सिखाने के लिए किया है - ताकि वह कक्षा में उठाए गए अपने हर कदम पर बारीकी से टीका-टिप्पणी कर सके और उसके आधार पर फिर कुछ नया प्रयास कर सके - इसलिए कि बच्चे कुछ सीख सकें।

ऐसी ही एक डायरी के चंद पन्ने जो **गंगा गुप्ता** ने पाठई, ज़िला बैतूल की प्राथमिक शाला में बच्चों को पढ़ाने के दौरान हुए रोज़मर्रा के अनुभवों को लेकर लिखी थी।

28 जनवरी 1988

बोर्ड पर अक्षर लिखती गई और बच्चों से पूछती भी गई - "ह'अब ये 'आ' की मात्रा 'हा' और ये 'र' - अब पढ़ो क्या लिखा है?"

"हार" मंगलेश ने झट से जोड़कर पढ़ा। मैंने कहा, "अच्छा अब तुम नहीं बता सकते।" मैंने लिखा 'हाथ' मुकेश ने पढ़ा "हाथी" - ललिता बोली, "नई 'हाथ' बहनजी हाथ!"

"अच्छा अब बताओ" मैंने लिखा 'काना' - मंगलेश बोला, "बहनजी आप तो 'आ' की मात्रा खूब लगा देती हैं।" मैने कहा, "तो क्या हुआ - पढ़ो..'क' में 'आ' की मात्रा 'का', 'न' में 'आ' की मात्रा ना।" ललिता बोली, "बहनजी - काना" ममता एक हाथ से आंख दबाकर, "ऐसा होता है काना!"

फिर मैंने 'तल' लिखा, मुकेश बोला "त' 'ल' 'तल' बहनजी 'तल।" मैंने कहा, "हां भइया जे तो पूड़ी तल, भजिया तल वाला तल लिखा है।" सभी बच्चे खूब हंसे।

इस गतिविधि में काफी मज़ा आ रहा था। पहले मैंने जोड़कर ही पढ़ाया परन्तु अब अक्षर तोड़कर नहीं लिख रही थी - अक्षर शब्द से ही जुड़े थे।

नोट : कुछ शब्द जानबूझकर चित्र-कार्ड* वाले लिखे थे। यह जानने के लिए कि पहले जो अभ्यास कराया था वो इन्हें याद है या नहीं, परन्तु उन शब्दों को लगभग सभी ने पहचान लिया। उनमें अधिक उत्साह लाने के लिए ही मैं उनसे कहती 'अब तो तुम बता ही नहीं सकते।' तो बच्चे जल्दी बताने की कोशिश करते। इस गतिविधि में मुझे और बच्चों को काफी मज़ा आया। मुझे कुछ आशा बंधी कि शायद ऐसे ही बच्चे पढ़ना सीख जाएं।

---

* बच्चों को भाषा सिखाने की एक महत्वपूर्ण सामग्री - कार्ड के एक तरफ किसी चीज़ का चित्र बना होता है और दूसरी तरफ बड़े अक्षरों में उस वस्तु का नाम, इनसे बच्चों के साथ सामूहिक तौर पर या टोलियों में भाषा की तरह-तरह की गतिविधियां की जा सकती हैं। इसके अलावा और भी कई तरह के चित्र-कार्ड बनाए जा सकते हैं।

20 सितम्बर 1988

आज स्कूल में उपस्थिति बहुत कम थी। अतः सोचा घर-घर जाकर बच्चों के पालकों से संपर्क कर उन्हें अपने बच्चे स्कूल में भेजने के लिए प्रेरित किया जाए। प्रत्येक घर जाकर पालकों से संपर्क किया। पालकों ने जो जवाब दिए वो इस प्रकार हैं —

पुनिया : *"बहनजी लड़की 10 साल की हो गई है। अब तो लड़की कूं जाए है, पहली पढ़ा के का आ जाएगो।"*

इमला : *"हम तो भेजने कूं तैयार हैं पर स्कूल बड़ी दूर है, तुम जेई ढाना में पढ़ाओ तो भेजेंगे।"*

छोटीबाई : *"नई भेजें। बड़ी दूर है, तुम घेर के रोज़ लिजाओ, उते के ढाने के मोड़ा-मोड़ी मारे हैं।"*

राजेश : *"कल से भेजेंगे, अबे बुखार से उठो है।"*

महेश : *"बकरी कौन चराएगा बहनजी .... पूछ भई ओसे जाएगो तो।"*

चिरोंजी : *"बेहनजी, स्कूल दूर है।"*

अशोक : *"हम तो कहे हैं, वो जात नई है, तो हम बकरी चराए कूं भेज दे हैं।"*

कैलाश : *"आऊंगा बहनजी कल से।" (कैलाश के पालक घर पर नहीं थे)*

मनोरी : *"बहनजी, बकरी चराता है .... बहनजी का पढ़ाएगी ...... गुरुजी होता तो पढ़ाता।"*

किसन : *"ले जाना बहनजी, वो नई जाता तो का करें।"*

पप्पू : *"बकरी कौन चराएगा बहनजी।"*

अशोक बिरजू : *"बैल चराता है, बड़ा भाई पढ़ने जाता है।"*

सुक्का : *"का बहनजी, हम सब देखा है, तुम का पढ़ाते हो - घड़ी भर आए .... और चले का करें। मोड़ा-मोड़ी घर के काम करेगो।*

वहां तो 100 तक गिनती भी नहीं आए है ...... खेल खेलवे नई भेजें हम।"

विस्सू : "कुछ नहीं पढ़ाती हो तुम। मास्साब रहे तो पढ़ाए। दो साल से फेल हो रहा है। नाम लिखना नहीं आता - का करेंगे भेजके। कम-से-कम कृषानी सीखेगा, नई तो स्कूल से भी जाएगा और कृषानी भी नहीं आएगी।"

जहां तक मुझसे बना उन्हें समझाकर संतुष्ट किया। और शिक्षा का महत्व बताते हुए बच्चों को स्कूल भेजने को कहा। कुछ ने कहा कि भेजेंगे। इस प्रकार चार बज गए। और मैं वापस शाला आ गई। बच्चों से कुछ नहीं करा पाई। उन्हीं ने बैठके चित्र बनाए। किसी ने गिनती लिखी। छुट्टी हो गई।

21 सितम्बर 1988

सभी बच्चों को भाई बहनों के नाम लिखना सिखाया। बहुत उत्साह से बच्चे अपने भाई बहनों के नाम बताकर लिखने की कोशिश कर रहे थे। नाम लिख लेते तो बहुत खुश होते। बड़े मनोयोग से वे इस गतिविधि में जुटे थे। सबने पहले नकल की। तीन चार बार नकल करने के बाद बिना देखे नाम लिखकर बताया। मैं कहती लिखो 'स' में छोटे 'उ' की मात्रा 'सु' ,'न' में छोटी 'इ' की मात्रा 'नि' ,'त' में बड़े 'आ' की मात्रा 'ता', तो मंगलेश ने "सुनिता" लिखा। इसी प्रकार सभी बच्चों को अक्षर और मात्रा शायद समझ में आ रही थी।

- - - - - - -

एक कहानी पढ़कर सुनाई, 'शोर मचा जंगल में'। प्रत्येक पन्ने पर जानवरों के जो नाम आते गए मैं उन्हें बोर्ड पर लिखती जाती। दूसरा पन्ना पढ़ने से पहले बच्चों से बोर्ड पर लिखे नाम दोहराने को कहती कि .... किसने जंगल में खेलकूद कर शोर मचाया? मैंने बोर्ड पर

लिखे हाथी पर उंगली रखी तो बच्चों ने पहचान कर पढ़ा — हाथी ने।

अब बहनजी हिरण....

इसी प्रकार बार-बार दोहराने से बच्चे पहचान गए कि हाथी कहां लिखा है तो हिरण, बंदर आदि कहां।

बच्चों को बार-बार बोर्ड पर लिखे शब्दों की ओर देखने के लिए कहा, "भैया देखते जाओ, अपन नाम लिखते जा रहे हैं कि कौन शोर मचा रहा है। बाद में इनको पकड़ कर पिटाई करेंगे।"

"बहनजी खरगोश लिखो" - बच्चे मुझे बताते भी जाते - वो हल्ला मचा रहा था। ...... कहानी समाप्त हुई।

बच्चे बोले, "बहनजी अब इनको पीटो।" मैंने कहा अच्छा चलो ..... बच्चों की दो-दो की टोली बनाकर हाथी, हिरण, खरगोश और बंदर बनाए। एक बच्चा बना शेर। शेर ज़ोर से दहाड़ा - - - सभी हाथी, हिरण, खरगोश भागे। खूब भगदड़ मची कमरे में। बच्चों को काफी मज़ा आया। फिर सबसे पूछा, "तुम क्या बने थे तख्ता पर लिखा है, उंगली रखकर बताओ।" जिस-जिस ने बता दिया वे छूट गए और जो नहीं बता पाए वे अलग हो गए। मैंने कहा "अब इनकी पिटाई होगी, यही शोर मचा रहे थे जंगल में।" उन्हें गोल-गोल घुमाया। सभी बहुत खुश हुए। खूब मज़ा आया। बच्चों ने तख्ते पर लिखे शब्द काफी हद तक ध्यान में रखे।

नोट : मैंने अनुभव किया कि दो दिन पहले जो शब्द कार्ड से दस बार लिखवाने के बाद भी बच्चे नहीं पहचान पाए थे, वे सब कहानी में शब्दों को बोर्ड पर लिखकर दोहराते जाने से आसानी से बताने लगे। बहुत देर बाद भी बीच में से पूछने पर कि बंदर कहां लिखा है ममता ने झट से बता दिया।

27 सितम्बर 1991

आज सभी के लिए पोस्टकार्ड ले गई थी। ये पोस्टकार्ड फाइन के पैसों से खरीदे थे। मैंने स्कूल में यह नियम बना दिया है कि यदि स्कूल नहीं आते हो तो आवेदन पत्र भेजो अन्यथा 50 पैसे फाइन दो या फिर कक्षा के आसपास की सफाई करो। इसी फाइन का एक रुपया जमा हुआ था। आठ पोस्टकार्ड एक रुपए बीस पैसे के आए। उन पर बच्चों ने मास्साब को चिट्ठी लिखी। उनसे कहा, "तुम्हें जैसा लगे लिखो।" बच्चों ने चिट्ठी, वो भी पोस्टकार्ड पर, पहली बार लिखी। बहुत खुश हैं, सभी ने अच्छी चिट्ठी लिखी।

एक अक्टूबर 1991

दीर्घ अवकाश के बाद मोतियों से बच्चों को इकाई-दहाई सिखाने की गतिविधि कराई - दस मोती की कितनी माला है? ...बहनजी एक .....अच्छा अब पट्टी पर एक लिख लो। अब देखो खुले मोती कितने हैं .....बहनजी पांच। अब एक दहाई के पीछे पांच लिख लो। ये हो गए 15 – दस और पांच ....पंद्रह। अब दो माला यानी कितने मोती हो गए .....बहनजी 20 ..... अब कितनी माला है .....बहनजी दो - हां ये हो गए 20 - अब दो माला और दो मोती को लिखेंगे 22 यानी दो दहाई और दो इकाई।

नोट : *पता नहीं गलती कहां हुई बताने में। मेरा उद्देश्य था कि उन्हें 15, 22, 32 या इसी प्रकार के 10 से 30 तक के बीच के अंक लिखना आ जाएं। कुछ खास जमा नहीं, बच्चे शीघ्र ही ऊब गए थे। मुझे भी लगा कि इस प्रकार बताने में कहीं गड़बड़ है।*

कक्षा दो में बच्चों को इकाई और दहाई समझाने के लिए किताब में एक गतिविधि इस प्रकार की है जिसमें बच्चे अपने आप मिट्टी के मोती बनाते हैं और फिर एक-एक गिनकर दस-दस मोतियों को धागे में पिरोकर माला बनाते हैं। दस मोतियों की एक माला को एक दहाई और बचे हुए खुले मोतियों को इकाई मानते हैं - इस तरह इकाई-दहाई की समझ को बच्चों में उभारने का प्रयास इस प्रकार की गतिविधि में किया जाता है।

शनिवार को मैंने कहानी सुनाई थी। जिन बच्चों से पूछा उन्होंने पूरी कहानी बताई। बीच-बीच में यदि वे भूलते तो अन्य बच्चे बताने लगते कि पहले "ये और हे बे।"

मोहन ने कहा, "बहनजी मैं चुनमुन चूहा की कहानी गोंडी में बताऊंगा।" उसने गोंडी में कहानी शुरू की। सभी बच्चों को बहुत मज़ा आ रहा था। सब खूब हंस रहे थे। जब मोहन बीच में कुछ भूल जाता तो कक्षा दो की ममता उसे गोंडी में ही आगे की कहानी बताती। मुझे भी बहुत अच्छा लगा - जैसे "चल मेरी ढोलक ढम्मक ढुम, नानी के घर चलें हम और तुम" - इसका गोंडी में अनुवाद है "दा नवा डोलक उम्मक डुम, नानी ना रोन चले इम्मा न नीवा।"

नोट : इस प्रकार ये पुरानी कहानी आज बिल्कुल नई ही बन गई। मुझे नहीं पता था कि प्रत्येक बच्चा पूरी कहानी हिंदी से गोंडी में परिवर्तित करके क्रम से लगातार बता सकता था। यह मेरा पहला नया अनुभव था, पर काफी बढ़िया रहा।

****

* गंगा गुप्ता वर्तमान में सिवनी ज़िले की घंसौर तहसील की प्राथमिक शाला में कार्यरत हैं।
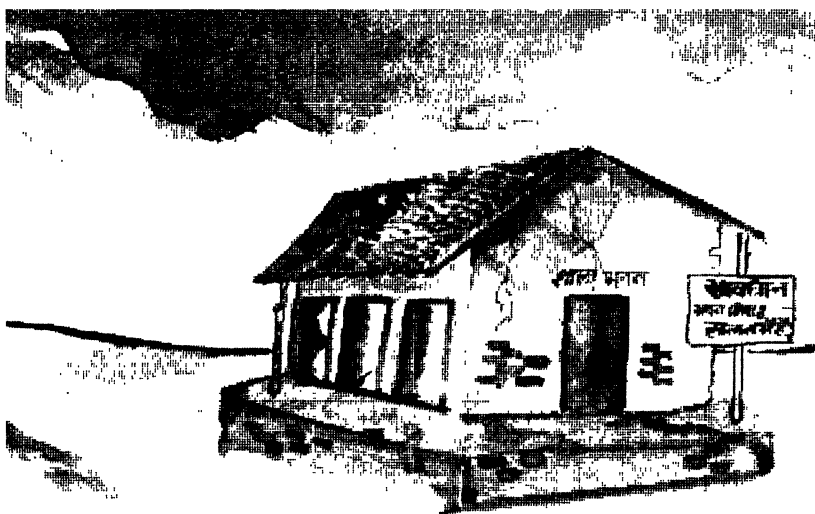
आओ स्कूल - स्कूल खेलें

वर्षा पूरे ज़ोर पर थी। शाला से गांव की ओर वाला नाला तेज़ी से बह रहा था और नगर का रास्ता नदी रोके बैठी थी। भारत का राष्ट्रनिर्माता अपने देश की दौलत को लेकर पी.डब्ल्यू.डी. द्वारा खतरनाक घोषित शाला भवन में सुरक्षित बैठा था।

वर्षा रुकने के इंतज़ार में इतना पढ़ना हो गया था कि अब न तो वे और पढ़ना चाहते थे और न वह पढ़ाना। पतरे पर तेज़ वर्षा की आवाज़ के कारण ऊंचा बोल-बोलकर पहले ही गला बैठ गया था। बच्चों के गीत व चुटकुलों का स्टॉक भी समाप्त घोषित हो गया था। बस, अब तो बारिश थमने का इंतज़ार ही चल रहा था। बिजली की चमक व ज़ोर की गड़गड़ाहट तड़तड़ाहट के साथ एक सामूहिक सिहरन दौड़ जाती थी। भवन हिल जाता था। शिक्षक को प्रथम बार ऐसा लग रहा था कि कहीं पी.डब्ल्यू.डी. वाले ही सच न हो जाएं।

उफनते नाले को साहस से पार कर एक पालक शाला में आ धमका। आते ही उसने मुख-पिस्तौल से शब्द दागे—"मास्साब, कुछ अक्कल है या नहीं, इतनी बारिश में स्कूल लगाते हो? अपने स्कूल की हालत तो देखो। यदि गिर गया तो मेरे बच्चे का क्या होगा?"

संदर्भ

वार्षिक सदस्यता

एवं

उपहार

. . . . रुपए

क ड्राफ्ट या

ते भेजें। चेक

हस्ताक्षर

ला।

"गंगाराम, तू हेडमास्टर। बैठ जा उस सूखी जगह पर। नानूराम तू ए.डी.आय.एस.। पूछ इस गधे से कि छात्रवृद्धि के आंकड़े कम क्यों हैं?" मास्साब ने आदेश जारी किए।

पालक बीच में बोल पड़ा, "मास्साब, इनकी सोई (व्यवस्था) तो कर दो, फिर छात्रवृद्धि करजो।"

प्रश्न उठ गया तो हमारे ... जवाब देंगे? ज़रूरी बातों के प्रश्न उठते हैं, पढ़ाई के नहीं। आज तक की पढ़ाई देख रहे हो। कभी किसी ने पूछा कि आठवीं पास को अपना नाम ठीक से लिखना क्यों नहीं आता? ये तो पूछा कि मास्टर गांव में क्यों नहीं रहता? ये नहीं पूछा कि मास्टर को गांव में रहने की क्या व्यवस्था

आओ स्
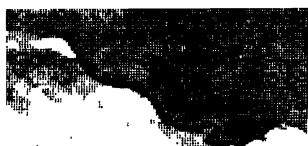
व र्षा पूरे ज़ोर पर थ
से गांव की ओर
तेज़ी से बह रहा था
का रास्ता नदी रोके बैठी थी
राष्ट्रनिर्माता अपने देश की
लेकर पी.डब्ल्यू.डी. द्वारा खतरनाक घोषित
शाला भवन में सुरक्षित बैठा था।

वर्षा रुकने के इंतज़ार में इतना
पढ़ना हो गया था कि अब न तो वे और
पढ़ना चाहते थे और न वह पढ़ाना। पत्तरे
पर तेज़ वर्षा की आवाज़ के कारण ऊंचा
बोल-बोलकर पहले ही गला बैठ गया था।
बच्चों के गीत व चुटकुलों का स्टॉक भी
समाप्त घोषित हो गया था। बस, अब तो

कि कहीं पी.डब्ल्यू.डी. वाले ही सच न हो
जाएं।

उफनते नाले को साहस से पार कर
एक पालक शाला में आ धमका। आते ही
उसने मुख-पिस्तौल से शब्द दागे—"मास्साब,
कुछ अक्कल है या नहीं, इतनी बारिश में
स्कूल लगाते हो? अपने स्कूल की हालत
तो देखो। यदि गिर गया तो मेरे बच्चे का
क्या होगा?"

संदर्भ वार्षिक सदस्यता

नाम ....

पता ....

....

....

....

पिन ....

सदस्यता शुल्क .... **वर्ष के लिए** .... **रुपए**

(वार्षिक सदस्यता शुल्क 35/- रुपए, डाकखर्च मुफ्त। बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद के नाम से भेजें। चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे।)

हस्ताक्षर

ल"।।

"गंगाराम, तू हेडमास्टर। बैठ जा उस सूखी जगह पर। नानूराम तू ए.डी.आय.एस.। पूछ इस गधे से कि छात्रवृद्धि के आंकड़े कम क्यों हैं?" मास्साब ने आदेश जारी किए।

पालक बीच में बोल पड़ा, "मास्साब, इनकी सोई (व्यवस्था) तो कर दो, फिर छात्रवृद्धि करजो।"

प्रश्न उठ गया तो हमारे [illegible] जवाब देंगे? ज़रूरी बातों के प्रश्न उठते हैं, पढ़ाई के नहीं। आज तक की पढ़ाई देख रहे हो। कभी किसी ने पूछा कि आठवीं पास को अपना नाम ठीक से लिखना क्यों नहीं आता? ये तो पूछा कि मास्टर गांव में क्यों नहीं रहता? ये नहीं पूछा कि मास्टर को गांव में रहने की क्या व्यवस्था

उपहार

अगर आपके किसी अन्य साथी/संस्था की संदर्भ के बारे में र
है तो उनका पता यहां लिख भेजिए। 'संदर्भ' की एक उपहार प्र
उन्हें तुरन्त भेजी जाएगी ताकि वे चाहें तो उसे देखकर बाद
'संदर्भ' का वार्षिक सदस्य बन सकते हैं।

नाम ....

पता ....

....

....

पिन ....

हस्ताक्ष

का र

राष्ट्र

लेकर पी.डब्ल्यू.डी. द्वारा खतरनाक घोषित शाला भवन में सुरक्षित बैठा था।

वर्षा रुकने के इंतज़ार में इतना पढ़ना हो गया था कि अब न तो वे और पढ़ना चाहते थे और न वह पढ़ाना। पतरे पर तेज़ वर्षा की आवाज़ के कारण ऊंचा बोल-बोलकर पहले ही गला बैठ गया था। बच्चों के गीत व चुटकुलों का स्टॉक भी समाप्त घोषित हो गया था। बस, अब तो

कि कहां पी.डब्ल्यू.डी. वाले हो तय न हो जाएं।

उफनते नाले को साहस से पार कर एक पालक शाला में आ धमका। आते ही उसने मुख-पिस्तौल से शब्द दागे—"मास्साब, कुछ अक्ल है या नहीं, इतनी बारिश में स्कूल लगाते हो? अपने स्कूल की हालत तो देखो। यदि गिर गया तो मेरे बच्चे का क्या होगा?"

मास्साब पहले ही भरे हुए थे, बोले – "आपको अपने एक बच्चे की चिन्ता है। मैं तो पांच घर छोड़ आया हूं, यदि मुझे कुछ हो गया तो उनका क्या होगा?"

पालक ने आगे कुछ नहीं कहा। गीली बीड़ी को काफ़ी प्रयास के बाद सुलगाकर वह न टपकने वाला स्थान देखकर बैठ गया और बीड़ी के कश खींचने लगा। बच्चे को उफनते नाले के पार ले जाना अभी उसके बस का नहीं था। बीड़ी के हर कश के साथ वह सरकार को गाली देने लगा। शिक्षक के लिए भी अब समय काटना कठिन होता जा रहा था।

बिजली की चमक के साथ ही शिक्षक के मस्तिष्क में एक विचार कौंधा। उसने चिल्लाकर कहा – "बच्चो आओ हम स्कूल-स्कूल खेलें।" बच्चे विस्मित! पालक चकित! पालक बोला, "बैठने की जगह नहीं है? फिर खेल की मास्साब को क्या सूझी?"

मास्साब बोले, "इस खेल का यही सही माहौल है। इसे ही स्कूल कहते हैं।" मास्साब का जोश व ज़ोरदार आवाज़ सुनकर बच्चे अगले आदेश की प्रतीक्षा करने लगे।

"गंगाराम, तू हेडमास्टर। बैठ जा उस सूखी जगह पर। नानूराम तू ए.डी.आय.एस.। पूछ इस गधे से कि छात्रवृद्धि के आंकड़े कम क्यों हैं?" मास्साब ने आदेश जारी किए।

पालक बीच में बोल पड़ा, "मास्साब, इनकी सोई (व्यवस्था) तो कर दो, फिर छात्रवृद्धि करजो।"

मास्टर तैश में बोला, "तुम चुप रहो जी, कुछ नहीं समझते। जब हमारे डी.ई.ओ. साहब से उनका बड़ा साब पूछेगा तो कौन जवाब देगा? यहां कमरों या भवनों की वृद्धि नहीं छात्रवृद्धि पूछी जाती है। चुपचाप बैठकर खेल देखो।"

"हां, पूरन तू बड़ा साब, पिला दोई के डाँट। कुछ नहीं करते हो? तुम्हारा मासिक पत्रक समय पर क्यों नहीं आता? स्कालरशिप की जानकारी नहीं भेजी? मवेशी गिनने का छोटा-सा काम तुमसे नहीं हुआ? निरोध के पैकेट का बंटवारा फर्ज़ी किया? और पैकेट दुकान पर बेच दिए? शर्म नहीं आती?"

गोपीकिशन ने उत्साही मन से खेल में भाग लेने के आशय से पूछा, "मास्साब, मैं मास्टर बनी ने पढ़ऊं?" मास्साब बोले, "बैठ जा मूर्ख। स्कूल में पढ़ाई की बात करता है। इतना भी नहीं मालूम?"

पालक ने दूसरी बीड़ी सुलगाते हुए कहा, "जब खेल खिंल इ रिया हो तो नानक्यां ने पढ़वा भी दो।"

मास्साब पुनः चिल्लाए, "तुम चुप रहो जी। कुछ समझते नहीं। विधानसभा में प्रश्न उठ गया तो हमारे मंत्रीजी क्या जवाब देंगे? ज़रूरी बातों के प्रश्न उठते हैं, पढ़ाई के नहीं। आज तक की पढ़ाई देख रहे हो। कभी किसी ने पूछा कि आठवीं पास को अपना नाम ठीक से लिखना क्यों नहीं आता? ये तो पूछा कि मास्टर गांव में क्यों नहीं रहता? ये नहीं पूछा कि मास्टर को गांव में रहने की क्या व्यवस्था

है। ये किसी ने पूछा कि सबकी औलाद सुधारने का ठेका लेने वाले मास्टर की औलाद क्यों बिगड़ रही है? ये तो पूछा कि छात्रवृद्धि अभियान का लक्ष्य पूरा क्यों नहीं हुआ? पर ये नहीं पूछा कि उन आने वालों को बैठाएंगे कहां। ये तो पूछा कि छात्रों को प्रवेश हेतु मना क्यों किया? पर यह नहीं पूछा कि उन्हें पढ़ाएंगे कौन?"

रतिराम के सिर पर चूने वाले पानी ने धार का रूप ग्रहण कर लिया था। वह और उसके पास खड़े साथी पूरे भीग गए थे। कमरे में कहीं सूखी जगह नहीं थी। उसने बरामदे के एक कोने की ओर इशारा करते हुए पूछा, "मास्साब, हम वहां चले जाएं? यहां भीगा है।" मास्साब खुश होकर बोले, "हाँ, हाँ, तुम उस कोने में जाकर अपना लिंक स्कूल खोल लो। अपने साथियों को भी ले जाओ।"

पालक ने सहजता से पूछा, "मास्साब, ये लिंक स्कूल कई होंवे?"

मास्साब ने उतनी ही सहजता से समझाया, "ये आफत भगाओ, मूरख बनाओ योजना है। जब तालाब में उफान अई जाय तो नाको खोली ने पानी निकाल दे ने जिनका खेत में पानी घुसे उनके कई दे कि हम सिंचाई के लिए नहर दे रहे हैं।"

बारिश थमने का नाम ही नहीं लेती थी। नाला उफान पर था। बिजली चमक रही थी।

जर्जर पाठशाला भवन गिरने की घड़ी का इंतज़ार कर रहा था। शाला भवन में पानी भरने लगा था पर स्कूल-स्कूल खेल जारी था। फिर नई पद्धति। फिर नई योजना। पुनः पुनः प्रयोग। हर असफलता को सफलता निरूपित करने की विलक्षण प्रतिभा के साथ। बस, खेल जारी है।

(यतीश कानूनगो - शिक्षक के रूप में लंबे अनुभव के बाद अब ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, देवास में कार्यरत)

दुनिया का नक्शा

यमुना सनी

कक्षा में ग्लोब तथा नक्शे का उपयोग करते समय क्या आपको ऐसा लगा कि नक्शा ठीक वैसा नहीं है जैसा ग्लोब में दिखाई देता है? क्या होता है जब ग्लोब से कागज़ पर नक्शा बनाया जाता है।

प्रागैतिहासिक काल में जब लिखने का चलन भी नहीं था, तब से ही मनुष्य अपने आसपास के दृश्यों के चित्र बनाने लगा था। अनेक प्रारम्भिक नक्काशियों में न केवल आसपास के भूभागों या नदी-नालों का चित्रण है बल्कि दूर-दराज़ के भूभागों और समूची दुनिया की परिकल्पना का भी चित्रण है। ये परिकल्पनाएं आमतौर पर यह मानकर चलती थीं कि पृथ्वी तश्तरी जैसी चपटी है तथा चारों ओर समुद्र से घिरी हुई है।

चपटी धरती की यह धारणा पन्द्रहवीं सदी तक आते-आते टूटी। उन्हीं दिनों यूरोप के व्यापारी और नाविक पृथ्वी के विभिन्न हिस्सों को खोजने व उनके बारे में सही जानकारी पाने के लिए यात्राएं करने लगे। जैसे-जैसे पृथ्वी और विभिन्न देशों की जानकारी बढ़ी वैसे-वैसे नक्शों का बहु-आयामी उपयोग होने लगा। इनमें अनजाने देशों की खोज से प्राप्त जानकारी, आने-जाने के रास्ते आदि दर्शाए जाने लगे। इसी कारण जब पुर्तगाली नाविक समुद्री यात्राएं करके अपनी जानकारी बढ़ा रहे थे तब वेनिस जैसे उत्तरी इटली के अनेक राज्य अपने जासूसों को पुर्तगाली राजधानी लिस्बन भेजा करते थे ताकि वे वहाँ बन रहे नक्शों की प्रतियाँ चुराकर ला सकें। नक्शा यूरोपीय साम्राज्य निर्माण का एक प्रमुख औज़ार साबित हुआ। आज हम जिस विश्व मानचित्र का बहुत ज़्यादा उपयोग करते है, उससे साम्राज्यवादकालीन

है। ये किसी ने पूछा कि सबकी औलाद सुधारने का ठेका लेने वाले मास्टर की औलाद क्यों बिगड़ रही है? ये तो पूछा कि छात्रवृद्धि अभियान का लक्ष्य पूरा क्यों नहीं हुआ? पर ये नहीं पूछा कि उन आने वालों को बैठाएंगे कहां। ये तो पूछा कि छात्रों को प्रवेश हेतु मना क्यों किया? पर यह नहीं पूछा कि उन्हें पढ़ाएंगे कौन?"

रतिराम के सिर पर चूने वाले पानी ने धार का रूप ग्रहण कर लिया था। वह और उसके पास खड़े साथी पूरे भीग गए थे। कमरे में कहीं सूखी जगह नहीं थी। उसने बरामदे के एक कोने की ओर इशारा करते हुए पूछा, "मास्साब, हम वहां चले जाएं? यहां भीगा है।" मास्साब खुश होकर बोले, "हाँ, हाँ, तुम उस कोने में जाकर अपना लिंक स्कूल खोल लो। अपने साथियों को भी ले जाओ।"

पालक ने सहजता से पूछा, "मास्साब, ये लिंक स्कूल कई होंवे?"

मास्साब ने उतनी ही सहजता से समझाया, "ये आफत भगाओ, मूरख बनाओ योजना है। जब तालाब में उफान अई जाय तो नाको खोली ने पानी निकाल दे ने जिनका खेत में पानी घुसे उनके कई दे कि हम सिंचाई के लिए नहर दे रहे हैं।"

बारिश थमने का नाम ही नहीं लेती थी। नाला उफान पर था। बिजली चमक रही थी।

जर्जर पाठशाला भवन गिरने की घड़ी का इंतज़ार कर रहा था। शाला भवन में पानी भरने लगा था पर स्कूल-स्कूल खेल जारी था। फिर नई पद्धति। फिर नई योजना। पुनः पुनः प्रयोग। हर असफलता को सफलता निरूपित करने की विलक्षण प्रतिभा के साथ। बस, खेल जारी है।

(यतीश - शिक्षक के रूप में लंबे अनुभव के बाद अब शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, देवास में कार्यरत)

दुनिया का नक्शा

● यमुना सनी

कक्षा में ग्लोब तथा नक्शे का उपयोग करते समय क्या आपको ऐसा लगा कि नक्शा ठीक वैसा नहीं है जैसा ग्लोब में दिखाई देता है? क्या होता है जब ग्लोब से कागज़ पर नक्शा बनाया जाता है।

प्रागैतिहासिक काल में जब लिखने का चलन भी नहीं था, तब से ही मनुष्य अपने आसपास के दृश्यों के चित्र बनाने लगा था। अनेक प्रारम्भिक नक्काशियों में न केवल आसपास के भूभागों या नदी-नालों का चित्रण है बल्कि दूर-दराज़ के भूभागों और समूची दुनिया की परिकल्पना का भी चित्रण है। ये परिकल्पनाएं आमतौर पर यह मानकर चलती थीं कि पृथ्वी तश्तरी जैसी चपटी है तथा चारों ओर समुद्र से घिरी हुई है।

चपटी धरती की यह धारणा पन्द्रहवीं सदी तक आते-आते
उन्हीं दिनों यूरोप के व्यापारी
नाविक पृथ्वी के विभिन्न हिस्सों को खोजने व उनके बारे में सही जानकारी पाने के लिए यात्राएं करने लगे। जैसे-जैसे पृथ्वी और विभिन्न देशों की जानकारी बढ़ी वैसे-वैसे नक्शों का
आयामी उपयोग होने लगा।
अनजाने देशों की खोज से प्राप्त जानकारी, आने-जाने के रास्ते आदि दर्शाए जाने लगे। इसी कारण जब पुर्तगाली नाविक समुद्री यात्राएं करके अपनी जानकारी बढ़ा रहे थे तब वेनिस जैसे उत्तरी इटली के अनेक राज्य अपने जासूसों को पुर्तगाली राजधानी लिस्बन भेजा करते थे ताकि वे वहाँ बन रहे नक्शों की प्रतियाँ चुराकर ला सकें। नक्शा यूरोपीय साम्राज्य निर्माण का एक प्रमुख औज़ार साबित हुआ। आज हम जिस विश्व मानचित्र का बहुत ज़्यादा उपयोग करते है, उससे साम्राज्यवादकालीन
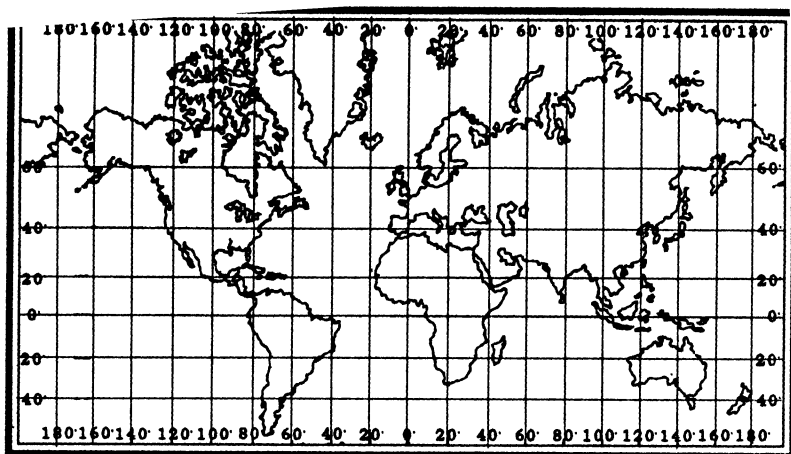
चित्र 1. सामान्य दुनिया का नक्शा

धारणाओं को बल मिलता है। विश्व के उस मानचित्र को देखें जिसका व्यापक उपयोग होता है। (चित्र 1)

इस मानचित्र का उपयोग पाठ्यपुस्तकों, दीवार-मानचित्र, टीवी, आदि में आमतौर पर होता है। इसका इतना ज़्यादा प्रचलन हुआ है कि हमारी दुनिया की धारणा इसके अनुरूप ही ढल गई है।

यह नक्शा सन् 1569 में हॉलैण्ड के नक्शा-नवीस मर्केटर के प्रक्षेपण पर आधारित है। मर्केटर तत्कालीन समुद्री यात्राओं के उपयोग के लिए नक्शा बनाना चाहता था। समुद्री मार्ग तय करने के लिए एक जगह से दूसरी जगह जाते समय दिशा का सही-सही ज्ञान होना आवश्यक था। मर्केटर के नक्शे की खासियत यही थी कि उससे लोग जगहों की दिशा सही-सही मालूम कर सकते थे। लेकिन इस नक्शे में भूभागों के आकार सम्बन्धी अनेक विसंगतियाँ हैं।

उदाहरण के लिए - इस नक्शे में अफ्रीका उत्तरी अमेरिका से छोटा दिखता है, जबकि वास्तव में अफ्रीका सवा गुना बड़ा है। ऐसे कुछ विसंगतियों को अगले पृष्ठ पर आप देख सकते हैं।

परिणामस्वरूप सभी उत्तरी भूभाग अपने वास्तविक आकार से काफी बड़े दिखाई देते हैं। इत्तेफाक से यह गोरों के देश हैं। यहीं से निकलकर उन्होंने खोजी यात्राएं कीं, दूसरे देशों पर अपना आधिपत्य जमाया और अपना साम्राज्य फैलाया।
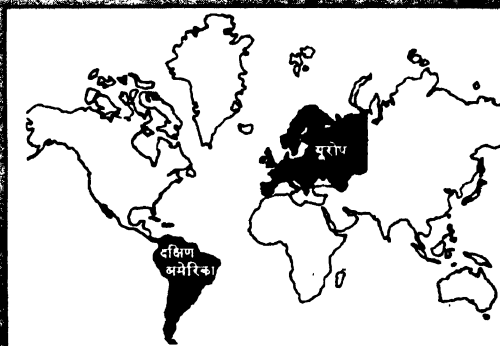
उतर
अमेरिका
अफ्रीका
स्केन्डिनेविया
भारत
यूरोप
दक्षिण
अमेरिका

मर्केटर के नक्शे में जिन देशों को तुलनात्मक रूप से छोटा दर्शाया गया है (जैसे भारतीय उपमहाद्वीप, दक्षिण पूर्वी एशिया, अफ्रीका, मध्य एवं दक्षिण अमेरिका आदि) वे यूरोपीय व अमरीकी साम्राज्य के अधीन रहे हैं। एक ओर इस नक्शे में साम्राज्यवादी देशों के आकार बढ़ा-चढ़ाकर दिखाए गए हैं और दूसरी ओर उपनिवेश के देशों के आकार छोटे।

इस तरह मर्केटर जैसे नक्शे संसार की एक विकृत छवि छोड़ते हैं और इसके साथ-साथ उन विभिन्न देशों व लोगों के तुलनात्मक महत्व की एक खास धारणा भी बनाते हैं। हम मर्केटर के नक्शे के इतने आदी हो गए हैं कि दूसरे नक्शे चाहें वे ज़्यादा सही हों, हमें सही नहीं लगते। उदाहरण के लिए 1973 में प्रस्तुत किया गया अर्नो पीटर्स का मानचित्र लें। (चित्र 2)

पीटर्स का प्रयास था कि हम विश्व के विभिन्न देशों व लोगों को ज़्यादा सही संतुलित नज़रिए से देख पाएं। मर्केटर और पीटर्स के नक्शों की तुलना आप खुद करके इस अंतर को पहचान सकते हैं। इसमें अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, दक्षिण एशिया आदि के आकार पर
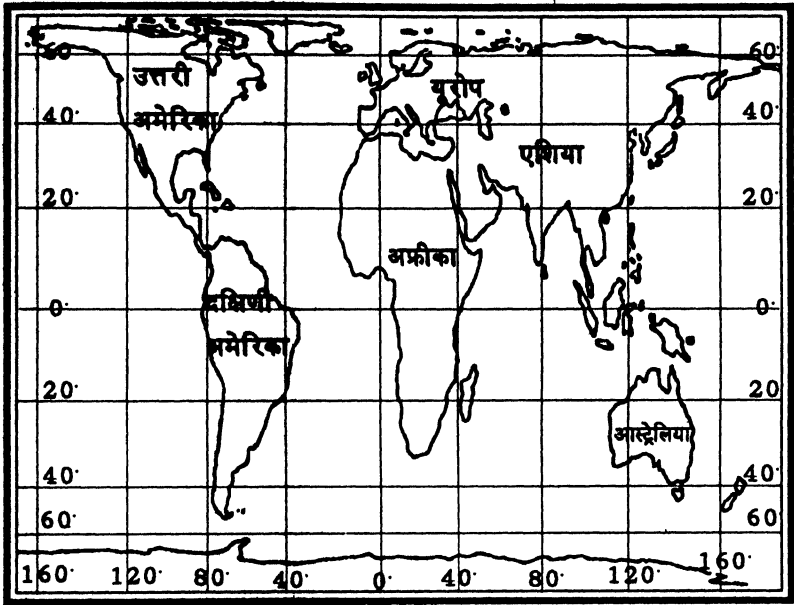
चित्र 2. अर्नो पीटर्स का बनाया नक्शा

गौर करें। इस (पीटर्स) मानचित्र में सभी महाद्वीपों के आकार (साइज़) उसी अनुपात में हैं जिस अनुपात में ग्लोब पर होते हैं। अतः अलग-अलग देशों के क्षेत्रफल की तुलना आप सही ढंग से कर सकते हैं। मर्केटर के नक्शे में इस तरह की तुलना करने पर गलत निष्कर्ष निकलेंगे। इस संदर्भ में यह प्रश्न स्वाभाविक होगा कि आखिर मर्केटर ने ऐसा विकृति युक्त नक्शा कैसे बनाया?

विश्व के नक्शे

नक्शा बनाने में प्रमुख समस्या यह है कि तीन आयामी गोलाकार ग्लोब को सपाट दो आयामी कागज़ पर कैसे उतारें। इसके लिए पुराने समय में कांच के ग्लोब की मदद ली जाती थी। इनकी सतह पर भूखंडों की आकृतियों को उकेर दिया जाता था। फिर ग्लोब के बीच में बत्ती जलाई जाती थी। बाहर किसी सतह पर उसमें उकेरे हुए भू-भाग की परछाई पड़ती। जिस सतह

पर यह परछाई पड़ती वहां इन आकृतियों को उतारा जाता था। अलग-अलग आकृति के कागज़ को सतह के रूप में उपयोग किया जा सकता था - बेलनाकार, शंक्वाकार, समतल कागज़ आदि। (चित्र 3)

भू-भाग की आकृतियों को बनाने के बाद इन कागज़ों को खोलकर फैलाया जा सकता था। ताकि सपाट नक्शा बने। यही तरीका था गोलाकार पृथ्वी का नक्शा सपाट कागज़ पर बनाने का। नीचे तीनों तरह की सतहों से प्राप्त नक्शे दिखाए गए हैं। आप देख सकते हैं कि प्रत्येक नक्शा दूसरे नक्शों से काफी भिन्नता लिए हुए है।

गोलाकार पृथ्वी की सतह पर बनी आकृतियों की छवि सपाट कागज़ पर उतारने को मानचित्र-प्रक्षेपण कहते हैं। आजकल इस काम के लिए काँच के बने ग्लोब का उपयोग नहीं होता। इसके बदले में ग्लोब पर बने संदर्भ जाल (रेफरेन्स ग्रिड) को सपाट कागज़ पर उतारा जाता है, जिसके आधार पर नक्शे बनाए जा सकते हैं।

चित्र 3 : विभिन्न सतहों पर बने नक्शे

क) बेलनाकार कागज़ पर
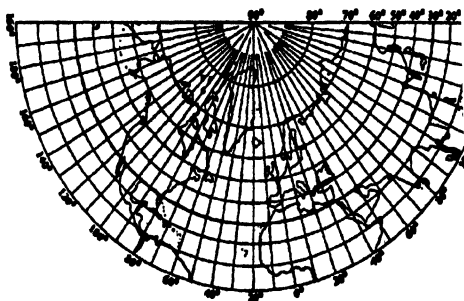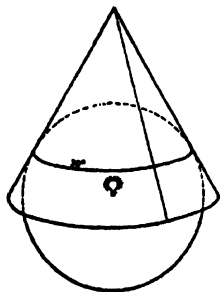
'संदर्भ ग्रिड'

हम सब ग्राफ कागज़ के ग्रिड (जाल) से तो परिचित होंगे; इसमें दो संदर्भ रेखाएं x तथा y होती हैं। जो एक ही बिन्दु '0' से शुरू होती हैं। ग्रिड के अंदर किसी बिन्दु की स्थिति को इन दो संदर्भ लाईनों से दूरी के हिसाब से बताया जाता है। (चित्र 4) जैसे इस चित्र में जगह 'क' की स्थिति आधार बिन्दु '0' से 30 इकाई पूर्व और 20 इकाई उत्तर पर है। नक्शों में इस प्रकार के ग्रिड बनाने से किसी स्थान की स्थिति आसानी से इन लकीरों की मदद से मालूम की जा सकती है।
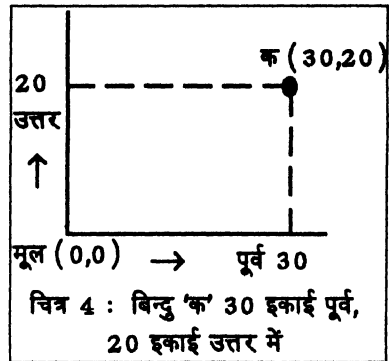
चित्र 4 : बिन्दु 'क' 30 इकाई पूर्व, 20 इकाई उत्तर में
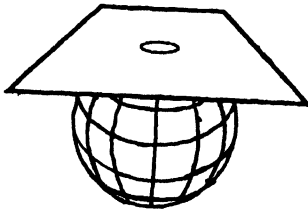
ग) सपाट सतह पर

ग्राफ पर सभी चौकोन समान क्षेत्रफल के होते हैं। यह केवल समतल कागज़ पर संभव है; गोलाकार ग्लोब पर नहीं। ग्लोब पर जगहों की स्थिति दर्शाने के लिए एक उचित विधि की ज़रूरत थी जो गोलाकार सतह पर खरी उतरे। इसके लिए दो तरह की घुमावदार लकीरें ग्लोब पर खींची जाती हैं। यही अक्षांश व देशान्तर रेखाएं हैं। ग्लोब पर किसी भी स्थान की स्थिति को इन लकीरों के संदर्भ में बताया जाता है। किसी भी स्थान की स्थिति को वहाँ से गुज़रने वाली इन दो रेखाओं की मदद से दर्शाया जाता है।
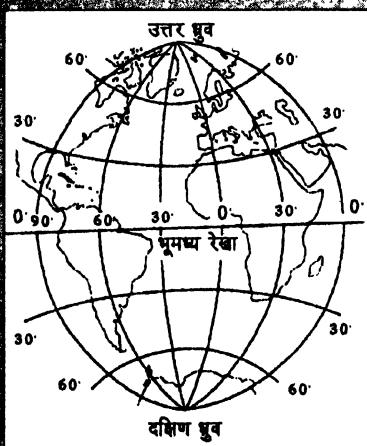
नक्शा - नवीसी में अक्षांश - देशांश रेखाएं

मानचित्र प्रक्षेपण का केंद्रीय मुद्दा यह है कि ग्लोब पर बनी अक्षांश देशांश रेखाओं के जाल को समतल कागज़ पर कैसे उतारा जाए। एक बार हम इस जाल को कागज़ पर उतार लें तो उसके आधार पर भूभागों को दर्शाया जा सकता है। नक्शे में उन्हें उतारने के तीन बुनियादी तरीके हैं - बेलनाकार, शंकु आकार और समतल। इनके बीच के अंतर आप चित्र 3 में देख सकते हैं। इनमें आप तीन अलग-अलग तरह के ग्रिड देख सकते हैं। अलग-अलग प्रक्षेपण से अलग-अलग तरह के नक्शे कैसे बन जाते हैं इनसे स्पष्ट हो जाता है।

चाहे वह बेलन हो या शंकु हो या समतल, तीनों ग्लोब के किसी एक खास हिस्से को ही छूते हैं (देखिए चित्र 3)। उसी वृत्त पर वह नक्शा ग्लोब के अनुरूप बनेगा। उस वृत्त से दूर जाने पर नक्शे में विकृतियां बढ़ती जाएंगी। बेलन भूमध्य रेखा को छूता है तो इस प्रक्षेपण में भूमध्यरेखीय प्रदेश ही सही अनुपात में बनेंगे। ध्रुव के पास अधिक विकृति होगी। शंकु लगभग 40 डिग्री अक्षांश को छूता है तो वह हिस्सा ग्लोब के अनुरूप होगा। सपाट सतह पर बनाया नक्शा ध्रुव पर ग्लोब को छूता है। उसमें ध्रुवीय हिस्सा सही बन सकेगा।

नक्शे में विकृतियां

आप इस बात को समझ रहे होंगे कि समतल कागज़ पर बना नक्शा किसी न किसी रूप में विकृत होगा ही। अब सवाल है कि आप किस काम के लिए नक्शा बना रहे हैं और उसके लिए कौन-सी विकृति आपको स्वीकार्य है। अपनी-अपनी ज़रूरतों के अनुसार इन तीनों प्रक्षेपणों को तरह-तरह से संशोधित करके विश्व के नक्शे बनाए जाते हैं।

इनमें हर एक की अपनी उपयोगिता है और अपनी सीमाएं हैं। कुछ नक्शे सही क्षेत्रफल दर्शाते हैं, तो कुछ सही आकृति बताते हैं। कुछ सही दिशा बताते हैं, तो कुछ सही दूरियां बताते हैं। इन सब गुणों को किसी एक ही नक्शे में समाहित कर पाना संभव नहीं हो पाया है। वस्तुस्थिति यह है कि गोले की बातों को समतल कागज़ पर सही-सही दर्शाना असंभव है। अतः पृथ्वी का सही-सही चित्रण ग्लोब पर ही देखा जा सकता है, नक्शों में नहीं।

संतरे के छिलके को एकदम सपाट बनाने की कोशिश करें तो आपको यह बात समझ में आएगी। आज 200 से भी अधिक मानचित्र प्रक्षेपण बनाए जा चुके है। इससे कम-से-कम यह तो स्पष्ट होता है कि प्रत्येक मानचित्र की कोई न कोई सीमा ज़रूर है।

मर्केटर नक्शे की विकृतियां

अब हम लौटते हैं मर्केटर के नक्शे पर। यह नक्शा बेलनाकार प्रक्षेपण का ही बदला हुआ एक रूप है। हमने पहले ही बताया था कि मर्केटर समुद्री यात्रा के उपयोग के लिए नक्शा बना रहा था। वह एक जगह से दूसरी जगह जाने की सही दिशा बताना चाहता था। साथ ही वह चाहता था कि भूखण्डों की आकृतियां वैसी ही दिखें जैसी वे वास्तव में हैं।

समानान्तर देशांश

हम जानते हैं कि ग्लोब पर देशांश रेखाएं ध्रुवों पर जाकर मिलती हैं। यानी वे समानान्तर नहीं हैं। भूमध्य रेखा पर दो देशांश रेखाओं के बीच की दूरी सबसे अधिक होती है। बेलनाकार प्रक्षेपण में देशांश रेखाएं समानान्तर हो जाती हैं। मर्केटर ने भी अपने नक्शे में देशांश रेखाओं को समानान्तर दिखाया। (देखिए चित्र 1) इस प्रकार दो देशांशों के बीच की दूरी सभी स्थानों में एक सी हो गई। ध्रुव पर भी और भूमध्य रेखा पर भी। यानी उत्तरी ध्रुव जो वास्तव में मात्र एक बिन्दु है नक्शे में भूमध्य रेखा जितनी लंबाई वाली रेखा हो गया। इस तरह नक्शे में हम जैसे-जैसे भूमध्य रेखा से उत्तर या दक्षिण दिशा में बढ़ते हैं विकृति बढ़ती जाती है। लेकिन जैसे आप खुद जांच कर देख सकते हैं सारी जगहें अपनी सही दिशा में बनी हैं। मर्केटर के नक्शे में बने भारत से जापान की दिशा की तुलना चित्र-3 के शंकु आकार प्रक्षेपण (ख) और सपाट सतह नक्शे (ग) से कीजिए।

चूंकि ध्रुवों की ओर देशांश रेखाओं के बीच की दूरी बढ़ती जाती है इसलिए वहां के भूखण्डों की आकृति पूरब-पश्चिम दिशा में खिंचकर बढ़ जाती है। इस कारण ध्रुवों के पास आकृतियां वैसी नहीं बनेंगी जैसी कि वे वास्तव में हैं। अब नक्शे में उत्तरी अक्षांशों में भूखण्ड बहुत ज़्यादा चौड़े हो रहे थे। (देखिए चित्र 5) चूंकि नक्शे में देशांशों के बीच की दूरी बढ़ रही थी इसलिए मर्केटर ने इस विकृति को ठीक करने के लिए उतनी ही मात्रा में अक्षांशों के बीच की दूरी भी बढ़ा दी।

वास्तव में ग्लोब पर सभी अक्षांश रेखाओं के बीच की दूरी एक सी होती है। लेकिन जैसे-जैसे मर्केटर नक्शे में हम भूमध्य रेखा से ध्रुवों की तरफ बढ़ते हैं अक्षांशों के बीच की दूरी भी बढ़ती जाती है (चित्र 6)। इस प्रकार प्रत्येक भूखंड की लंबाई चौड़ाई का अनुपात वही रहा जैसा ग्लोब पर है। भूखंडों की आकृतियां भी सही बनीं लेकिन ध्रुवों के पास उनका आकार (साईज़) खूब बढ़ गया। केवल भूमध्य रेखा के पास नक्शा सही रहा।
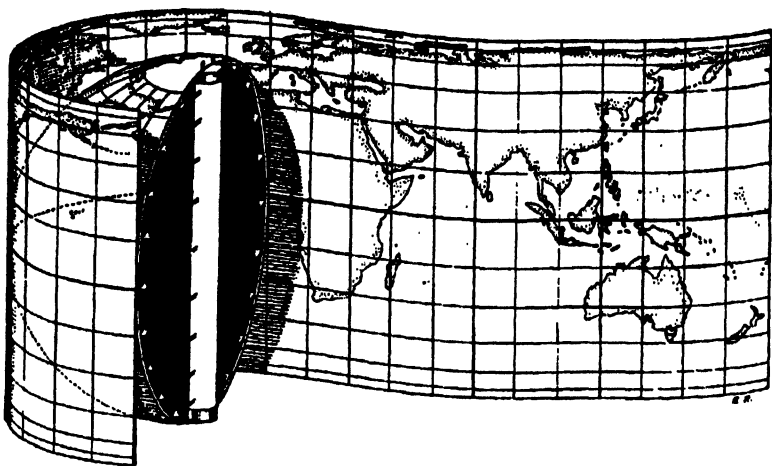
चित्र 5 : बेलनाकार प्रक्षेपण में देशांश रेखाएं समांतर बनाए जाते हैं। इस कारण ध्रुवों के पास आकृतियां पूरब और पश्चिम की ओर खिंच जाती हैं। इस बात पर गौर करें कि ग्लोब के अंदर की रोशनी एक बिंदु से नहीं बल्कि एक पूरी रेखा से निकलती है।
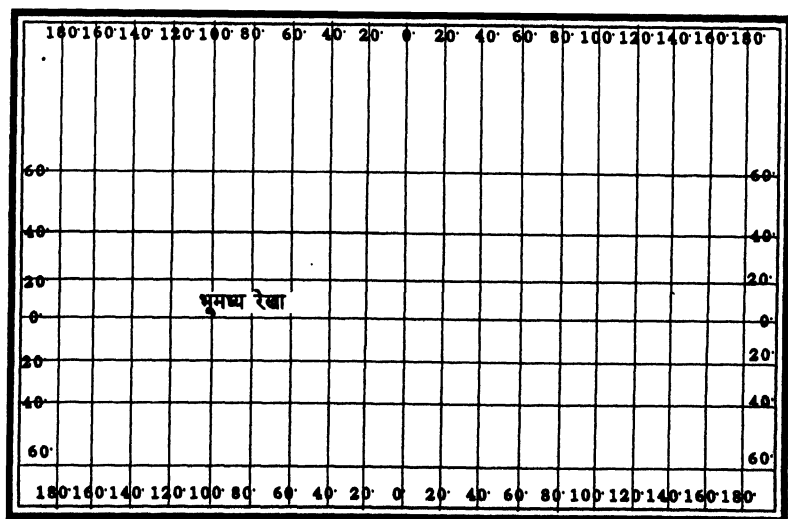
चित्र 6 : मर्केटर प्रक्षेप का संदर्भ ग्रिड

अर्नो पीटर्स जैसे नक्शा-नवीसों ने दुनिया के पारंपरिक नक्शों के क्षेत्रफल की विसंगतियों की ओर ध्यान खींचा है। आप देखेंगे की पीटर्स के नक्शे में भी देशांश रेखाएं समानान्तर बनी हैं। उसके कारण उत्तरी भूखंडों का क्षेत्रफल जो बढ़ा उसे ठीक करने के लिए पीटर्स ने उत्तरी अक्षांशों के बीच की दूरी को उसी अनुपात में कम किया। (मर्केटर ने आकृति ठीक करने के लिए अक्षांशों के बीच की दूरी बढ़ाई थी) इस प्रकार महाद्वीपों के क्षेत्रफल सही अनुपात में बने। अतः इस नक्शे में अलग-अलग देशों के क्षेत्रफल की सही तुलना की जा सकती है लेकिन इस प्रक्रिया में कुछ दूसरी विकृतियां इस नक्शे में आ गईं। इस नक्शे में महाद्वीपों की आकृतियां विकृत हो गईं। जो भी हो अर्नो पीटर्स जैसे नक्शा-नवीसों के प्रयास से हमें पारंपरिक नक्शों के द्वारा छोड़ी गई दुनिया की छवि पर पुनर्विचार करने का अवसर मिला।

(यमुना सनी - एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से संबद्ध, होशंगाबाद फील्ड सेंटर में कार्यरत)

दुनिया उल्टी सी...

हम बच्चों को लगातार यही बताते हैं कि नक्शे में हमेशा उत्तर दिशा ऊपर की ओर होती है। लेकिन ऐसा होना ज़रूरी तो नहीं है! यह भी एक परंपरा है जिसके पीछे राजनैतिक मतलब छिपे हैं। मध्यकालीन नक्शा-नवीस जब नक्शा बनाते थे तो वे दक्षिण को ऊपर की तरफ दिखाते थे! यहां अरब नक्शा-नवीस अल इदरिसी द्वारा सन् 1154 में बनाया गया नक्शा देखिए। इसमें दुनिया कुछ उल्टी सी दिखती है, है .. न!

ऑक्सीज़न से बनी ओजोन

सवाल : ओज़ोन की परत किन गैसों से मिलकर बनी है। यह परत सूर्य से आने वाली ऐसी किरणों को कैसे रोकती है जो हमें नुकसान पहुंचा सकती हैं?

जवाब : यह तो शायद सबको मालूम होगा कि हीरा और ग्रेफाइट दोनों कार्बन के ही अलग-अलग रूप हैं। इसी तरह ओज़ोन और ऑक्सीजन, दोनों ऑक्सीजन के ही रूप हैं। ओज़ोन भी एक तरह की ऑक्सीजन है। ऑक्सीजन में दो परमाणु होते हैं और हम उसे रसायन विज्ञान की भाषा में O_2 संकेत से लिखते हैं। ओज़ोन में ऑक्सीजन के तीन परमाणु होते हैं और उसे O_3 संकेत से लिखा जाता है। ऑक्सीजन का ही एक रूप होते हुए भी ओज़ोन के गुणधर्म ऑक्सीजन से बहुत फर्क हैं – यह तीखी गंधवाली, नीले रंग की गैस है। ओज़ोन विषैली गैस है जो साँस के साथ फेफड़ों तक पहुँच जाए तो बेचैनी पैदा करती है।

ओज़ोन गैस वायुमंडल के समताप मंडल नामक हिस्से में बनती है। पृथ्वी के वायुमंडल को विभिन्न हिस्सों में बांटा गया है। पृथ्वी की सतह से 10 किलोमीटर से 50 किलोमीटर तक के हिस्से को समतापमंडल कहते हैं। इसे
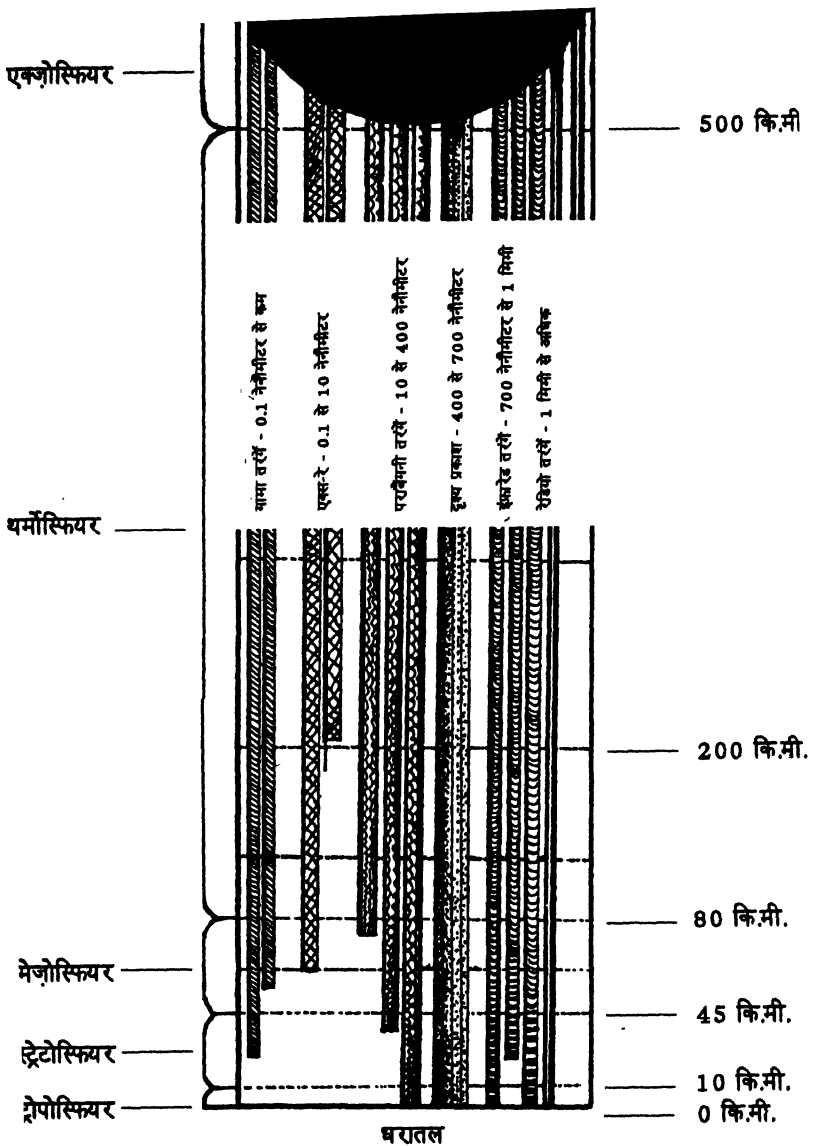
सूर्य का प्रकाश वायुमंडल के विभिन्न स्तरों को पार कर हम तक पहुंचता है। इस प्रकाश में कई तरह की तरंगें होती हैं लेकिन सभी हम तक नहीं पहुंचतीं। वायुमंडल के विभिन्न हिस्से उन्हें वहीं रोक लेते हैं। रेखाचित्र में वही स्थितियां दिखाई गई हैं।

समतापमंडल इसलिए कहते हैं क्योंकि इस पूरे हिस्से में तापमान एक समान रहता है। वायुमंडल के विभिन्न भागों को चित्र में दिखाया गया है। समताप मंडल में ओज़ोन के अलावा और भी गैसें होती हैं। ओज़ोन किसी परत के रूप में नहीं पाई जाती बल्कि यह स्वतंत्र रूप से समताप मंडल में दस से पचास किलोमीटर की ऊंचाई के बीच होती है।

ओज़ोन के बनने की प्रक्रिया भी काफी रोचक है। सूर्य से पृथ्वी तक ऊर्जा विद्युत-चुम्बकीय तरंगों के ज़रिये पहुँचती है। उसमें अलग-अलग तरंग लम्बाई की किरणें होती हैं। यानी प्रकाश के अलावा और भी बहुत तरह की किरणें होती हैं। जैसे - पराबैंगनी, इनफ्रारेड, क्ष किरणें, गामा किरणें, रेडियो तरंगें आदि। तरंग लम्बाई के आधार पर इन्हें विभिन्न समूहों में बांटा गया है।

समतापमंडल में ओज़ोन गैस पराबैंगनी किरणों के कारण ही बनती है। अब देखते हैं कि इन पराबैंगनी तरंगों से ओज़ोन बनती कैसे है और ओज़ोन कैसे पराबैंगनी तरंगों को धरती तक आने से रोकती है।

सूर्य प्रकाश के साथ आने वाली वे पराबैंगनी तरंगें जिनकी तरंग लम्बाई 242 नैनोमीटर (242×10^{-9} मीटर) से कम है, समतापमंडल में ऑक्सीजन को जोड़कर ओज़ोन बनाती हैं यानी दो परमाणु वाली ऑक्सीजन तीन परमाणु वाली ओज़ोन में बदल जाती है। इस बात को इस तरह भी कह सकते हैं –

1ऑक्सीजन अणु + 1ऑक्सीजन परमाणु (पराबैंगनी किरणों की उपस्थिति में) =1ओज़ोन अणु

इस तरह ओज़ोन लगातार बनती रहती है। चूंकि इन पराबैंगनी तरंगों की ऊर्जा ओज़ोन बनाने में खर्च हो जाती है इसलिए इन कम तरंग लम्बाई वाली पराबैंगनी किरणों की घातकता खत्म हो जाती है।

ऊपर बताई गई प्रक्रिया से बनी ओज़ोन सूर्य प्रकाश के साथ आने वाली उन पराबैंगनी तरंगों को सोख लेती है जिनकी तरंग लम्बाई 242 से 290 नैनोमीटर तक होती है। अब होता यह है कि इन पराबैंगनी किरणों को सोखकर ओज़ोन टूटकर ऑक्सीजन बनाती है। दूसरे शब्दों में कहें तो –

एक ओज़ोन अणु (पराबैंगनी किरणों की उपस्थिति में)= 1ऑक्सीजन अणु + 1ऑक्सीजन परमाणु

इस तरह पराबैंगनी किरणों की ऊर्जा ओज़ोन से ऑक्सीजन बनाने में खर्च हो जाती है और ज़्यादा तरंग लम्बाई वाली पराबैंगनी तरंगों की घातकता खत्म हो जाती है।

यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि जिन पराबैंगनी तरंगों की लम्बाई 242 से 290 नैनोमीटर है वे हम सब के लिए घातक हैं। इनके अलावा अन्य पराबैंगनी तरंगों में से कुछ तरंगें धरती तक पहुँचती हैं लेकिन वे हमारे लिए हानिकारक नहीं हैं। इस तरह पराबैंगनी तरंगों की सारी ऊर्जा ऑक्सीजन से ओज़ोन बनाने तथा ओज़ोन से ऑक्सीजन बनाने में ही खत्म हो जाती है। और हमारे लिए हानिकारक तरंगें धरती तक नहीं पहुँच पातीं।

अब आते हैं तुम्हारे अगले सवाल पर कि पराबैंगनी तरंगों से क्या नुकसान हो सकते हैं। पराबैंगनी तरंगों के शरीर तक पहुँचने के कारण खसरा, माता, चमड़ी का झुलसना तथा कैंसर जैसे खतरनाक रोग हो सकते हैं। आँखों से सम्बंधित विभिन्न रोग भी होते हैं। यह तरंगें सिर्फ मनुष्य के लिए ही हानिकारक हैं ऐसा नहीं है। इन तरंगों का प्रभाव पेड़-पौधों पर भी पड़ता है। अभी इस बात को जानने के लिए प्रयोग चल रहे हैं कि पराबैंगनी तरंगों का पेड़-पौधों, थल और जल में रहने वाले जीव-जन्तुओं पर क्या प्रभाव पड़ता है। अभी तक किए प्रयोगों से यही बात सामने आई है कि इन तरंगों से पौधों की वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया पर भी पराबैंगनी तरंगें प्रभाव डालती हैं। खैर, सच जो भी सामने आए लेकिन इतनी बात तो तय है कि पराबैंगनी तरंगें हमारे लिए घातक हैं।

पिछले कुछ वर्षों से हम सभी पढ़-सुन रहे हैं कि अंटार्कटिका के ऊपर ओज़ोन परत में छेद पड़ गया है। (एक बार फिर याद दिला दें कि परत यानी दूध पर मलाई की परत जैसी परत मत मान बैठना।) छेद का मतलब है कि अंटार्कटिका के ऊपर ओज़ोन बहुत कम रह गई है और घातक पराबैंगनी तरंगें (242 से 290 नैनोमीटर वाली) अंटार्कटिका में ज़मीनी सतह तक आ रही हैं।

समताप मंडल में ओज़ोन की मात्रा के कम होने के कई कारण बताए गए हैं। इनमें से एक प्रमुख कारण है सी.एफ.सी. नामक रसायन का बहुत ज़्यादा उपयोग होना। सी.एफ.सी. (क्लोरो फ्लोरो कार्बन) नामक रसायन का उपयोग फ्रिज की गैस बनाने, पेंट बनाने, फोम तथा कीटनाशकों के निर्माण आदि में किया जाता है। यह सी. एफ. सी. नामक रसायन जिसमें क्लोरीन गैस भी होती है वायु मंडल में लम्बे समय तक बना रहता है और पराबैंगनी तरंगों के सम्पर्क में आने पर क्लोरीन के परमाणु वायुमंडल में छोड़ देता है। अब यह क्लोरीन ओज़ोन से क्रिया करके क्लोरीन मोनोऑक्साइड
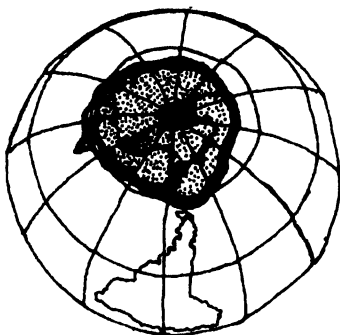
ओज़ोन छेद : अंटार्कटिका (दक्षिणी ध्रुव) के ऊपर बने आज़ोन छेद का एक रेखाचित्र। इसमें दक्षिणी अमेरिका भी दिखाया गया है।

और ऑक्सीजन बनाती है। क्लोरीन मोनोऑक्साइड एक अस्थिर किस्म का अणु है और यह बहुत जल्दी क्लोरीन के एक परमाणु के रूप में मुक्त हो जाता है। इस रासायनिक क्रिया को इस तरह भी बता सकते हैं –

ओज़ोन + क्लोरीन= ऑक्सीजन + क्लोरीन मोनोऑक्साइड

क्लोरीन मोनोऑक्साइड अस्थिर होने के कारण जल्दी ही फिर से क्लोरीन में बदल जाता है और ओज़ोन के किसी दूसरे परमाणु से क्रिया करके फिर से ओज़ोन को ऑक्सीजन में परिवर्तित कर देता है। इस तरह यह क्रम चलता रहता है और क्लोरीन का एक परमाणु ओज़ोन के तकरीबन एक लाख अणुओं को नष्ट कर देता है। इस रासायनिक क्रिया के लिए पृथ्वी के ध्रुवीय प्रदेशों का ठण्डा और ज़्यादा दाब वाला वातावरण काफी अनुकूल साबित हुआ है। इस कारण ओज़ोन अणुओं की संख्या में कमी भी सबसे पहले अंटार्कटिका और आर्कटिक प्रदेशों में देखी गई। और ओज़ोन अणुओं की संख्या कम होने से अंटार्कटिका में सूर्य प्रकाश के साथ घातक पराबैंगनी तरंगें भी ज़मीन तक आ रही हैं।

समस्या गम्भीर है इसलिए दुनिया के सभी देशों ने फैसला किया है कि आने वाले कुछ वर्षों में सभी देश सी. एफ. सी. रसायन का उपयोग धीरे-धीरे कम करेंगे और दूसरा रसायन उपयोग में लाएंगे जो ओज़ोन को प्रभावित न करे।

मेहराबदार पुल को देखो समझ जाओगे

सवाल : सेना में भर्ती के समय पैर में मेहराब क्यों देखी जाती है?

जवाब : आओ सबसे पहले मेहराब को समझते हैं। अपने गांव, शहर के आसपास सड़कों पर बनी पुलियाओं, पुराने पुलों को देखो। इनमें से कई की संरचना मेहराबदार होगी। भला पुल पुलियाओं में मेहराब का क्या काम? दरअसल इन पर से खूब वज़नी सामान लादे भारी-भरकम गाड़ियां
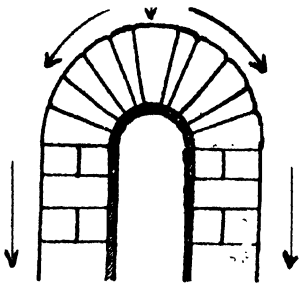
गुज़रती हैं - इसलिए इनका मज़बूत होना बेहद ज़रूरी है। मेहराब इसे यही मज़बूती देती है। कैसे?

इसे चित्र से समझते हैं। मेहराब में जो भी पत्थर लगे रहते हैं वे ऊपर से चौड़े और नीचे से संकरे होते हैं। जब वज़न या बल ऊपर वाले पत्थर पर पड़ता है तो आकार के कारण यह अपने नीचे वाले दो पत्थरों को दबाता है। संरचना के कारण पत्थर एक-दूसरे को दबा तो सकते हैं लेकिन गिर नहीं सकते - ये दो पत्थर अगले पत्थरों को दबाते हैं। यह प्रक्रिया चलती रहती है और इस तरह बीच के पत्थर पर एक सीध में पड़ने वाला वज़न या बल मेहराब के दो खंभों पर बराबर-बराबर बंट जाता है - कुल मिलाकर कहें तो मेहराब का काम है एक सीध में पड़ने वाले वज़न या बल को - जिसके नीचे कोई टेक नहीं है - दूर स्थित दो पायों पर दो बराबर भागों में बांट देना।

ये तो हुई मेहराब की बात, अब अपने पैरों को देखते हैं। पैर यानी पूरे शरीर का वज़न ढोने वाले अंग - इनका मज़बूत होना बेहद ज़रूरी है। मेहराब इन्हें मज़बूत बनाती है, पूरे वज़न को पंजों और एड़ियों के बीच बांटकर - बिल्कुल पुल की तरह। इस तरह शरीर का वज़न चार कोनों पर बंटने से किसी एक हिस्से पर ही पूरा वज़न नहीं पड़ता - हमारे खड़े होने का एक बड़ा आधार तैयार होता है - और संतुलन बना रहता है।

अब चलने की प्रक्रिया को समझते हैं - यह गिर-गिरकर संभलने जैसी बात है। जिसमें शरीर आगे आता है - एक कदम आगे बढ़ने पर वज़न एक पैर के पंजे पर और दूसरे पैर की एड़ी पर रहता है तो अगले कदम पर पहले
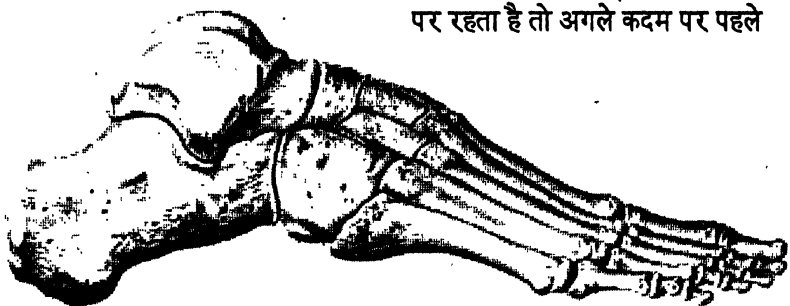
पैर की एड़ी और दूसरे पैर के पंजे पर चला जाता है - इस तरह वज़न लगातार एड़ियों से पंजों और पंजों से एड़ियों पर बदलता रहता है। इस दौरान पैर को लगातार झटके सहने पड़ते हैं - मेहराब इन झटकों को सहने का काम करती है - किसी गाड़ी के शॉक-अप की तरह, जिसमें सड़क से लगने वाले झटके सवार तक नहीं पहुंचते।

अब समझते हैं उन दिक्कतों को जो सपाट तलुए वाले लोगों को हो सकती हैं। मेहराब न होने से उनका वज़न एड़ियों और पंजों पर नहीं बंटेगा, बल्कि तलुए के किसी एक बिन्दु पर केंद्रित होगा (शायद टखने की हड्डी के नीचे वाले बिन्दु पर)।

यानी उनका खड़ा होने का आधार भी बहुत छोटा होगा - इसलिए धक्का आदि लगने पर उन्हें तुरंत संतुलन बनाने में दिक्कत होती है। क्योंकि चार बिन्दुओं से बने एक बड़े आधार पर टिकना आसान है, दो बिन्दुओं पर कम। दूसरा मेहराब न होने से उन्हें चलने दौड़ने के समय दिक्कत होगी। इस प्रक्रिया में जो झटके लगेंगे उनका असर पूरे पैर पर पड़ेगा और जल्दी ही पैर दर्द करने लगेंगे। यह सब पढ़कर कहीं ऐसा तो नहीं लगने लगा कि मेहराब न होना अपंगता है - बिल्कुल नहीं। रोज़मर्रा की दौड़ भाग में उन्हें कोई परेशानी नहीं होती। हां, ज़रा लंबा चलना हो, दौड़ना हो या फिर बहुत सारी सीढ़ियां चढ़ना हो तो थोड़ी दिक्कत हो सकती है।
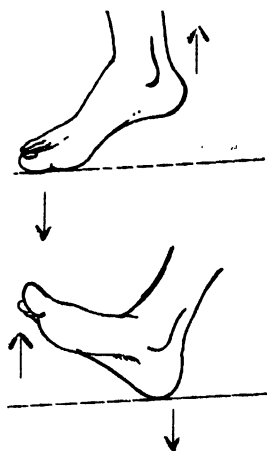
जहां तक सेना में भर्ती का सवाल है तो उन्हें तो पूरी तरह चुस्त-दुरुस्त लोग चाहिए। जो ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर कूदते फांदते चल सकें, ज़रूरत हो तो तेज़ दौड़ सकें - तो फिटनेस के लिहाज़ से मेहराब की जांच बिल्कुल ऐसी ही है जैसे कि सेना में भर्ती के समय सीने की चौड़ाई, ऊंचाई, आंख आदि की जांच।

इस बार का सवाल

दूध और पानी दोनों तरल पदार्थ हैं मगर हम जब दूध को उबालते हैं तो वह उफन जाता है। और गिरने लगता है किंतु पानी को उबालें तो वह क्यों नहीं उफनता?

प्रभाकांत भारद्वाज, जवाहर पारा, बालोद, ज़िला - दुर्ग, म.प्र.

ज़रा सिर तो खुजलाइए

दूसरे अंक में हमने आपसे तीन सवाल पूछे थे।

1. घर से स्कूल तक कम-से-कम समय में जाने के लिए आप कौन-सा विकल्प पसंद करेंगे और क्यों?
   अ. आधी दूरी तक चलकर जाना और आधी दूरी तक दौड़कर जाना।
   ब. आधा समय चलकर जाना और आधा समय दौड़कर रास्ता तय करना।
2. एक माली था जिसे पेड़-पौधे को विभिन्न आकृतियों में लगाने में मज़ा आता था। एक बार उसने गुलाब के दस पौधे इस तरह लगाए कि कुल कतारें पांच बनीं और हर कतार में चार पौधे थे। आप भी वैसा ही बाग लगाना चाहेंगे? तो सोचिए उसने पौधे कैसे लगाए होंगे।
3. मैं भोपाल से होशंगाबाद सड़क के किनारे-किनारे समान गति से चल रहा हूं। चलते-चलते मैंने देखा कि मेरे पीछे से यानी भोपाल की ओर से हर बारह मिनट बाद एक ट्रक या बस आती है। और मेरे सामने से यानी होशंगाबाद की ओर से हर चार मिनट बाद एक ट्रक या बस आती है। यदि ट्रक या बस प्रत्येक घंटे में समान दूरी तय करते हों तो भोपाल और होशंगाबाद से कितने-कितने मिनटों के अंतराल के बाद बस या ट्रक छोड़ी जा रही है?

एस. एन. साहू (शिक्षक, शा. आर.एन.ए.उ.मा.विद्यालय पिपरिया, ज़िला होशंगाबाद, म.प्र.) ने पहले दो सवालों के सही जवाब दिए हैं - उनके भेजे हल यहां दिए जा रहे हैं।

घर से स्कूल तक कम समय में जाने के लिए मैं विकल्प 'ब' (आधा समय चलकर जाना और आधा समय दौड़कर रास्ता तय करना) पसंद करूँगा क्योंकि-

माना घर से स्कूल तक की दूरी 1200 मीटर है। मेरी पैदल चाल 100 मीटर प्रति मिनट और दौड़ की चाल 500 मीटर प्रति मिनट है। अब विकल्प 'अ' के अनुसार देखें - जिसमें मैं आधी दूरी चलकर और आधी दूरी दौड़कर तय करता हूँ तो—

600 मीटर पैदल चलने में लगा समय 600/100 = 6 मिनट

और 600 मीटर दौड़कर लगा समय 600/500 = 1 मिनट 12 सेकेंड

यानी कुल 7 मिनट 12 सेकेंड समय लगा।

अब विकल्प 'ब' को देखते हैं – मैं आधा समय दौड़कर और आधा समय पैदल चलकर रास्ता तय करता हूँ तो–

2 मिनट में पैदल चलकर तय की दूरी : 2 X 100 = 200 मीटर
2 मिनट में दौड़कर तय की दूरी : 2 X 500 = 1000 मीटर

यानी रास्ता तय करने में कुल 4 मिनट लगेंगे। जबकि विकल्प 'अ' में मुझे कुल 7 मिनट और 12 सेकेंड का समय लगता है। इसलिए मैं विकल्प 'ब' पसंद करूँगा।

हमें लगता है कि इस सवाल को सिर्फ तर्क इस्तेमाल करते हुए भी हल किया जा सकता है -

आधी दूरी पैदल चलकर और आधी दूरी दौड़कर तय करने वाली स्थिति में हम दौड़कर और पैदल चलने में बराबर-बराबर दूरी तय करते हैं। जबकि एक निश्चित समय तक दौड़ने और पैदल चलने पर हम दौड़ते हुए ज़्यादा दूरी तय करते हैं। यानी आधा समय दौड़ते हुए हम आधे से ज़्यादा रास्ता तय कर लेते हैं और पैदल चलकर तय किया जाने वाला रास्ता काफी कम बचता है।

निष्कर्ष रूप में हम देखते हैं कि विकल्प 'ब' में हम काफी कम रास्ता पैदल चलकर तय करते हैं। इसलिए घर से स्कूल तक का रास्ता जल्दी तय करेंगे।

दूसरे सवाल का उत्तर – माली ने 10 गुलाब के पौधे कुछ इस तरह लगाए कि पाँच कतारें भी बन गईं और हर कतार में चार पौधे भी थे –(इस सवाल का सही जवाब मेधा एवं नेहा दुबे, केन्द्रीय विद्यालय क्रमांक - 2, इटारसी, ज़िला होशंगाबाद ने भी भेजा है।)
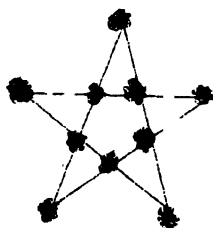
और अब तीसरे सवाल का हल - जिसका जवाब कोई भी नहीं दे पाया।

मान लें कि भोपाल और होशंगाबाद दोनों तरफ से x मिनट के अंतराल पर बसें छोड़ी जा रही हैं। सबसे पहले बात करते हैं भोपाल से छोड़ी जा रही बस की यानी कि पीछे से आ रही बस की -
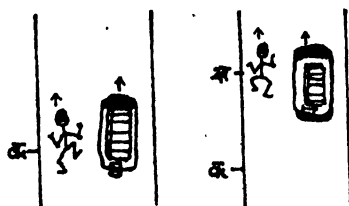
मान लीजिए पीछे से आने वाली बस मुझे 'क' बिन्दु पर मिलती है।

मैं होशंगाबाद की ओर चलता रहता हूं।
12 मिनट बाद पीछे से आने वाली दूसरी बस मिलती है 'ख' बिन्दु पर।

'क' से 'ख' बिन्दु तक की दूरी मैंने 12 मिनट में तय की। भोपाल से आने वाली बस X मिनट के अंतराल से छोड़ी जा रही है। इसलिए 'क' से पहली बस के गुज़रने के X मिनट बाद दूसरी बस गुज़रेगी। और 12 मिनट बाद दूसरी बस 'ख' बिन्दु पर पहुंच जाती है। इसलिए पीछे से आने वाली बस को 'क' से 'ख' तक की दूरी तय करने में 12 - X मिनट लगते हैं।

यानी कि जो दूरी मैंने 12 मिनट में तय की वह पीछे से आने वाली बस ने 12 - X मिनट में तय की।

इसलिए जो दूरी मैं 1 मिनट में तय करता हूं उसे तय करने में पीछे से आने वाली बस को लगते हैं = $\frac{12 - X}{12}$ मिनट ----(1)
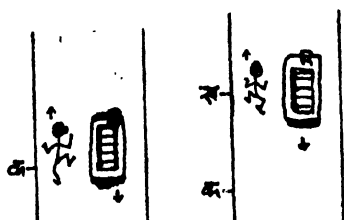
अब होशंगाबाद से आने वाली बस को देखें। सामने से आने वाली बस मुझे 'क' बिन्दु पर आकर मिलती है।

4 मिनट बाद सामने से आने वाली दूसरी बस मिलती है 'ख' बिन्दु पर।

'क' से 'ख' की दूरी मैंने 4 मिनट में तय की। सामने से आने वाली दूसरी बस 4 मिनट बाद 'ख' बिन्दु पर पहुंचेगी और X मिनट बाद 'क' बिन्दु पर पहुंचेगी। यानी कि उसे 'क' से 'ख' की दूरी तय करने में X - 4 मिनट लगेंगे।

मैंने जो दूरी 4 मिनट में तय की उसे बस ने X - 4 मिनट में पार किया।

इसलिए जो दूरी मैं एक मिनट में तय करता हूं उसे सामने से आने वाली बस पार कर लेती है = $\frac{X - 4}{4}$ मिनट में ----(2)

इन दोनों समीकरणों (1) और (2) की तुलना करने पर :

$$\frac{12 - X}{12} = \frac{X - 4}{4}$$

$$12 - X = 3 - 12$$

$$4X = 24$$

$$X = 6$$

यानी भोपाल और होशंगाबाद से 6–6 मिनट के अंतराल से बसें छोड़ी जा रही हैं।

इस बार आपका सिर खुजलाने वाला सवाल

जिस प्रयोग का यहां ज़िक्र किया जा रहा है वह फैराडे ने किया था। इसमें धातु की तारों के जाल का एक पिंजरा बनाया गया है। इस पिंजरे की सतह विद्युत की चालक है। पिंजरे को एक कुचालक पर रखा गया है और वह पृथ्वी के संपर्क
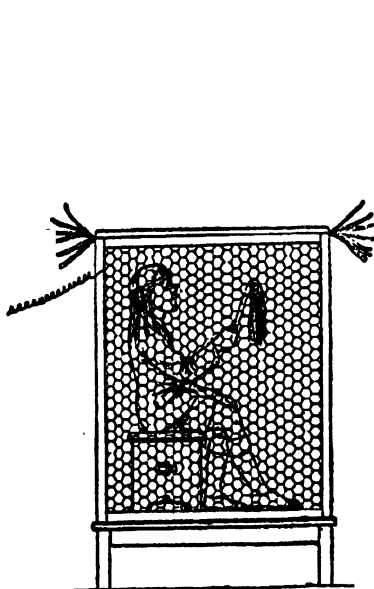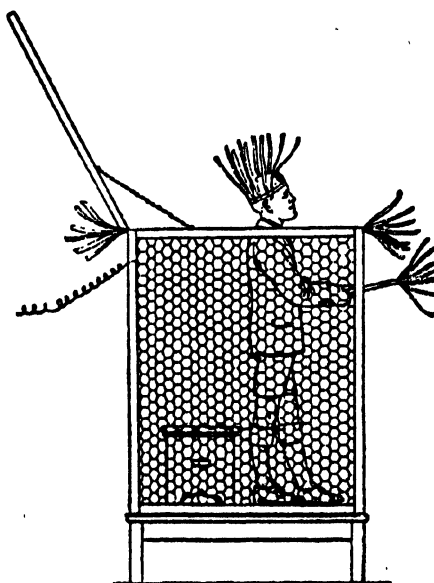
चित्र - 1 चित्र - 2

में नहीं है। एक मशीन द्वारा पिंजरे को आवेशित किया जा सकता है। पिंजरे के कोनों पर पताकाओं (झण्डियों) के झुंड लटके हैं।

फैराडे अपने अत्यंत संवेदनशील विद्युत नापने वाले उपकरणों को लेकर पिंजरे के अंदर घुस गया परन्तु उसके उपकरण पिंजरे के अंदर किसी प्रकार के विद्युतीय प्रभाव का अहसास नहीं कर पाए। लेकिन पिंजरे के किनारे पर जो पताकाएं बंधी थीं वे बिल्कुल सीधी खड़ी हो गईं।

पहला सवाल तो यह है कि पिंजरे के अंदर फैराडे के उपकरणों पर कोई असर क्यों नहीं हुआ? अब आगे देखते हैं –

चित्र - 1 में एक लड़का आवेशित पिंजरे के अंदर बैठा है। उसके हाथ में पकड़े डंडे पर पताकाएं लगी हैं। और उसके सिर पर टोपी में भी ऐसी पताकाएं बंधी हैं। बंद आवेशित पिंजरे में अंदर वाली पताकाएं लटक रही हैं। इन पताकाओं और बाहर की पताकाओं के व्यवहार में क्या अंतर है और यह अंतर क्यों है?

अब अगर पिंजरा खोलकर लड़का खड़ा हो जाए और डंडे के साथ बंधी झंडियों को भी पिंजरे के जाल में से बाहर निकाल दे तो क्या होगा यह चित्र - 2 में दिखाया गया है। चित्र 1 और 2 में क्या-क्या अंतर हैं और यह अंतर क्यों हैं?

* * * * *

जब बिजली गिरे

आसमान से बिजली गिरी और धरती में समा गई। यही बिजली जब रेतीली ज़मीन पर गिरती है तो इसके भीषण ताप से कभी-कभी मिट्टी पिघलकर ऐसे आकारों में ढल जाती है - मानो किसी पेड़ की जड़ मिट्टी में लिपटी हो। परन्तु ज़रूरी नहीं कि रेतीली ज़मीन पर बिजली गिरे तो हर बार ऐसा ही हो।
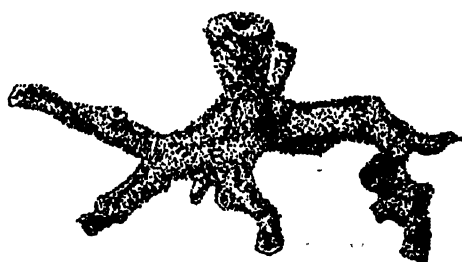
पानी को जांचें परखें

क्या इस काम भी आ सकती है स्कूल की प्रयोगशाला?

पिछले अंक में हाईस्कूल की प्रयोगशाला में उपलब्ध उपकरणों और रसायनों का इस्तेमाल करते हुए पानी की जांच की दो विधियां देखी थीं- पानी का पी.एच. और अम्लीयता पता करना। इस बार पानी के एक और गुणधर्म की जांच करते हैं।

पानी की क्षारीयता पता करना

पानी की क्षारीयता यानी उसमें घुले क्षारों की कुल मात्रा। आमतौर पर पानी में कार्बोनेट और हाइड्रॉक्साइड जैसे पदार्थोंऔर कुछ अकार्बनिक क्षारों की मौजूदगी, पानी को क्षारीय बना देती है। कभी-कभी बोरेट, सिलिकेट और फॉस्फेट भी घुले होते हैं।
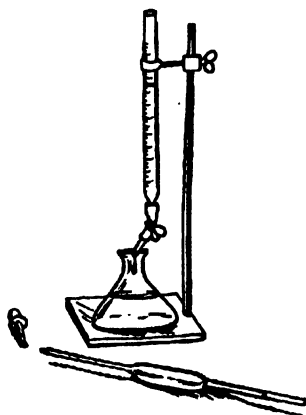
इस विधि में भी पहले कार्बोनेट और हाइड्रॉक्साइड जैसे क्षारों का पता लगाया जाता है। उसके लिए फिनोफ्थलीन सूचक से उदासीनीकरण (टाइट्रेशन) करते हैं। इसे पानी की फिनोफ्थलीन क्षारीयता भी कहते हैं।

फिर मिथाईल ऑरेंज से टाइट्रेशन करके कमज़ोर क्षारों की मात्रा पता कर लेते हैं। इसे मिथाईल ऑरेंज क्षारीयता कहते हैं। आमतौर पर यह कैल्शियम और मैग्नीशियम के बाइकार्बोनेट के कारण होती है। और इस तरीके में भी अगर इन दोनों क्षारीयताओं को मिला दें तो कुल (संयुक्त) क्षारीयता पता चल जाती है।

पानी की क्षारीयता पता करने का तरीका

सबसे पहले पानी का पी.एच. पता कर लें। अगर पी.एच. का मान 7 से अधिक हो तो ही उसकी क्षारीयता की ज़ांच करेंगे। पी.एच. 7 से कम हो तो पानी अम्लीय होगा क्षारीय नहीं।

आवश्यक रसायन :

(क) नमक का अम्ल (हाईड्रोक्लोरिड एसिड) .02 N
(अगर स्टॉक घोल 1 N हो तो उसे 50 गुना तनु करके 0.02 N बना लो।)
(ख) फिनोफ्थलीन सूचक घोल
(ग) मिथाइल ऑरेंज सूचक घोल

आवश्यक उपकरण : ब्यूरेट, पिपेट, ड्रॉपर, टाइट्रेशन फ्लास्क

विधि :

(1) ब्यूरेट को आसुत जल से साफ करके उसमें नमक के अम्ल का मानक घोल भरकर रीडिंग **'क'** लिख लो।

(2) टाइट्रेशन फ्लास्क में पिपेट की सहायता से 20 मिली. नमूने का पानी ले लो। इसमें दो बूंदे फिनोफ्थलीन सूचक घोल डालकर हिला लो। यदि घोल गुलाबी हो जाए तो ब्यूरेट में भरे अम्ल के घोल से रंग समाप्त हो जाने तक टाइट्रेट करो। रीडिंग **'ख'** लिख लो।
अगर फिर दो बूंद फिनोफ्थलीन डालने पर घोल रंगहीन ही रहे तो अगला कदम चलो। अगर घोल फिर गुलाबी हो जाए तो यही कदम (2) फिर दोहराना होगा। जब तक कि फिनोफ्थलीन की दो बूंदें डालने पर भी घोल रंगहीन ही रहे।

(3) इसी फ्लास्क में दो बूंद मिथाइल ऑरेंज सूचक घोल डालो और अम्ल के घोल से तब तक टाइट्रेट करो जब तक फ्लास्क के घोल का रंग नारंगी-पीले से बदलकर गहरा गुलाबी न हो जाए। ब्यूरेट की रीडिंग **'ग'** लिख लो।

परिणाम :

फिनोफ्थलीन क्षारीयता = 50 x (**ख** - **क**) मि. ग्रा. प्रति लीटर
संयुक्त क्षारीयता = 50 x (**ग** - **क**) मि. ग्रा. प्रति लीटर

(पगरिया, छिंदवाड़ा क्षेत्र के विद्यार्थियों और शिक्षकों के साथ हुए एक प्रयोग पर आधारित।)

घनश्याम की नज़र से ....

अब आज किधर
वही सर्वे और क्या
जयरामजी की
बेचारे मास्साब आज राशन कार्ड बना रहे होंगे
आज गुरुजी मतदाता सूची बनाने जा रहे हैं। छुट्टी
..... सर्वे, मतदान, जनगणना, ...?
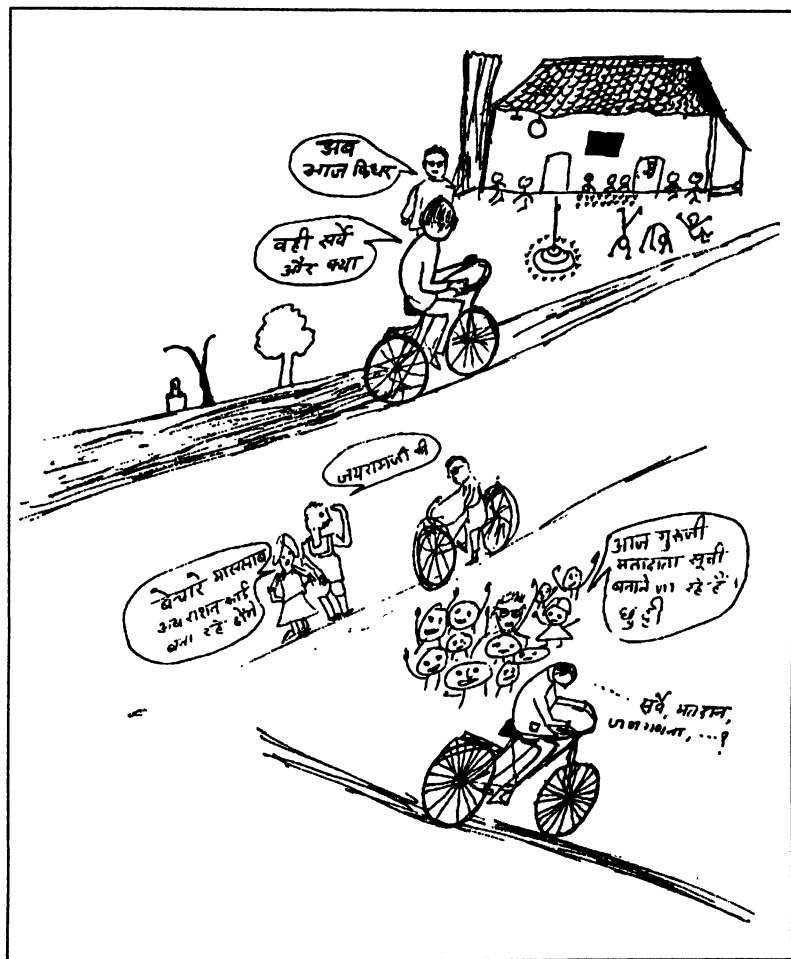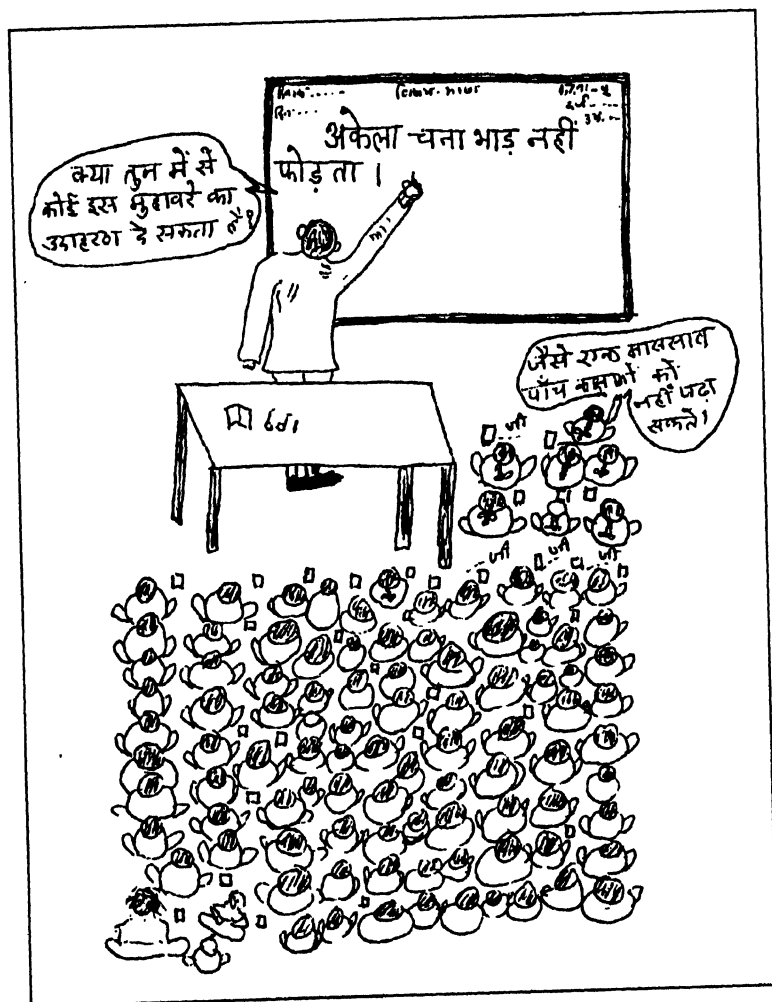
घनश्याम - एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम से संबद्ध

हंगेरियन कहानी

एक सितंबर की याद

• फैरेन्त्ज़ मोरा

अनुवादः भारत भूषण

ज्यों ही माँ ने उनका मोटा अँगूठीदार हाथ हमारी तरफ बढ़ाया त्यों ही वे माँ का नाम ले उठे। उनका बड़ा-सा सूर्यमुखी चेहरा मुस्कराया, पर जब माँ ने अपने कष्टों की रामकहानी खत्म की तो उनकी मुस्कान मुरझा गई। वे पत्थरों की तरह जमे रह गए।

"इतने रोने-धोने की क्या ज़रूरत है? कोई बात भी तो हो? कहीं लिखा थोड़े ही है कि हरेक आदमी को अपने बेटे को जैण्टिलमैन बनाना पड़ेगा। तुम अपने बेटे को शागिर्द क्यों नहीं बना देतीं? ईश्वर तुम्हारा भला करे!'

वे गर्मियाँ भी ठीक ऐसी ही थीं, गेहूँ की बालियाँ लहलहा रही थीं, अंगूर की बेलें गुच्छों से लदी थीं। न तो पेड़ों में और सेब लगाए जा सकते थे, न बेलों में और अंगूर।

"तो बेटा, अब नई किताबें आएंगी और फसल पर नए कपड़े" पिताजी ने मेरी पीठ थपथपाते हुए कहा, "हाँ, सचमुच। सुनहरी बटनों वाली वास्कट, चाँदी और सोने के काम की।"

पूरे साल-भर से लज्जा का जो बोध मुझे खाए जा रहा था अब मेरे गालों पर उछल आया। प्राइमरी स्कूल के पहले दर्जे के विद्यार्थी के रूप में मेरी बड़ी लालसा थी कि मैं व्हिटसन (त्यौहार) पर अपने पड़ोसी स्त्रोसों की तरह बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहनूँ। उनके लिए तो खैर यह बड़ी आसान बात थी क्योंकि उनके पिता की बजाजे की दुकान थी और वे चाहे जिस राजकुमार की तरह सज सकते थे (पीला पाजामा, लाल वास्कट और पंखदार हरा हैट) पर मुझे अपने कपड़ों की खोज-खबर खुद ही करनी थी। सौभाग्य से मुझे दूर नहीं जाना पड़ा। गली के सामने की तरफ सात घर छोड़कर ताबूत वाले चाचा मिस्टर रैवेन रहते थे, जो ताबूतों पर नया रंग चढ़ाकर अपने आँगन में सुखाया करते थे। मैंने उनके ताबूतों पर से सुनहरे कागज़ के अक्षर चुरा लिए और अपनी जाकिट के दाएं-बाएं पल्लों पर टाँक लिए। मेरी जाकिट सचमुच बड़ी सुन्दर लग रही थी और ईश्वर की कृपा से मेरी खुशी सम्राटों से भी ज़्यादा थी, जिनके सीनों पर पूरी आकाश-गंगा झिलमिलाती रहती है। पर बुजुर्गों में सौन्दर्य के प्रति वैसी रुचि नहीं होती जैसी बच्चों में होती है। मेरी माँ ने ज़बरदस्ती वे अक्षर उखड़वा दिए और चिन्तित होकर सिर हिलाने लग गईं।

"अभी तो पहले ही दर्जे में जा रहे हो। अभी से तुम्हारा यह हाल है तो आगे चलकर न जाने क्या होगा? क्या तुम्हें कभी अक्ल न आएगी?"

खैर, दूसरे दर्जे में मुझे सचमुच अक्ल आ गई। मैंने पूरी-की-पूरी पवित्र बाइबिल

पढ़ डाली, ओल्ड और न्यू दोनों टेस्टामेंट, सांग ऑफ सांग्स, द एपोकैलिप्स, और उन यहूदी राजाओं की कथाएँ पढ़कर मेरे होश अजीब तरह से ठिकाने आ गए। जब कभी पनीर के पाग को लेकर ओल्गास्त्रोस से मेरा झगड़ा छिड़ जाता तो मैं उसे जेज़ाबेल कहने लग जाता और उससे कहता, अगर तुझसे मेरी शादी हो गई तो मैं तुम पर शिकारी कुत्ते छुड़वा दूंगा (यह दृश्य मैंने बाईबिल के सुन्दर वुड-कट में देखा था)।

क्रोन स्ट्रीट में मुझे बड़ा ज्ञानी माना जाता था और मेरे गुण अधिकृत रूप में भी स्वीकृत हो चुके थे। तिमाही रिपोर्ट बँटने के समय मुझे बीस मोहरों का तोड़ा मिला, स्कूल भर में सबसे बड़ा, और मैं उन्हें अपनी मेज़ पर गिन ही रहा था कि पिताजी ने हँसी-हँसी में ही मुझे अपने अतीत के कलंक, ताबूत वाली उस घटना की याद दिला दी।

"इनकी बात पर न जाना बेटे!" माँ ने रसोई से झाँकते हुए कहा, "ये तो खाली मज़ाक कर रहे हैं। मैं तुम्हें एक और बात बताती हूँ। तुम्हारी इस नन्हीं पूँजी में से हम तुम्हारे पिताजी को दस मोहरें दे देंगे ताकि ये पिछले साल का टैक्स भर सकें। बाकी दस तुम मुझे उधार दे देना। उनसे हम तुम्हारे दादा-दादी की कब्र के लिए अखरोट की लकड़ी का क्रूस बनवाएंगे और दो नन्हें सुअर भी खरीद लेंगे। गर्मियों में तुम उन्हें अंगूरों की छाया में चराया करना। फसल के वक्त तक वे बड़े हो जाएंगे और जाड़ों के मेले में हम उनमें से एक को बेचकर उन रुपयों से तुम्हारी तीसरे दर्जे की किताबें खरीद देंगे। ठीक है न?"

बेशक ठीक तो है ही! रुपयों के मामले में पिताजी का ज्ञान उतना ही था जितना मेरा, इसलिए आर्थिक साम्राज्य की बागडोर माँ के ही हाथ में रहती थी। मेरे जीवन में वह पहला और आखिरी बजट था जिसकी बुनियाद पक्की थी। अगर यह स्वर्ग-स्थित अधिकारियों को पसन्द न आया तो दोष हमें नहीं दिया जा सकता।

सन्त स्टीफेन के दिन (20 अगस्त), ओलों ने अंगूरों को धराशाई कर दिया, यही नहीं उन्होंने अंगूर की बेलें भी झिंझोड़कर रख दीं। अगले दिन सवेरे, जो चाहे ओलों से अपने पस्से (अंजुली) भर सकता था, क्योंकि पानी ने उन्हें बहाकर
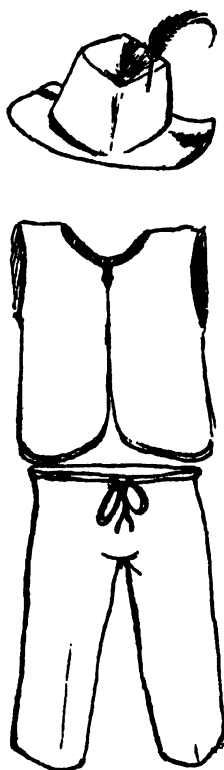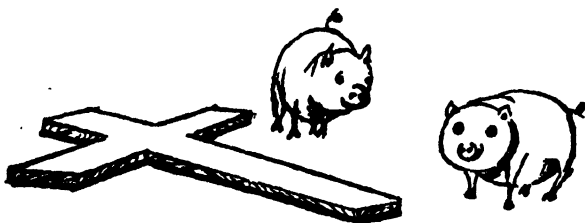
निचली जगहों में जमा कर दिया था। तभी से वह सन्त स्टीफेन का दिन हमारे परिवार के लिए एक ऐतिहासिक तिथि बन गया। यह दिन हमारे लिए पत्थर की लकीर बन गया है, और हम हरेक बात का हिसाब उसी से लगाते हैं।

स्वर्ग से हुई इस उपल-वर्षा ने दोनों नन्हें सुअरों का भी काम तमाम कर दिया। अगर पिताजी कोई रोम-सम्राट होते तो ज्योतिषीगण निश्चय ही उन सुअरों के लिए ध्रुव-तारे के आस-पास की कोई चर-भूमि निर्धारित कर देते, क्योंकि अन्य नक्षत्रीय पशुओं का भी वहीं निवास है। पर हमारी स्थिति वैसी तो थी नहीं, इसलिए हमने उन्हें चम्पे के झाड़ की छाया में ही दफ़ना दिया। इस काम में मैंने भी हाथ बँटाया और जब मैंने पिताजी को आँखों पर हथेलियाँ रखते देखा तो मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ। मैंने इससे पहले कभी किसी बुजुर्ग को रोते नहीं देखा था। खास तौर से अपने यहाँ। अब तो मैं सीख चुका हूँ कि हमारी तरह के आँसू साधारणतः अन्दर की ओर बहा करते हैं।

अब मुझे पहली बार भान हुआ कि हो-न-हो कोई बड़ी अशुभ घटना हो गई है। पर सितम्बर की पहली तारीख से पहले, 'सफेद हाथों के दिन' से पहले मैं यह न जान पाया कि वह थी क्या।

मेरी माँ दाखिले के लिए मुझे स्कूल ले गई। अपने बच्चे की उँगली थामने पर हर माँ शेरनी हो जाती है। तब उन्हें अच्छों-अच्छों से भी डर नहीं लगता।

ड्यूटी पर तैनात टीचर मिस्टर जोयोमि किसी भी रूप में डरावने न थे। वे बड़े सज्जन पुरुष थे, शहद की तरह मीठे, और जहाँ तक मैं जानता हूँ वे अपने जीवन के सायंकाल तक ऐसे ही बने रहे। यहाँ तक कि जब उन्होंने देखा कि मेरी दूसरे दर्जे वाली स्कूल-रिपोर्टों में 'वेरी गुड' के अलावा और कुछ अंकित नहीं है तो उन्होंने मेरी माँ को बैठने के लिए कुर्सी भी दी।

"तब तो माताजी आपको अपने इस नन्हें जादूगर से बड़ा सुख मिलता होगा" रूलर से मेरे भय-शुष्क चेहरे को थपथपाते हुए टीचर बोले। उम्र के लिहाज़ से मेरी माँ टीचर की बेटी के बराबर लगती थीं। पर चिन्ता की मकड़ियों के जाले उनके पच्चीसवें साल में ही बालों में उलझ गए थे। अगर कोई उनकी उम्र बढ़ा-चढ़ाकर

आँकता तो हमें कभी बुरा न लगता था। आहत दर्प ने नहीं वरन् गर्व ने मेरी माँ के चिर-विपन्न चेहरे को सेब के से रंग का बना दिया था। उन्होंने अचानक भावावेश से मेरी ओर देखा, पर फिर फौरन ही सहज हो गईं। अपने ब्लाउज़ में से उन्होंने अपना रंगीन रुमाल निकाल लिया।

"मेहरबानी करके बताएं मुझे कितना देना है?" उन्होंने टीचर से कहा और रुमाल का एक छोर खोलने लगीं।

"छह रुपए तिरपन पैसे, देवी जी!"

सेब-सा रंग धुँधला होकर बेर-सा रंग बन गया।

"हमारे पास तो सिर्फ़ एक रुपया है श्रीमान जी! मेरे रेशमी रुमाल का उस जिप्सी औरत ने इतना ही दिया। मेरे पति ने कहा कि गरीब के बच्चे को एक रुपए से ज़्यादा नहीं देना पड़ता।"

"ठीक है देवी जी, पर ऐसी हालत में आपको गरीबी का सर्टिफ़िकेट लाना पड़ेगा।" और इतना कहकर मिस्टर जोयोमि मुँह फुलाकर खानेदार कागज़ की ओर देखने लगे। जो दर्ज कर दिया है क्या उसे काट दूँ? ये मूरख औरतें कितना तंग करती हैं।

मेरी माँ ने अपने झुर्रीदार छाल-सदृश हाथ जोड़ लिए।

"श्रीमान जी, हम तो सर्टिफ़िकेट के बिना भी गरीब ही हैं। आप हमारा यकीन करें।"

मिस्टर जोयोमि ने अचानक अपनी नज़रें हटाकर सिर झुका लिया।

"वह तो मैं भी देख रहा हूँ देवी जी, और मैं इसका यकीन भी करता हूँ, लेकिन मैं कायदे के खिलाफ कैसे जा सकता हूँ। आपको टाउन हाल से कागज़ लाना ही पड़ेगा।" यों तो टाउन हाल स्कूल से दस ही कदम पर था, फिर भी था बहुत-बहुत दूर। कोई भी औरत नंगे पैरों या चट्टियाँ पहने भी वहां कैसे पहुँच सकती थी ? यह ठीक है कि रात वाले चौकीदार दोबोश से माँ की जान-पहचान थी जो टैक्स के बिल दे जाता था, पर वह तो बहरा है। और हाँ, अमीन साहब मिस्टर चयका, पर वे कितने रूखे हैं।

खैर, हम जब आखिरकार किसी तरह टाउन हाल पहुँच पाए तब दोपहर बारह बजे का घण्टा बज रहा था। और तब तक दरवाज़ा बन्द हो चुका था। बाबूजी क्राउन में बीयर पीने चले गए थे।

अब हम क्या करें? मेरी माँ अपने जीवन में कभी शराबघर में न गई थीं, न वे बाबूजी को पहचानती थीं। इसलिए हम सीढ़ियों पर बैठ गए और चुपचाप उनके आने का इन्तज़ार करने लगे। घोड़े वाले ने हमसे सवाल-जवाब किए और तब बताया कि बाबूजी लँगड़े हैं और उन्हीं से हमारा काम बनेगा। सबेरे तो वे सिर्फ एक ही पैर से लँगड़ाते हैं, पर बीयर पी लेने के बाद दोनों पैरों से लँगड़ाने लगते हैं इसलिए हम उन्हें आसानी से पहचान सकेंगे।

सचमुच हमने उन्हें पहचान लिया। उस वक्त करीब दो बजे थे। पहले तो वे बड़े मज़े से बातें करते रहे। पर ज्यों ही

वे मोड़ के पत्थर से टकराए तो वे अचानक गरम हो गए।

"यहाँ क्या लेने आये हो, वह भी इस वक्त? इसके अलावा, जहाँ तक मैं जानता हूँ, तुम्हारे पास अंगूरों का बाग भी है।"

"हाँ है तो, सिर्फ दो पट्टियाँ। एक पट्टी बिलकुल ऊसर है।"

वह लँगड़ा अब गरज उठा-

"वाह, वाह, हद कर दी! आपको गरीबी का सर्टिफिकेट चाहिए! बदमाश कहीं के, धोखेबाज़!"

वह लँगड़ाता हुआ बाज़ार के दूसरी तरफ चल दिया था, पर हमें उसकी गालियाँ अब भी सुनाई दे रही थीं। टाउन हाल के चौकीदार ने उसे सतर्क होकर सैल्यूट किया और फिर उसने अपनी आँखें हमारे ऊपर गाड़ दीं।

"चलो हटो, ए औरत! चलो यहाँ से, इसी में खैर है।"

हम कुछ-कुछ डर गए थे, पर टाउन हाल के छोर पर पहुँचते ही हम सँभल गए। मेरी माँ धुन की पक्की थीं।

"मैं क्या यों ही छोड़ने वाली हूँ। चलो बेटे, बयाकि के यहां चलें, वे तो टीचर हैं। वह हमेशा हमारी मदद करते हैं।"

मिस्टर बयाकि ने मुझे अक्षर-ज्ञान दिया था और वे फसल के वक्त हमेशा मेरे पास आते थे, यह देखने कि मैं कितना बड़ा हो गया हूँ। वे बड़े दयालु व्यक्ति थे पर इस मामले में वे हमारी मदद न कर सके।

"बात यह है देवी जी, जिसके पास ज़मीन-जायदाद है उसे गरीबी का सर्टिफिकेट नहीं मिल सकता।" इसके पहले मैं कभी महसूस नहीं कर पाया था कि हम लोग ज़मींदार हैं।

सच पूछिए तो हमारी जायदाद दस कलामंडियों (कुलाटियों) में पार की जा सकती थी। बल्कि दसवीं कलामंडी पर हम पड़ोसी की ज़मीन में जा पड़ते। खुशकिस्मती से सारी ज़मीन पाताल तक रेतीली थी। अगर वह चिकनी मिट्टी होती, जो कीचड़ बन सकती तो न जाने हम कब के अपनी सारी ज़मीन को अपने जूतों से चिपकाए फिरते।

टीचर ने हमें सलाह दी कि सबसे अच्छा यह होगा कि मेरे पिताजी मैजिस्ट्रेसी के उन सज्जनों से बातचीत करने की कोशिश करें जिनके यहाँ एक ज़माने में मेरे बाबा अक्सर आया-जाया करते थे। क्योंकि एक ज़माने में मेरे बाबा शहर के सबसे अच्छे तमाखू वाले थे और इसलिए उन दिनों वे मशहूर-से आदमी थे। (यह तथ्य मैं अपने भावी जीवनीकारों के लाभार्थ अंकित कर रहा हूँ। उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि हमारे परिवार में ख्याति मुझसे ही आरम्भ नहीं हुई।)

हमारे शहर का हरेक अफसर मेरे बाबा से ही तमाखू कुटवाता था क्योंकि वे जानते थे कि बुढ़ऊ के हाथ में एक चिलम-भर तमाखू भी नहीं चिपकेगी।

अगले दिन जब पिताजी शरम-लिहाज़ छोड़कर टाउन हाल के इन कुमानियाई

सज्जनों के पास गए तो इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने मेरे बाबा को बड़े प्रेम से याद किया। पर उनसे बात करने की अनुकम्पा सिर्फ बाबूजी ने ही की पर उन्होंने जो कहा वह यही था-

"अब समझे मार्टिन कि तुम्हें लयोश कोश्शुथ के नाम का इतना डंका नहीं पीटना चाहिए था, तब तुम पर आज ऐसी उंगलियाँ न उठतीं। "

टैक्स डिपार्टमेण्ट के काउन्सलर खुद भी 1848 की क्रान्ति के हामी थे। उन्होंने इतनी सलाह ज़रूर दी, "देखो, इसी महीने एक कमीशन अंगूर के बागों में ओलों के कारण जो हानि हुई है उसकी जाँच करने पहुँचेगा। शायद वे तुम्हें कोई कागज़ दे कि ओले क्यों पड़े, कैसे पड़े। वह कागज़ तुम्हें एक दरख्वास्त के साथ काउंसिल में पेश करना होगा। वैसे स्कूल की फीस से छूट तो दी ही जा सकती है, बस ज़रा लिहाज़ की ज़रूरत है। लेकिन ईश्वर के लिए कहीं लोगों से कहते मत फिरना कि मैंने यह सलाह दी है। मैं तो यों ही बदनाम हूँ कि लोगों को उभारता रहता हूँ।"

पिताजी मुझे टाउन हाल के भीतर नहीं ले गए, वहीं दरवाज़े पर ही छोड़ दिया। वहाँ जो नोटिस चिपके थे उन्हें पढ़ता-पढ़ता मैं अपना मन बहलाता रहा। किसी डाकू को पकड़वाने के लिए सौ मुहरों के इनाम का एलान हुआ था। उस भगोड़े के सिर की कीमत मेरे देश की नज़रों में सौ मुहर थी। पर मेरा अकलंक नन्हा जीवन किसी की नज़रों में छह रुपए पचास पैसे के लायक भी न था। इसका पता मुझे तब चला जब पिताजी लौटकर आए और उन्होंने बिना कुछ कहे मेरा हाथ पकड़ लिया। बाज़ार में मोची की दुकान तक पहुँचने के पहले वे कुछ नहीं बोले। फिर बड़ी मीठी और कोमल आवाज़ में उन्होंने पूछा-

"देखा, वे बढ़िया जूते कितने अच्छे हैं?"

"हूँ" और मेरा दिल बड़े ज़ोर से धड़क उठा क्योंकि मैं पहले ही जानता था कि अगला सवाल क्या होगा।

"अगर तुम्हें मैं किसी मोची के यहाँ बैठा दूँ तो कैसा रहे?"

मेरे मुँह से एक लफ्ज़ भी न निकला। बस मैंने अपना सिर हिला दिया। तब मैं दुनिया के रंग-ढंग क्या समझता था? तब

मैं कैसे जान सकता था कि मेरे बड़े होने तक मोचियों के लिए कैसे-कैसे धन्धे खुल जाएंगे? मैं तो बस इतना ही जानता था कि मोचियों के शागिर्द गन्दे होते हैं, वे कोलतार का काम करते हैं और मुझसे मुलाकात होने पर मुझे गड्ढे में धकेल देते हैं। काश मैं तभी पहचान सकता कि दुनिया उन्हीं की है जो धक्का देते रह सकते हैं।

बाद में घर में विराट सभा बैठी। हमने सोफा, आईना, लिहाफ, ऐशो-आराम की जो-जो चीज़ें रुपया बन सकती थीं सबका हिसाब लगाया ताकि एक रुपया साढ़े छह बन जाए। यहाँ तक मैंने अपनी दो साल की बहन का पालना भी जाँच देखा, वह अब बड़ी हो गई थी और उसे कोने में भी सुलाया जा सकता था पर इन सबसे भी काम नहीं चल सकता था। अगर स्कूल की फीस निकल भी आई तो भी किताबों के लिए क्या बचेगा? हमने एक-एक करके अपने रिश्तेदारों के भी नाम लिए पर वे भी तो सब-के-सब ओलों की चपेट में आ चुके थे। अन्धा फूटी आँखों की क्या मदद करेगा?

उस रात मुझे बहुत बुरा सपना दिखा। मैं कोलतार के कढ़ाव में पड़ा हूँ, मोची के शागिर्द मेरे पैरों को कोलतार की डोर से बाँधकर घसीटते हुए बाज़ार ले जा रहे हैं। जब मैं जागा तो सपने में आँसू बहाने की वजह से मेरी आँखें सूजी हुई थीं।

तब तक पिताजी अंगूर के बगीचे पर जा चुके थे। जब भी उन पर ऐसी मुसीबतें आ पड़तीं जिन पर न हँसा जा सकता था न कोसा जा सकता था, तभी वे वहाँ जा छिपते थे। (उफ! अगर उस 'जायदाद' का मेरे पास कुत्ते की खोह बराबर हिस्सा भी बच रहता, तो मैं खुद भी न जाने कितनी बार वहाँ जा छिपता)। मेरी माँ ने मुझे गोद में भर लिया, हालाँकि हम लोग शर्मीली प्रकृति के थे और ऊँचे लोगों के रंग-ढंग के लिए हमारे पास समय नहीं होता था। यही नहीं, उन्होंने एक लम्बे-से कंघे से मेरे बिखरे बालों को तरतीब देने की भी कोशिश की।

"कोई फिकर नहीं मेरे बच्चे! अभी तुम शागिर्द हुए थोड़े ही हो। रात को मुझे राइट रेवरेण्ड आगोच का ध्यान आ गया। वे गरीबों पर बड़ी दया रखते हैं। पर देखना, उनका हाथ ज़रा अच्छी तरह चूमना।"

सचमुच राइट रेवरेण्ड आगोच बड़े भले आदमी थे। वे हमेशा चर्च के चक्कर काटते रहते थे - ऐसी प्रकाण्ड मूर्ति की तरह जिसमें अचानक जान पड़ गई हो। जब भी कोई भी औरत या बच्चा उधर से गुज़रता तो वे उसके चूमने के लिए अपना हाथ बढ़ा देते। उनका हाथ चूमे बिना वहाँ से गुज़रना किसी के भी लिए मुमकिन न था। वे शहर भर के लोगों के नाम जानते थे। ज्यों ही माँ ने उनका मोटा अँगूठीदार हाथ हमारी तरफ बढ़ाया त्यों ही वे माँ का नाम ले उठे।

"ईश्वर तुम्हें सुखी रखे, श्रीमती मीरा। कहो, क्या हालचाल है, क्रोन स्ट्रीट में कैसा

चल रहा है? क्या किसी का नामकरण होना है या कोई मर गया है?" उनका बड़ा-सा सूर्यमुखी चेहरा मुस्कराया, पर जब माँ ने अपने कष्टों की रामकहानी खत्म की तो उनकी मुस्कान मुरझा गई। वे पत्थरों की तरह जमे रह गए।

"इतने रोने-धोने की क्या ज़रूरत है? कोई बात भी तो हो? कहीं लिखा थोड़े ही है कि हरेक आदमी को अपने बेटे को जैण्टिलमैन बनाना पड़ेगा। तुम अपने बेटे को शागिर्द क्यों नहीं बना देतीं? ईश्वर तुम्हारा भला करे!"

लेकिन सज्जन पूरी तरह विमुख नहीं होते। हालाँकि हमने उन्हें नाराज़ कर दिया था तथापि हमारे विदा लेते वक्त उन्होंने हमें अपना सुवासित हाथ चूमने से नहीं रोका।

अब दरअसल सारा दारोमदार मुझ पर था। यहाँ तक कि माँ ने भी मुझ से

पूछा कि मैं किस तरह का शागिर्द बनना चाहता हूँ। हे भगवान्! मैं भला इसके अलावा और क्या कह सकता था कि मैं बुकसेलर होना चाहता हूँ। मैं यह बात काफ़ी हल्के मन से कह सका और इस पर मेरी माँ के चेहरे पर भी चमक आ गई। शायद उन्हें यह ध्यान आ रहा हो कि मैं इतवार की शाम को खाई के किनारे बैठाकर उन्हें कैसी-कैसी सुन्दर कहानियों की किताबें सुना सकूंगा।

उन दिनों हमारे शहर में मिस्टर रनेज़इ ही एक-मात्र बुकसेलर थे। संयोग से उन दिनों उनकी दुकान की खिड़की पर एक नोटिस टँगा था कि वे किसी अच्छे घर के लड़के को शागिर्द बनाना चाहते हैं। इस बात का मुझे ज़रा डर था क्योंकि हमारा घर कुछ-कुछ डाँवाडोल था और कभी-कभार छत की खपरैलें खिसकने लगती थीं। पर इससे कोई कठिनाई पेश होती नहीं मालूम दी। मिस्टर रनेज़इ ने पहले तो मुझे अपनी नंगी आँखों से जाँचा और फिर चश्मा चढ़ाकर और उसके बाद उन्होंने घोषणा की कि वे मुझे बुकसेलर बना देंगे और इसके लिए वे बस तीन रुपया महीना चार्ज करेंगे।

उस दिन की शाम मैं कभी न भूल पाऊँगा। उस बार का पतझर, और सालों की अपेक्षा ज़्यादा गर्म था हालाँकि चिड़ियों ने विदा लेना शुरू कर दिया था। मेरी माँ कुएँ पर कपड़े धो रही थीं और मैं नाँद की छाया में उनके पैरों पर बैठा था। न तो उन्होंने कोई शब्द कहा न मैंने, हम बस धीमे-धीमे बिसूरते रहे। उनके आँसू नाँद में गिर रहे थे और मेरे आँसू उनके पैरों पर।

लेकिन मेरी सच्ची यातना अगले दिन सबेरे ही आई। मेरे सहपाठियों ने प्रार्थना के लिए स्कूल जाते समय खिड़की, दरवाज़े और बाड़ खटखटाई और गेट की सन्धों में से आवाज़ लगाई।

"फ्रान्सिस, फ्रान्सिस!"

इसे दान्ते अपने महाकाव्य 'इनफर्नो' (नरक) में शामिल करना भूल गए।

मैं छप्पर, सुअर के तबेले और बुर्जी में छिप गया पर बेकार; किलकते बच्चों की भनभनाहट ने मेरा पीछा न छोड़ा। एक हफ्ते के बाद यह कष्ट मेरे लिए असह्य हो उठा। जब मेरे दोस्त मेरे घर से गुज़रते, ; उनके आने की बाट देखता रहता और फिर उनके पीछे दौड़ जाता। बाज़ार में मैं खोमचे वालियों के बीच टहलता रहता। आठ बजे की स्कूल की घण्टी होते ही टीचरों और लड़कों, दोनों के कदम तेज़ हो जाते। तब मैं स्कूल के चक्कर काटना शुरू करता, पहले दूर से, और फिर चक्कर लगातार छोटे होते चलते। शायद स्वर्ग का दरवाज़ा बन्द हो जाने पर आदम ने भी यही किया होगा। अगर दुनिया में ऐसा एक भी आदमी है जो यह स्वाद ले चुका हो कि आदम ने क्या भोगा था तो वह मैं हूँ।

जो हो, आदम को सिर्फ स्वर्ग से ही निकाला गया था, स्कूल से नहीं और वह सिर्फ खाने की मेज़ से ही वंचित हुआ था पुस्तकों से नहीं; वह सहा जा सकता था,

उसकी तो आदत पड़ सकती थी। चार ही दिन बाद मैं बाड़ के भीतर था। हाथ-पैरों के बल सरकता मैं हैड मास्टर के दरवाज़े के आगे से गुज़रता लम्बे, सफेदी किए कारीडोर को पार करके तीसरी क्लास के खुले दरवाज़े पर जा पहुँचा। मैं सब-कुछ सुनता रहा, टीचर की व्याख्याएं, बच्चों के जवाब, बूढ़े चपरासी का घण्टी की तरफ बढ़ना। उसकी आहट सुनते ही मैं स्कूल से पलटकर जल्दी-जल्दी घिसटता सड़क पर आ गया।

सितम्बर के मध्य तक किसी तरह की कोई मुश्किल न हुई। जिस साइंस के कुएँ से इस बेचारे, गन्दे, नन्हें बच्चे को कँटीले तारों ने अलग कर दिया था उस कुएँ से गुपचुप रीति से भी प्यास बुझाई जा सकती थी। पर हुआ यह कि टीचर मिस्टर ऐस्टिच तीसरे दर्जे में लैटिन भाषा का गुण-गान कर रहे थे। कितनी सुरीली, कितनी प्रखर कितनी कसी हुई है यह भाषा और क्यों कोई भी भाषा इसकी बराबरी नहीं कर सकती!

"लेटिन का वाक्य है : Unus es Dens इसे हंगरी भाषा में तुम में से कौन कहना जानता है?"

गहरी खामोशी।

"अरे, कोई-न-कोई तो कोशिश करो। मैथ्यू नाथ?"

मैथ्यू नाथ, एक रियासत के स्टुअर्ड का बेटा, कुशाग्र बुद्धि विद्यार्थी था और दूसरे दर्जे में मेरा प्रतिद्वंद्वी था। इस चुनौती पर वह उठ खड़ा हुआ!

"ईश्वर, तू एक है।"

"नहीं, यह बिल्कुल सही नहीं है। यह किस तरह का शब्द विन्यास है?"

"मेरा मतलब था ईश्वर एक तू है।"

"नहीं, नहीं; क्या तुम्हें नहीं लगता कि लैटिन वाक्य में कुछ और भी बात कही गई है?"

मेरा मन आतंक-ग्रस्त होकर धक-धक करने लगा, पर मैं अपने को रोक न सका, चीखकर कह ही उठा:

"बस तू ही ईश्वर है...'

(उसी क्षण मेरा माथा फर्श से जा टकराया) क्योंकि मैं उत्तेजना के मारे बेहोश हो गया था। उफ, यह मैंने क्या कर डाला, अब क्या होगा?

जो हुआ वह यह कि लैटिन टीचर मुझे बाँहों में भरकर क्लास में ले गए और उसके बाद 'ज़मींदार' मार्टिन मोरा से कभी कोई फीस नहीं माँगी गई। Unus es Dens बस तू ही ईश्वर है। चाहे तू कुछ दूर पर है, चाहे तुझे धरती पर नज़र डालने का ज़्यादा समय न हो...

जो हो, सितम्बर मेरे लिए अब भी मेरे जीवन का सर्वाधिक विषादमय महीना है। हालाँकि मैं उन लोगों में हूँ जो भीतर ही भीतर रोते हैं, फिर भी जब कभी मैं सितम्बर के महीने में किसी नन्हें बच्चे को सिर झुकाए देखता हूँ तो मेरी आँखों में आँसू आ ही जाते हैं।

फ़ेरेन्त्ज़ मोरा - जन्म 1879, निधन 1934

पुस्तक समीक्षा

प्लास्टिक की घुसपैठ

• के. आर. शर्मा

पुस्तक - प्लास्टिक ही प्लास्टिक
लेखक - सुबोध जावड़ेकर
प्रकाशक - सी.एस.आई.आर, नई दिल्ली
पता - डॉ. के. एस. कृष्णन मार्ग,
नई दिल्ली - 110 012
प्रकाशन - 1992, पृष्ठ - 104,
मूल्य - 12 रुपए

आज हमारे दैनिक जीवन में प्लास्टिक ने गज़ब की घुसपैठ कर रखी है! बाल्टी, मग, टूथब्रश, रस्सी, रेडियो, टी.वी., बिजली के स्विच.... और भी न जाने क्या-क्या चीज़ें प्लास्टिक की बनी हैं या उनमें प्लास्टिक मौजूद है। अब तेल, घी, दूध जैसे तरल पदार्थ लाने के लिए आप यदि घर से बर्तन न भी ले जाएं तो कोई बात नहीं, पोलिथीन की थैली जो उपलब्ध है!

सौ साल पहले किसी ने सोचा भी नहीं होगा कि कभी पानी भी पोली-पैक में मिलने लगेगा! चारों तरफ नज़र दौड़ाएं तो पाएंगे कि मध्यम-वर्गीय घरों में तो प्लास्टिक ने गज़ब की घुसपैठ कर रखी है। और तो और इसने कई जगह तो भारी और पारंपरिक पदार्थों (जैसे लोहा) का स्थान तक ले लिया है।

आखिर प्लास्टिक है क्या? इसकी खोज कैसे हुई? कौन था इसे खोजने वाला? प्लास्टिक से इतनी रंग-बिरंगी चीज़ें कैसे बनती हैं? हम आजकल जिस धड़ल्ले से दैनिक जीवन में इसका उपयोग कर रहे हैं क्या वह सुरक्षित

है? ये कई सवाल हैं जिनके जवाब 'प्लास्टिक ही प्लास्टिक' नाम की किताब में मिल सकते हैं।

प्लास्टिक के तमाम पहलुओं के बारे में यह पुस्तक अपने में अनूठी जानकारियां संग्रहित किए हुए है। इस किताब का प्रकाशन सी.एस.आई.आर. (प्रकाशन और सूचना निदेशालय) ने किया है, इस उद्देश्य से कि प्लास्टिक के बारे में जानकारी जन-सामान्य तक पहुंच सके।

असल में सी.एस.आई.आर. की पचासवीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में निर्णय लिया गया था कि विज्ञान के प्रसार के लिए पुस्तकों की एक श्रृंखला छापी जाए। इसके लिए खगोलिकी, मौसम विज्ञान, समुद्र विज्ञान, नए पदार्थ, रोगविरोधी विज्ञान (इम्यूनोलॉजी) तथा जैव प्रौद्योगिकी जैसे विषयों को चुना गया। अभी तक इस कड़ी की सागर से संपदा, जीवन : **कोशिका से कोशिका तक**, **हुक्म का गुलाम**, **सितारों का संसार** आदि शीर्षक से किताबें प्रकाशित हुई हैं। **प्लास्टिक ही प्लास्टिक** इसी कड़ी का एक हिस्सा है।

प्लास्टिक नामक पदार्थ ज़्यादा पुराना नहीं है। कोई सवा सौ साल पहले संयोगवश इसकी खोज हुई! स्विटज़रलैंड का एक वैज्ञानिक श्योनबेन कुछ प्रयोग कर रहा था कि गंधक के अम्ल (सल्फ्यूरिक एसिड), और शोरे के अम्ल (नाइट्रिक एसिड) से भरे बीकर फर्श पर गिर पड़े...! इस मिश्रण को उसने जब सूती कपड़े से पोंछने की कोशिश की तो उसे मिला एक कृत्रिम बहुलक 'नाइट्रो सेल्युलोज़'। बस यहीं से शरुआत होती है प्लास्टिक की खोज की कहानी की। नाइट्रो सेल्यूलोज़ का दुर्गुण है कि यह कठोर होता है और तेज़ी से आग पकड़ लेता है। तो इस पदार्थ में बदलाव करके इसको उपयोगी बनाने की तरफ ध्यान गया एक दूसरे वैज्ञानिक पार्केस का। उसने इसमें कुछ बदलाव करके एक पदार्थ बनाया किंतु यह भी नरम और आसानी से टूटने वाला था। तभी 1869 में अमेरिका के वेस्ले और हयात् बंधुओं ने नाइट्रो [illegible] में कपूर मिलाकर एक और पदा[illegible] बनाया। इसे गर्म करके इच्छानुसार आकृति में ढाला जा सकता था। इस प्रकार पहली बार प्लास्टिक का निर्माण हुआ। इसका नाम पड़ा 'सेल्युलाईड'। हालांकि सेल्युलाईड भी जल्दी से आग पकड़ लेता है लेकिन पहले-पहल प्लास्टिक का यही रूप सामने आया।

प्लास्टिक के क्षेत्र में ही एक और दिलचस्प संयोग बना उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में - जब डह बैकलैंड नामक वैज्ञानिक ने पाया कि फिनॉल तथा फॉर्मेल्डिहाईड (मृत प्राणियों को सड़ने से बचाने के लिए उपयोग में लाया जाने वाला पदार्थ) को गर्म किया

जाता है तो एक चिपचिपा पदार्थ, रेज़िन बनता है। उसने पाया कि इस चिपचिपे पदार्थ को गलाकर सांचे में ढाला जा सकता है। जो ठंडा होने पर कठोर हो जाता है। इस पदार्थ को बैकलेंड के नाम के आधार पर बैकेलाइट कहा जाने लगा। बैकेलाइट एक ऐसा पदार्थ है जो प्लास्टिक उद्योग का आरंभ बिंदु था।

रासायनिक रूप से देखा जाए तो प्लास्टिक एक समान इकाइयों की लंबी-लंबी श्रृंखलाएं हैं। यानी कि प्लास्टिक बहुलक (पॉलिमर) हैं। बैकेलाइट की खोज के बाद तो और तेज़ी से इस दिशा में प्रयोग होने लगे। आजकल प्लास्टिक मुख्यतः पेट्रोलियम पदार्थों से बनाए जाते हैं। पोलिथीन और पीवीसी इस तरह बनने वाले दो प्रमुख प्लास्टिक हैं। विभिन्न किस्म के प्लास्टिकों में पोलिथीन, पीवीसी, पोलीस्टराइन और पोलीप्रोपिलीन का प्रमुख स्थान है। हमारे देश में उपरोक्त चारों को ही तरह तरह के प्लास्टिकों का मुख्य स्रोत माना गया है।

इस किताब में प्लास्टिक की खोज के साथ ही इसके विभिन्न स्वरूपों को अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया गया है। जैसे खाना बनाने के लिए विभिन्न तरह की खाद्य सामग्री उपलब्ध हो तो उससे एक से अधिक तरह के व्यंजन बनाए जा सकते है लगभग उसी तर्ज़ पर प्लास्टिक को बेहतर और आकर्षक बनाने के लिए मसाले बनाम रंग डालने पड़ते हैं। आज हमारे सामने बहुत ही अलग-अलग तरह के प्लास्टिक मौजूद हैं। कोई एकदम नरम तो कोई एकदम

बढ़ता प्लास्टिक कचरा : दुनिया परेशान है कि इसका क्या करें।

कठोर, कुछेक को तो गर्म करके पुनः ढाला जा सकता है या यूं कहें कि उनकी रीसाइक्लिंग की जा सकती है। गुणों के हिसाब से भी इनमें आपस में अंतर है जैसे आमतौर पर 100 डिग्री सेंटीग्रेड पर सभी प्लास्टिक पिघल जाते हैं पर टेफ्लॉन नाम का प्लास्टिक 260 डिग्री सेंटीग्रेड पर भी नहीं पिघलता।

सुबोध जावड़ेकर द्वारा लिखी गई यह किताब प्लास्टिक की खोज से लगाकर अब तक तैयार किस्मों तथा इसके रसायन शास्त्र की जीवंत तस्वीर पेश करती है। कुल मिलाकर किताब उनके लिए और भी उपयोगी बन जाती है जो अणु परमाणु के संकेत समीकरण की भाषा समझ सकते हैं।

आज के युग को प्लास्टिक युग कहें तो कोई हर्ज नहीं होना चाहिए। एक तरफ तो इसका इतना प्रचार है पर दूसरी तरफ इसके कारण एक बड़ी समस्या आन खड़ी हुई है। जैसे अनेक चीज़ें सड़ गल कर मिट्टी में मिल जाती हैं परन्तु प्लास्टिक ठीक इसके विपरीत प्रकृति में जैसे के तैसे पड़े रहते हैं। हमने प्लास्टिक बनाना और उपयोग करना तो सीख लिया लेकिन इसको नष्ट करने के तरीके अभी तक नहीं खोजे जा सके हैं। वैसे इसको ठिकाने लगाने का एक तरीका है - इसे इकट्ठा कर पुनः उपयोग लायक बनाना। हमारे आसपास पड़े कचरे से बीना गया प्लास्टिक पुनः चक्रीकरण के लिए भेज दिया जाता है। इसके बावजूद बेकार पड़े प्लास्टिक की मात्रा में से बहुत थोड़े का ही इस तरह उपयोग हो पाता है। लेखक ने अपनी पुस्तक में इस बात की ओर इशारा किया है कि अब हमें ऐसे प्लास्टिक बनाने चाहिए जिन्हें प्रकृति हज़म कर जाए।

किताब की शुरुआत में बताए गए हैं, अलग-अलग देशों में प्लास्टिक खपत के आंकड़े। तुलनात्मक रूप से भारत में इसकी खपत बहुत कम है। इसको आधार बना कर लेखक ने लिखा है - 'इससे पता चलता है कि हमें अभी और कितनी प्रगति करनी है।' इस कथन से जो सवाल खड़ा होता है वो विकास के बारे में सोचने के हमारे तरीके की ओर इशारा करता है कि क्या प्लास्टिक उत्पादन व खपत के मामले में अन्य देशों की बराबरी करना ही प्रगति का सूचक है?

यह कहते हुए शायद इस बात का ध्यान नहीं रखा गया कि विकसित कहे जाने वाले देश इस समय प्लास्टिक कचड़े के कारण, उनके पर्यावरण को पैदा खतरे से जूझ रहे हैं और हर साल करोड़ों रुपए प्लास्टिक का कोई ऐसा विकल्प ढूंढने में खर्च कर रहे हैं जो प्रकृति को नुकसान न पहुंचाए। ●

(के. आर. शर्मा - होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध, एकलव्य के उज्जैन फील्ड सेंटर में कार्यरत)

- मासिक बाल विज्ञान पत्रिका, वार्षिक सदस्यता शुल्क 50 रुपए, डाकखर्च मुफ्त

संदर्भ

संदर्भ - शैक्षिक विषयों पर केंद्रित शिक्षकों की द्वैमासिक पत्रिका, वार्षिक सदस्यता शुल्क - 35 रुपए, डाकखर्च मुफ्त

स्रोत - विज्ञान एवं तकनॉलॉजी फीचर सेवा, मासिक पत्रिका के रूप में भी उपलब्ध, वार्षिक शुल्क - 100 रुपए (संस्थाओं के लिए 200 रु.)

खेल खेल में - माचिस की तीलियों, डिब्बी और वॉल्व ट्यूब जैसी चीज़ों से विज्ञान के कुछ सस्ते, सरल और रोचक मॉडल बनाने की जानकारी, मूल्य - 5 रुपए
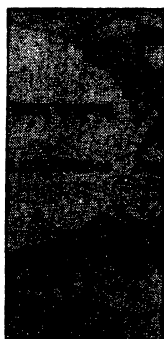
कबाड़ से जुगाड़ - आसपास बिखरे पड़े बेकार सामान से विज्ञान के प्रयोग करने और समझने की पुस्तिका, पृष्ठ - 68, मूल्य- 10 रुपए

खिलौनों का बस्ता - कबाड़ से जुगाड़ की तर्ज़ पर कुछ नए प्रयोगों और मॉडलों की किताब, पृष्ठ - 68, मूल्य- 10 रुपए

बच्चों के मन में स्कूल को लेकर इतना भय क्यों? क्या कारण है कि वे अपनी सामर्थ्य का एक छोटा-सा हिस्सा ही स्कूलों में विकसित कर पाते हैं? ऐसे ही कई सवालों को लेकर लिखी गई प्रसिद्ध शिक्षाविद् जॉन होल्ट की किताब 'हाउ चिल्ड्रन फेल' का हिंदी रूपान्तरण - 'बच्चे असफल कैसे होते हैं' पृष्ठ - 283 मूल्य पेपरबैक - 40 रुपए, सजिल्द - 100 रुपए

इनके अलावा भी....

जनविज्ञान का सवाल - भोपाल गैस त्रासदी को लेकर एकलव्य द्वारा तैयार की गई पोस्टर प्रदर्शनी की सचित्र पुस्तिका, मूल्य - 4.00 रु. डाक से 5.00 रु.

माचिस की तीलियों के रोचक खेल (पहेलियां) - मूल्य - 3.00 रु. डाक से 4.00 रु.

सामाजिक अध्ययन शिक्षण : एक प्रयोग - एकलव्य के सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं के बारे में जानकारी देती पुस्तिका, मूल्य - 5.00 रु. साधारण डाक से 6.00 रु

विज्ञान क्या है? (चकमक के एक अंक में उपलब्ध) मूल्य - 2.50 रु. साधारण डाक से 3.00 रु.

इतिहास क्या है? (चकमक के एक अंक में उपलब्ध) मूल्य - 2.50 रु. साधारण डाक से 3.00 रु.

प्यारा लड्डू - बच्चों द्वारा लिखी कविताओं का संकलन, मूल्य - 7.00 रु. डाक से 8.00 रु.

लोमड़ी और ज़मीन - बच्चों द्वारा लिखी कविताओं का संकलन, मूल्य - 10.00 रु. डाक से 11.00 रु.

हमारी सेहत हमारी लड़ाई - गैस पीड़ितों के लिए एक स्वास्थ्य पुस्तिका, मूल्य 5.00रु. डाक से 7.00रु.

बोलो तुम क्या चुप बैठोगे - नर्मदा पर एक लंबी कविता, मूल्य - 2.00 रु.

जवाब-दर-सवाल - जनगीत, मूल्य 5.00 रु. डाक से 6.00 रु.

एकलव्य के शैक्षिक प्रयोगों में विकसित सामग्री
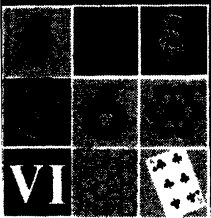
बाल वैज्ञानिक कक्षा 6,7 और 8
होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के तहत म.प्र. की तकरीबन 500 माध्यमिक शालाओं में लागू विज्ञान की पुस्तकें, तीन किताबों का सेट

खुशी-खुशी कक्षा 1 से 5 तक - एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के लिए तैयार पुस्तकें, नौ किताबों का सेट

PRASHIKA

प्राशिका रिपोर्ट
एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (प्राशिका) में नवाचार को डॉक्यूमेंट करती रिपोर्ट (अंग्रेज़ी में)। रत्नासागर, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ - 160, मूल्य - 75 रुपए

शिक्षा बने रुचिकर
बंबई के कॉमेट मीडिया फाउंडेशन द्वारा तैयार की गई वीडियो फिल्म, जिसमें एकलव्य की तमाम शैक्षिक गतिविधियों को समेटा गया है। हिंदी और अंग्रेज़ी में उपलब्ध
समय - 60 मिनट मूल्य - 350 रुपए

ामाजिक अध्ययन कक्षा 6,7 ार 8 - एकलव्य के सामाजिक ध्ययन कार्यक्रम में विकसित की ई पुस्तकें तीन किताबों का सेट

एकलव्य के कार्यक्रमों तथा प्रकाशनों के बारे में अधिक जानकारी, एकलव्य, ई - 1 / 25 अरेरा कॉलोनी भोपाल (म.प्र.) - 462 016 से मिल सकेगी। सामग्री के लिए राशि अग्रिम भेजें।

हाथी का बच्चा ....

दरअसल यह सवाल एक बच्चे ने पूछा था और इसी सवाल को हमने संदर्भ के पिछले अंक में छापा था। शायद आपने भी इस सवाल का जवाब खोजने की कोशिश की हो। बहरहाल हमने इस सवाल की तहकीकात की।

सबसे पहली बात कि हाथी का बच्चा दूध पीता है यह तो उस सवाल पूछने वाले बच्चे को मालूम है। दूसरा यह कि वह पीता कैसे है, मतलब कि उस बच्चे के दिमाग में दो बाते आई होंगी कि हाथी का बच्चा सूंड से पीता है या मुंह से। ज़ाहिर है कि हाथी जब पानी पीता है तो वह सूंड में भरता है और मुंह में डाल लेता है। सोचिए कि सूंड से वह मूंगफली या एक सिक्का भी ज़मीन से उठा लेता है तो सूंड हाथी के लिए एक खासा हथियार है। वह अपने भोजन को सूंड से ही उठाकर मुंह तक लाता है।केवल पता इतना करना है कि हाथी का बच्चा अपनी मां के थनों से दूध कैसे पीता है?

अनेक लोगों से पूछा कि किसी ने हथिनी को अपने बच्चे को दूध पिलाते देखा है।यानी कि शुद्ध रूप से यह सवाल अवलोकन पर आधारित है। मैंने खुद भी जीवविज्ञान पढ़ा पर मैं भी अचंभित हुआ। मुझे भी इस सवाल का जवाब खोजने में दिलचस्पी जागी। सोचा कि क्यों न उन लोगों से पूछा जाए जो हाथी पालते हैं। अक्सर गांवों शहरों में साधु लोग हाथी लेकर घूमते हैं। एक दिन हाथी वाले बाबा से पूछा - बाबा ने कहा हमने हाथी तो पाला है पर बच्चा दूध कैसे पीता है यह कभी नहीं देखा, शायद सूंड से ही पीता होगा। हमने अपनी तहकीकात जारी रखी। इसी बीच अन्य जीवविज्ञानियों से पूछा, उनका भी कहना था कि पढ़ा तो नहीं और देखने में भी नहीं आया। अलबत्ता इस बीच अनेक लोगों से पूछताछ रखी। एक साधु ने बताया कि हां उसने हाथी के बच्चों को दूध पीते देखा है, उसने बताया कि बच्चा मुंह से ही दूध पीता है सूंड से नहीं।

चौपायों जैसे कि गाय भैंस बकरी में थन पिछली टांगों के नज़दीक पेट पर होते हैं जबकि हथिनी के थन अगली टांगों के नज़दीक यानी छाती पर होते हैं। जब बच्चों को दूध पीना होता है तो वह अगली टांगों के पीछे से, बगल से अपनी सूंड को ऊपर करता है और मुंह में दूध चूसता है।

● के. आर. शर्मा
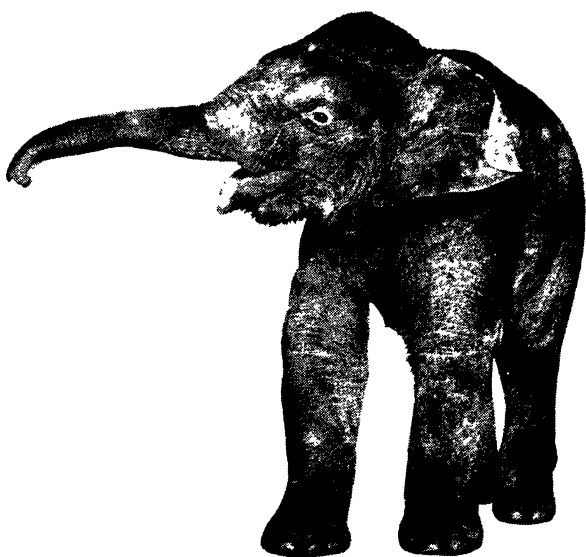
प्रकाशक: एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद - 461 001
मुद्रक: आदर्श प्रिंटर्स, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल - 462 011

12765
UNITED STATES OF AMERICA
(U.S.A.)
CUBA
BRAZIL
BOLIVIA
ALGERIA
TURKEY
U.S.S.R.
CHINA
INDIA
ARABIA
OMAN
CHAD
SUDAN
ZAIRE
MADAGASCAR
VIETNAM
PHILIPPINES
SRI LANKA
INDONESIA
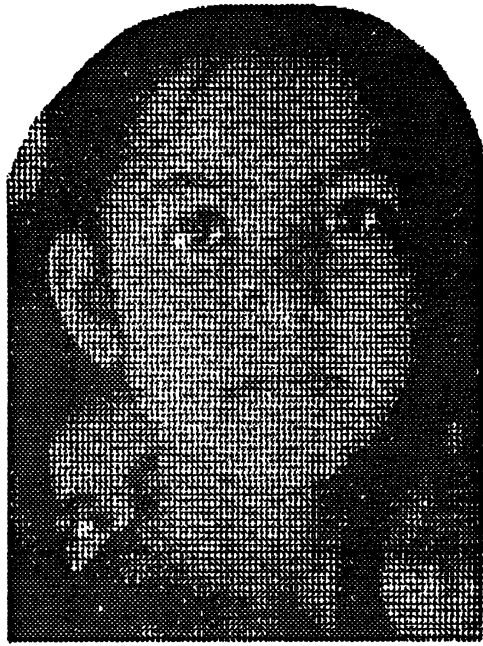
संपादनः
राजेश खिंदरी
रश्मि पालीवाल
सी.एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान

सहसंपादकः
माधव केलकर
दीपक वर्मा

चित्रांकनः
शिवेंद्र पांडिया

सहयोगः
टुलटुल विश्वास
जया विवेक

छायांकन :
5: रजनीकांत यादव
आवरणः आशा डिसूज़ा

मुखपृष्ठ पर संदर्भः
अनिता वैद्य

संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-1, सितंबर-अकटूबर 1994

संपादन एवं वितरणः
एकलव्य
कोठी बाज़ार,
होशंगावाद - 461 001 (म.प्र.)
फोनः 07574-2518

वार्षिक चंदा (6 अंक) : 35 रुपए

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित

सितंबर 1994

इस अंक में

संपादकीय

समाज हो या प्रशासन शिक्षकों से बड़ी-बड़ी अपेक्षाएं सभी करते हैं। इन अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए शिक्षकों को चाहिए कई तरह का समर्थन और सहयोग ताकि वे कक्षा में कुछ नया कर सकें। 'संदर्भ' शिक्षक साथियों की ओर सहयोग का हाथ बढ़ाने की एक छोटी-सी कोशिश है।

'संदर्भ' एक द्वैमासिक पत्रिका है, जिसका प्रकाशन मानव संसाधन मंत्रालय के एक प्रोजेक्ट के तहत किया जा रहा है। हमारा प्रमुख उद्देश्य माध्यमिक व उच्चतर माध्यमिक स्तर के शिक्षकों को विज्ञान और अन्य जुड़े हुए शैक्षिक मुद्दों पर ऐसी सामग्री उपलब्ध करवाना है जिसका उपयोग शिक्षण कार्यों में हो सके।

संदर्भ जैसी पत्रिका का प्रकाशन 'एकलव्य' संस्था के लिए एक तरह से अवश्यंभावी था। प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रमों में नवाचार के साथ-साथ पाठ्य-पुस्तक लेखन एवं शिक्षकों को प्रशिक्षण देना एकलव्य का प्रमुख
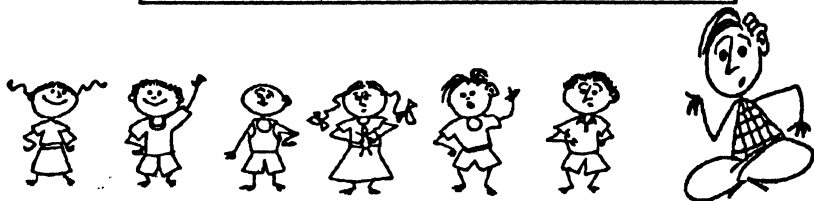
कार्य रहा है। एकलव्य के कार्यक्रम म. प्र. के 500 स्कूलों में चल रहे हैं। म.प्र. तथा प्रदेश से बाहर भी शिक्षकों एवं शिक्षा से जुड़े बहुत से समूहों ने इन प्रयासों में रुचि दिखाई है। हमने यह महसूस किया कि नवाचारों की कोशिशों को लेकर उन शिक्षकों के साथ भी ज़रूर संवाद करना चाहिए जो इन कार्यक्रमों के दायरे से बाहर हैं। इस तरह एकलव्य के प्रकाशनों की कड़ी में बाल-विज्ञान पत्रिका 'चकमक' और विज्ञान फीचर सेवा 'स्रोत' के साथ-साथ अब 'संदर्भ' भी जुड़ गया है।

प्रवेशांक में विषय सामग्री का चयन करते समय हम ने एक ओर जहां यह प्रयास किया है कि पाठ्यक्रम के विषयों को विस्तार और गहराई से समझा जाए, वहीं दूसरी ओर कुछ रुचिकर गतिविधियों, प्रयोगों एवं साहित्यिक सामग्री का भी समावेश किया गया है। इसके अलावा कक्षा में शिक्षकों के अनुभवों, अवलोकनों एवं विश्लेषणों पर भी हमने अपना ध्यान केंद्रित किया है।

संदर्भ के माध्यम से हम एक ऐसा मंच तैयार करना चाहते हैं जहां से शिक्षक और शिक्षा में रुचि रखने वाले अन्य सब अपने विचार, अनुभव और नए प्रयोग सबके सामने रख सकें। यह अंक इस दिशा में एक प्रारंभिक-सा प्रयास है। अगले अंको का रूप निखारने के लिए हमें आपके सहयोग की भी ज़रूरत है। किन विषयों पर गतिविधियां या प्रयोग सामग्री जुटाई जाए? कौन से विषय ऐसे हैं जिन्हें विस्तार से समझाने की ज़रूरत महसूस होती है। अगर इस सबके बारे में बता पाएं तो बहुत मदद मिलेगी।

और फिर आपके पास भी तो अनुभवों का एक खज़ाना है ही! उन्हें भी आप लिख भेजेंगे न...?

संपादक मंडल

संदर्भ

बहार आने का कारण

सुशील जोशी

कैसे तय होता है पौधे में कि फूल कब खिलने हैं? एक रोज़मर्रा घटना की गहराई से जांच-पड़ताल।
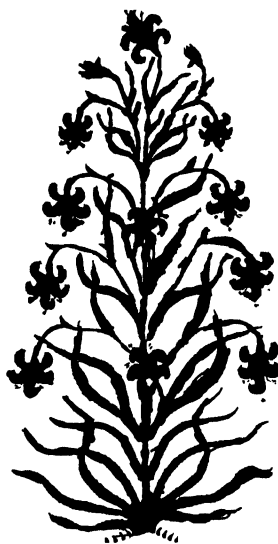
कई बार ऐसी साधारण-सी बातों में से इतने पेचीदा सवाल निकलते हैं कि दंग रह जाना पड़ता है। ऐसी ही एक सामान्य-सी बात है फूलों का खिलना। हमारे देखते-देखते पेड़-पौधे बड़े होते हैं और इनमें फूल खिलते हैं। है तो साधारण–सी बात, रोज़ की देखी हुई, मगर इसके बारे में सोचें तो उलझन बढ़ती जाती है। यह तो आपने भी देखा होगा कि हर पेड़-पौधे पर फूल आने का अपना एक समय होता है। आम-जामुन बसंत में बौराते हैं जबकि गेहूं और चना शरद ऋतु में। पलाश व गुलमोहर भरी गर्मी में फूलते हैं।

इसके अलावा कोई पौधा तो बीज से निकलने के दो-तीन महीने के अंदर फूलने लगता है जैसे गेहूं, धान, मक्का, आदि जबकि किसी-किसी को सालों लग जाते हैं। और किसी-किसी को सालों क्या दशकों लग जाते हैं - बांस के बारे में ज़रूर सुना होगा आपने।

तो यहां दो सवाल हो गए। पहला यह कि पेड़-पौधों को कौन बताता है कि चलो अब उमर हो गई फूल बनाना शुरू करो। दूसरे शब्दों में पौधे के अंदर

वह कौन-सी प्रक्रिया है जो एक हद तक समय गुज़रने और निश्चित विकास हो जाने के बाद फूल बनाने की घंटी बजाती है।

दूसरा सवाल यह है कि हर साल पौधों को कैसे पता चलता है कि फूलने का मौसम आ गया है। यानी वर्ष का एक निश्चित समय आ पहुंचा है अब फूल बनाना चाहिए।

आइए इन प्रश्नों के उत्तर खोजें।

फूल न आने से पूर्व तक की अवस्था को पौधों की किशोरावस्था कहा जाता है। फूल आने की स्थिति आ जाए तो कहा जाता है कि पौधा वयस्क या परिपक्व हो चुका है। जब तक पौधा (या पेड़) वयस्क न हो जाए तब तक कितने ही सही मौसम आकर चले जाएं फूल नहीं लगेंगे। मसलन आम को ही लें – बसन्त आता है मगर कम उम्र के आम के पेड़ों पर फूल नहीं लगते। ऐसा कैसे होता है?

उत्तर खोजने के लिए हम उन सब प्रयोगों के निष्कर्षों का सहारा लेंगे जो पिछली एक शताब्दी में दुनियाभर में कई वैज्ञानिकों ने बहुत मेहनत और मशक्कत करके किए हैं।

चूंकि सामान्य तौर पर पौधों को किसी प्रकार यह अंदाज़ लग जाता है कि वृद्धि का एक विशेष स्तर हासिल हो चुका है, अब फूल खिल सकते हैं; इसलिए हम कह सकते हैं कि उनमें इस बात का हिसाब रखने का कोई तरीका अवश्य होगा।

ऐसी भी होती हैं घड़ियां

इस बारे में अधिकतर वैज्ञानिकों का मत है कि फूलने की उम्र का निर्धारण पत्तियों की संख्या से होता है। जैसा कि सभी जानते हैं पानी, कार्बन डायऑक्साइड और सूर्य प्रकाश का इस्तेमाल करके पत्तियां ही भोजन बनाती हैं पूरे पौधे के लिए। इसलिए पत्तियों की कुल संख्या और सेहत से ही तय होता है कि पौधे या पेड़ में कितना भोजन बनाने की हैसियत है।

कोई पौधा फूले, उससे पहले ज़रूरी है कि पौधे में फूल का पोषण करने तथा बीज व फल का निर्माण करने के लिए पर्याप्त भोजन हो। आखिर फूलने की प्रमुख वजह तो बीज बनाना ही है न? फूल पौधे के प्रजनन का साधन है। इसलिए फूलों को खिलने की अनुमति तभी मिल सकती है जब पौधे में उसे लक्ष्य तक पहुंचाने यानी बीज बनाने तक की हैसियत हो। अर्थात पौधा जब वृद्धि के एक खास मुकाम तक पहुंच जाए तभी फूल खिल सकते हैं।

बहुत से सालाना उगने वाले पौधों के बारे में तो इतने पक्के तौर पर कहा जा सकता है कि इस वनस्पति के पौधों में जब तक पांच पत्ते नहीं आ जाएं तब तक फूल लग ही नहीं सकता। चाहे पौधे को अन्य सब अनुकूल स्थितियां मिल जाएं। ऐसे ही किसी वनस्पति में फूलों का लगना सात पत्तों के बाद ही शुरू हो सकता है। शायद बड़े पेड़ों में इतनी निश्चितता के साथ पत्तियों की संख्याओं के बारे में नहीं कहा जा सकता पर उनमें भी यह पता करने के लिए कि पेड़ के पास इतने सारे फूलों, उनसे बनने वाले फलों और बीजों के लिए पर्याप्त भोजन है कि नहीं, ज़रूर कोई तरीका होता होगा इसी तरह का।

पौधों के कई हिस्से प्रकाश के प्रति संवेदनशील होते हैं यह तो सब जानते ही हैं - कई फूलों का दिन को खिलना और रात को बन्द होना, कई पेड़-पौधों की पत्तियां रात को बन्द होते देखी ही होंगी आपने......। यह भी देखा गया है कि दिन में भी सूर्य के प्रकाश की दिशा में बदलाव के साथ-साथ पत्तियां थोड़ा-बहुत हिलती रहती हैं, उनका कोण बदलता रहता है।

पर मज़ेदार बात यह है कि अगर पौधे को बिल्कुल अंधेरे में रखा जाए तो भी एक निश्चित समय के अन्तराल पर उसकी पत्तियां अपनी दिशा बदलती रहती हैं जैसे कि उनके पास कोई घड़ी हो! इनमें से किसी में बदलाव 27 घंटों में होता है तो किसी में 22 घंटे में। पेड़-पौधों की इस अन्दरूनी

घड़ी के बारे में हम बहुत कम जानते हैं पर इतना तो कहा जा सकता है कि शायद पौधे को ऐसी घड़ियों से भी समय के गुज़रने और किशोरावस्था से वयस्क बन जाने का ख्याल लगता होगा।

गुल खिलाने की चाबी कहां?

अब मान लो कि पेड़ या पौधा वयस्क हो गया है, उसकी फूल लगने की उम्र हो गई है - तो फिर सवाल उठता है कि आखिर फूल लगने की यह प्रक्रिया नियंत्रित कहां से होती है। पौधे के कौन-से हिस्से में है इसकी बागडोर।

अभी भी इस बात को लेकर वैज्ञानिकों में काफी मतभेद हैं।

यह तो आप जानते ही हैं कि फूल, शाखाओं, टहनियों के सिरे (शीर्ष) पर लगते हैं। वैज्ञानिक यह समझने की कोशिश कर रहे हैं कि क्या यह शीर्षस्थ भाग फूल बनाने के मामले में स्वायत्त होता है या इसे शेष पूरे पौधे से कोई संकेत मिलता है कि चलो हो जाओ शुरू! इन दोनों बातों, स्वायत्तता व शेष पौधे से संकेत, के पक्ष में दलीलें भी हैं और प्रमाण भी। ऐसा प्रतीत होता है कि हर वर्ष शीर्ष की कोशिकाओं में जब एक निश्चित संख्या में विभाजन हो चुके होते हैं तब अपने आप वह फूल वाली स्थिति में पहुंच जाता है। ऐसा आभास मिलता है मानो शीर्ष की कोशिकाओं के विभाजन से कोई खास रसायन इकट्ठा हो रहा हो और जब उस रसायन की मात्रा एक विशेष हद से ज़्यादा हो जाए तो पौधे को फूल बनाने का संकेत मिलता है। इस समय यदि बाकी परिस्थितियां अनुकूल हों तो फूल खिल जाएंगे। बहरहाल यहां हम उन प्रयोगों के वर्णन में नहीं घुसेंगे जिनके माध्यम से इस गुत्थी को सुलझाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

ऊपर हमने कहा कि पौधा एक बार वयस्क अवस्था में पहुंच जाए तो फूल खिल सकते हैं। तो यह कैसे पहचाना जाए कि वयस्क अवस्था कौन-सी है? क्या पौधे की रचना में अन्य कोई परिवर्तन भी होते हैं, जिनसे हम कह सकें कि अमुक पौधा वयस्क अवस्था में है? इस सवाल का उत्तर 'हां' भी है और 'नहीं' भी।

पर इतना तो पक्का मालूम है कि वनस्पतियों में कई ऐसे रसायन पाए जाते हैं जो उनकी वृद्धि के नियामक होते हैं। इनमें से कुछ रसायन वैज्ञानिकों ने शुद्ध रूप में प्राप्त भी कर लिए हैं। इनसे प्रयोग करना संभव है। इन रसायनों के आधार पर ही वृद्धि की बारीकियों को समझना संभव हुआ है।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यही रसायन किसी न किसी तरह से अकेले-अकेले या श्रृंखला के रूप में वयस्कता को भी नियंत्रित करते हैं किन्तु प्रयोगों के परिणाम इतने विरोधाभासी हैं कि इस प्रक्रिया का कोई सामान्य चित्र बना पाना अभी तक तो संभव नहीं हुआ है। हां, यह

कई पौधों में वयस्क अवस्था में पहुंचने पर गौरतलब परिवर्तन होते हैं जबकि कई अन्य पौधों में ऐसे कोई अवलोकनीय परिवर्तन नहीं होते। मसलन अंग्रेज़ी आइवी की बेल (सिरपेंचे की लता) में किशोरावस्था तथा वयस्क अवस्था की तुलना करने पर बहुत से अन्तर दिखाई देते हैं:

क्र.	किशोरावस्था के लक्षण	वयस्क अवस्था के लक्षण
1.	तीन या पांच खण्डदार पत्ती	पूरी अण्डाकार पत्ती
2.	पत्तियों की जमावट एकान्तर	पत्तियों की जमावट सर्पिलाकार
3.	नई पत्तियों व तने में रंजक	रंजक अनुपस्थित
4.	तना रोएंदार	तना चिकना
5.	फूल नदारद	फूल मौजूद
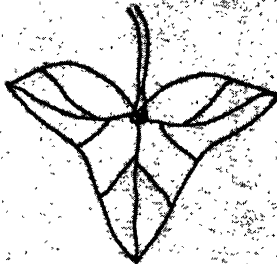
वयस्क होने के साथ इस पौधे की ऊपर चढ़ने की प्रवृत्ति में भी अंतर आता है। परन्तु उपरोक्त तुलना से यह न समझें कि इस या उस लक्षण की वजह से वयस्क अवस्था प्राप्त हुई। और वैसे भी ऐसे स्पष्ट अंतर बहुत कम प्रजातियों में पाए जाते हैं।

ज़रूर है कि एक बार वयस्क अवस्था आ जाने के बाद वापस किशोरावस्था में लौटने के उदाहरण बिरले ही हैं। यानी पौधों में अवस्था को स्थायित्व देने की भी कोई व्यवस्था ज़रूर है।

बहरहाल, वयस्क अवस्था आ गई, पौध या पेड़ फूलने को तैयार हैं, अब और क्या चाहिए? दूसरे शब्दों में क्या वयस्क होते ही फूल लगने लगेंगे या किसी अन्य कारक का भी नियंत्रण होता है इस पर? यह बात आम अनुभव की है कि कई पौधे ताउम्र फूल नहीं देते। खासकर सड़क किनारे, जहां यातायात ज़्यादा होता है, वे वृक्ष ठीक से फूलते नहीं। आखिर अब कौन रोक रहा है उन्हें बौराने से?

इस संबंध में कुछ रोचक प्रयोग हुए हैं जिनसे बात का कुछ हद तक खुलासा मिला है। आइए, कुछ प्रयोगों व उनके परिणामों पर नज़र डालें।

छोटे-बड़े दिनों का चक्कर

गार्नर और एलार्ड नामक दो वैज्ञानिकों ने सन् 1920 में सोयाबीन के साथ कुछ प्रयोग किए। उन्होंने पाया कि सोयाबीन की बिलोक्सी नामक किस्म की मज़ेदार बात यह है कि उसे बोने की तारीख कुछ भी हो, फूल लगभग एक ही समय पर आते हैं। अगर उसके कुछ पौधे देर से बोए जाएं तो भी वे सब के साथ ही खिलेंगे। यानी बोने से लेकर फूल खिलने की अवधि निश्चित नहीं है, कम-ज़्यादा हो सकती है। पर क्योंकि सब फूल एक-साथ खिलते हैं इसलिए कोई कारक ज़रूर है जो उन्हें नियंत्रित करता है।

उन्होंने इसी तरह के प्रयोग तम्बाकू की एक किस्म मैरीलैण्ड मैमथ के साथ भी किए। इसे जब गर्मियों में वाशिं ाटन में लगाया गया तो पौधा तो खूब बड़ा हो गया मगर फूल नहीं लगे। इसके विपरीत जब इसी पौधे की कलम जाड़े के दिनों में 'ग्रीनहाउस' में तापमान बढ़ाकर लगाई गई तो बहुत छोटे पौधों पर भी फूल लग गए। (पौधों-फसलों को प्लास्टिक या कांच की चादर से ढक कर उनके वातावरण को नियंत्रित किया जाता है - जैसे तापमान, आर्द्रता आदि। इसे ग्रीनहाउस कहते हैं।)

वास्तव में गार्नर और एलार्ड फूल के प्रयोग नहीं कर रहे थे। वे तो पौध संवर्धन (plant breeding) में रुचि के कारण प्रयोग में जुटे थे। परन्तु इस 'आकस्मिक' घटना, यानी मैरीलेण्ड के पौधे का जाड़े के दिनों में ग्रीनहाउस में फूल देना, को वे अनदेखा न कर सके

और फूल लगने, न लगने की बात को समझने में जुट गए। उन्होंने देखा कि तापमान और प्रकाश की तीव्रता का फूलने की क्रिया पर असर नहीं पड़ता, तब उन्होंने दिन की लंबाई की जांच की। इसके लिए उन्होंने सोयाबीन व तम्बाकू के पौधों को ही चुना। गर्मियों में इन्हें लगाकर कुछ पौधों को तो खुले में ही रहने दिया। कुछ पौधों को अलबत्ता वे रोज़ दिन के समय, अंधेरी झोपड़ी में रख देते थे। यानी इन पौधों के लिए उन्होंने दिन को कृत्रिम रूप से छोटा कर दिया।

उन्होंने पाया कि इस तरह कृत्रिम रूप से छोटे दिन का प्रभाव यह हुआ कि सोयाबीन और तम्बाकू दोनों पर ही फूल खिल गए। इसके आधार पर उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि इन पौधों पर फूल तभी खिलते हैं जब दिन की लंबाई (यानी प्रकाश अवधि) काफी छोटी हो। प्राकृतिक रूप से यह परिस्थिति सितंबर में बनती है। और इसीलिए ये पौधे सितंबर में फूलने में आनाकानी नहीं करते।

सोयाबीन और तंबाकू जैसे पौधों को छोटे दिन के पौधे कहा जाने लगा क्योंकि इन पौधों में फूल आने के लिए एक सीमा से छोटे दिन की ज़रूरत होती है। इसके विपरीत लंबे दिन के पौधे उन्हें कहा गया जिन्हें एक हद से ज़्यादा बड़े दिन ज़रूरी हैं। बहुत से पौधे ऐसे भी हैं जिन में फूल खिलने की शुरुआत दिन की लंबाई से तय नहीं होती। ये उदासीन पौधे कहलाते हैं।

गार्नर एवं एलार्ड ने अपने प्रयोगों में ताप, प्रकाश तीव्रता, आर्द्रता, मिट्टी में पोषक तत्व, मिट्टी में नमी आदि सभी कारकों का अध्ययन किया और पाया कि इनसे फूलों के खिलने पर कोई असर नहीं पड़ता। इस सबके बाद ही उन्होंने प्रकाश अवधि के प्रभाव का अध्ययन किया।

अंधेरा या रोशनी

आज भी हमारी समझ मोटे-मोटे तौर पर वही है कि फूलों के खिलने में दिन-रात की लम्बाई का हाथ है। परन्तु एलार्ड और गार्नर के प्रयोगों और निष्कर्षों के कई साल बाद एक और चीज़ जानने को मिली जिससे वह समझ थोड़ी-सी बदली है। एलार्ड और गार्नर ने माना था कि फूल खिलने का संकेत दिन की लम्बाई यानी प्रकाश की अवधि पर निर्भर करता है। परन्तु सन् 1938 में किए गए कुछ प्रयोगों से साबित हुआ कि यह संकेत दिन पर नहीं, बल्कि रात पर निर्भर करता है। यानी प्रकाश की नहीं परन्तु अंधकार

की अवधि से मिलता है फूल खिलने का संकेत।

स्वाभाविक है मन में सवाल उठेगा कि इन दोनों में क्या अन्तर है, यह तो एक ही बात हुई। परन्तु वास्तव में ये दोनों बातें एकदम अलग हैं। संकेत अंधकार पर निर्भर करता है-इसका क्या अर्थ है, छोटी-रात-बड़ी-रात के पौधे किन्हें कहते हैं, क्या सिर्फ दिन-रात का ही प्रभाव पड़ता है फूलों के खिलने पर,..... यह सब बातें अब अगले अंक में।

(सुशील जोशी - विज्ञान एवं पर्यावरण विषयों पर सतत लेखन। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से गहरा जुड़ाव।)

इस लेख में साज-सज्जा के लिए इस्तेमाल किए गए चित्र ताजमहल, आगरा और शालीमार बाग, लाहौर की इमारतों पर पत्थरों से की गई सजावट का काम और कपड़े पर की गई कशीदाकारी से लिए गए हैं। ये मुग़ल कला के बेहतरीन नमूने हैं।

● ● ● ● ●

अद्‌भुत उल्लू

इन चित्रों को ध्यान से देखकर बताने की कोशिश कीजिए कि दोनों में से कौन-स चित्र उल्लू के मुंह का है? क्या कहा ... बता पाना मुश्किल है! शुरुआत में हम भी परेशान हो गए थे लेकिन फिर गौर से देखा तो मालूम हुआ।

इस पिग्मी उल्लू को प्रकृति ने दुश्मनों से बचाव का अनोखा हथियार दिया है पिग्मी उल्लू के सिर के पीछे रंगीन पंखों से ऐसी आकृतियां बनी होती हैं कि लगत
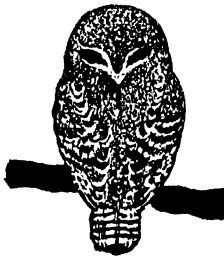
है मानो आंखें और चोंच बनी हों और उल्लू हमारी ओर देख रहा हो। अब आप ही बताइए उल्लू पर पीछे से हमला बोलने वाला भी उलझन में फंस जाएगा न। अगर कोई घूरकर देख रहा

हो तो चुपके से उस पर हमला नहीं बोला जा सकता, यह सोचकर शिकारी शाय चुपचाप आगे बढ़ जाएगा, है न?!

(सेंक्चुरी पत्रिका रे

आजकल हर कहीं कम्प्यूटर के बारे में सुनने को मिलता है। इसमें क्या होता है, कैसे काम करता है, उससे काम लेने के लिए हमें क्या-क्या करना पड़ता है, कुछ प्रारंभिक जानकारी।

कम्प्यूटर : एक अनोखी मशीन

अमिताभ मुखर्जी
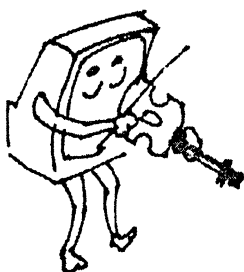
प्राय: कहा जाता है कि आज का दौर 'कम्प्यूटर-युग' है। अमरीका आदि विकसित देशों में तो शायद ही आम ज़िन्दगी का कोई ऐसा पहलू हो जो इस से अछूता है। वहां बैंकों में लेन-देन कम्प्यूटर के ज़रिए होता है, दुकानों में हिसाब कम्प्यूटर से किया जाता है, इसके द्वारा बनाए गए चित्र हर जगह देखने को मिलते हैं, यहां तक कि कम्प्यूटर रचित संगीत भी सुनने को मिलता है। अपने देश में कम्प्यूटर का उपयोग अभी इतना नहीं फैला है। फिर भी हम में से कई लोगों ने कम्प्यूटरीकृत रेल आरक्षण का लाभ उठाया होगा। 'सुरभि' जैसे कार्यक्रमों में कम्प्यूटर द्वारा बनाए गए चित्र देखने को मिलते हैं। ऐसे चित्र कितने जीवन्त होते हैं, यह भी विदेशी फिल्म 'जुरासिक पार्क' में हम में से कुछ लोगों ने देखा होगा। कम्प्यूटर का एक विशेष भारतीय उपयोग – कम्प्यूटर द्वारा निकाली गई जन्मपत्री! समय के साथ-साथ कम्प्यूटरों का उपयोग और भी बढ़ेगा व व्यापक होगा। इसलिए ज़रूरी है कि इनके बारे में कुछ मोटी-मोटी जानकारी हम सब हासिल करें। क्या आपने कभी नज़दीक से कम्प्यूटर देखा है? नहीं! हो सकता है कि अगले कुछ सालों में आप भी इसका इस्तेमाल करने लगें।

आखिर कम्प्यूटर है क्या ?

मोटे तौर पर देखा जाए तो कम्प्यूटर एक मशीन है, जो बहुत तेज़ी से जोड़-घटाना, गुणा-भाग कर सकती है। कितना तेज़? यूं समझ लीजिए कि यह एक सेकंड में एक लाख जोड़ कर लेता है। इससे भी कहीं ज़्यादा तेज़ हैं सुपर-कम्प्यूटर, लेकिन अपने लिए तो यही काफी है।

कम्प्यूटर है तो बहुत तेज़, लेकिन वह अपनी तरफ से कुछ नहीं कर सकता। ठीक वही करता है जो हम कहते हैं।यानी हम उसे निर्देश देते हैं और उनके मुताबिक वह काम करता है। अब यहां पर एक समस्या खड़ी हो जाती है।

मान लीजिए घर के खर्चे का हिसाब कम्प्यूटर से करना है। हम एक-एक कर के आटा, दाल, चावल आदि की कीमतों से उनकी खरीदी गई मात्रा को गुणा करते हैं और इन आंकड़ों को जोड़ते जाते हैं। जैसे "30 अखबार, 1.50 रुपए प्रति अखबार" बराबर 45.00 रुपए।"अब इस गुणा को करने में कम्प्यूटर को एक सेकंड का हज़ारवां भाग भी नहीं लगेगा। लेकिन हर कदम पर क्या करना है यह तय करके निर्देश देने में हमें कई सेकंड लग जाएंगे। तो ऐसे कम्प्यूटर की तेज़ी का फायदा ही क्या हुआ? (इस तरह काम करने वाली मशीनें उपलब्ध हैं, उन्हें केल्क्युलेटर कहते हैं।)
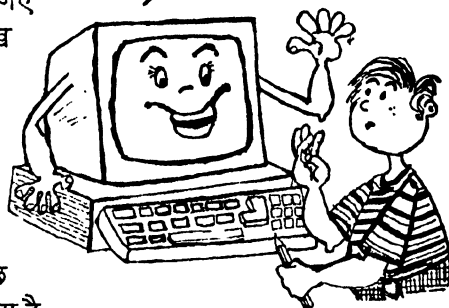
प्रोग्रामिंग (programming)

कम्प्यूटर और केल्क्युलेटर में मुख्य अन्तर है - प्रोग्रामिंग। प्रोग्राम शब्द का अर्थ है कार्यक्रम। कम्प्यूटर प्रोग्राम सही मायने में एक कार्यक्रम है कम्प्यूटर के लिए। यानी यह निर्देशों का एक क्रमबद्ध सिलसिला है, जो शुरू में ही कम्प्यूटर को दे दिया जाता है, जैसे:

1. दी गई पहली संख्या लो। (यह अखबारों की संख्या है।)
2. क्र.1 की संख्या को 1.50 से गुणा करो। इस जबाव को याद रखो।

3. दी गई दूसरी संख्या लो। (यह खरीदी गई शक्कर की मात्रा है।)
4. क्र. 3 की संख्या को 16.00 से गुणा करो। जवाब याद रखो।
5. क्र.2 और क्र.4 की संख्याओं को जोड़ो और उनका जोड़ याद रखो।

कम्प्यूटर के प्रोग्राम लिखने की प्रक्रिया प्रोग्रामिंग कहलाती है। यह अपने आप में एक कला मानी जाती है – आखिर अच्छा कार्यक्रम बनाना आसान नहीं है।

ऊपर दिए गए उदाहरण में एक और बात गौर करने लायक है। इसमें यह समझा गया है कि दी गई संख्याएं (यानी कि अखबारों की संख्या, शक्कर का वज़न इत्यादि) एक के बाद एक क्रम से कम्प्यूटर को उपलब्ध रहेंगी। 'दी गई संख्याएं' इसके लिए अंग्रेज़ी शब्द है डेटा या डाटा (data)। ज़ाहिर है कि प्रोग्राम और डाटा दोनों ही कम्प्यूटर को शुरू में ही मिल जाने चाहिए।
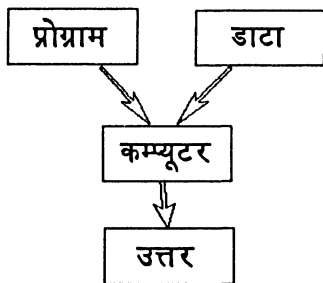
इस उदाहरण में निर्देशों का सिलसिला प्रोग्राम है और बाज़ार-दरों की सूची डाटा।

कम्प्यूटर के कलपुर्ज़े

एक कम्प्यूटर के डिब्बे के अन्दर क्या-क्या कलपुर्ज़े होते हैं, इसकी विस्तार से चर्चा तो हम यहां पर कर नहीं सकते। पर मोटी-मोटी कुछ बातें हैं, जो ऊपर के उदाहरण से उभरती हैं। हर कम्प्यूटर की बनावट में तीन तरह की चीज़ें ज़रूर होंगी।

1. वह हिस्सा जहां डाटा पर जोड़-घटाना आदि का काम (अंग्रेज़ी में प्रोसेसिंग) किया जाता है। इस हिस्से को **प्रोसेसर** (processor) कहते हैं। अक्सर एक कम्प्यूटर में एक से ज़्यादा प्रोसेसर होते हैं। पर उनमें एक सबसे महत्वपूर्ण होता है जिसे सेंट्रल प्रोसेसिंग यूनिट (CPU) कहते हैं। यही है कम्प्यूटर का 'दिमाग'।

2. **स्मृति** (memory): हमने ऊपर देखा है कि कई बार हमें कम्प्यूटर को कहना पड़ता है 'याद रखो'। याद रखने का काम जिस हिस्से में होता है, उसे कम्प्यूटर की याद या स्मृति कहते हैं।

कुछ संख्याओं की ज़रूरत सिर्फ गणना की अवधि तक ही होती है, एक कदम आगे बढ़ा लेने के बाद इन्हें याद रखना ज़रूरी नहीं होता। इन के लिए

कम्प्यूटर प्रोग्राम
डाटा
क्र.
मात्रा
x
दर
y
1
30
1.50
2
5
16.00
3
...
...
शुरू
क्रमांक = 1
कुल जोड़ = 0
इस क्रमांक की वस्तु की मात्रा लो
x
इसी क्रमांक की वस्तु की दर लो
y
दोनों संख्याओं को गुणा करो
z = x * y
z को कुल जोड़ में जोड़ो
आगे और डाटा है?
यदि हां, तो
अगले क्रमांक पर चलो
उत्तर = कुल जोड़
काम समाप्त
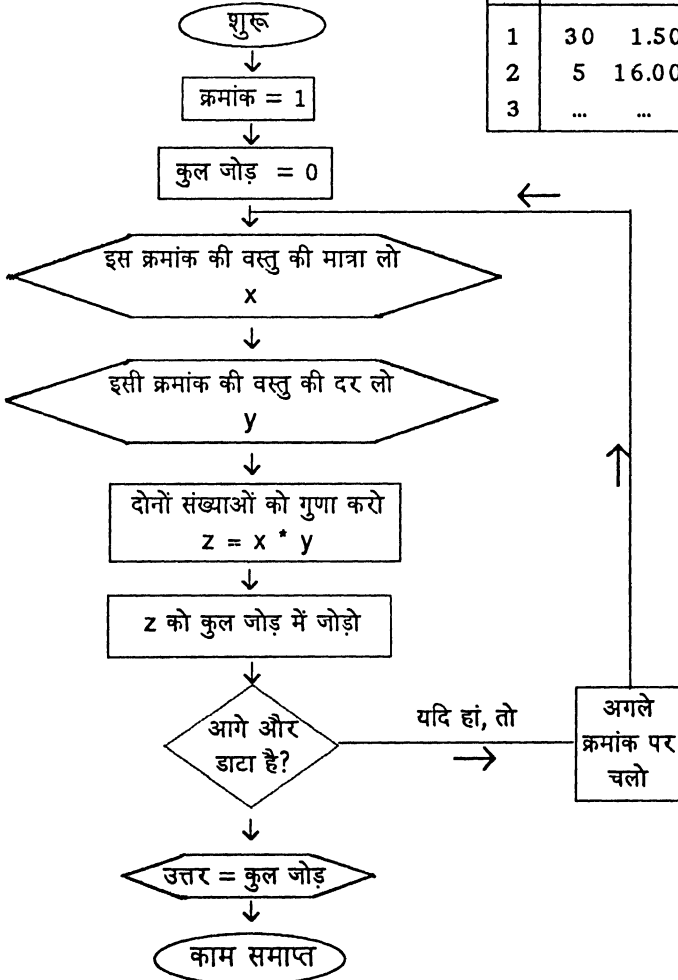
चाहिए छोटी अवधि की स्मृति (short term memory)। कुछ बातें ऐसी हैं जिनको देर तक याद रखना है – इनके लिए चाहिए लम्बी अवधि की स्मृति (long term memory)।

3. हम यह मान कर चल रहे हैं कि हम किसी तरह से प्रोग्राम और डाटा कम्प्यूटर के अंदर पहुंचा देंगे। अतः बाहर से अन्दर भेजने का कोई ज़रिया चाहिए। आमतौर पर टाइपराइटर जैसी चाबियां (key-board) यह काम करती हैं। साथ ही, कम्प्यूटर ने जो उत्तर निकाला वह भी हम तक पहुंचना चाहिए – यानी अन्दर से बाहर भेजने का भी कोई ज़रिया चाहिए। आमतौर पर यह काम टी.वी. के पर्दे जैसा एक पर्दा करता है। अगर यह जानकारी कागज़ पर चाहिए तो एक छापने वाली मशीन (printer) को इस्तेमाल किया जाता है।
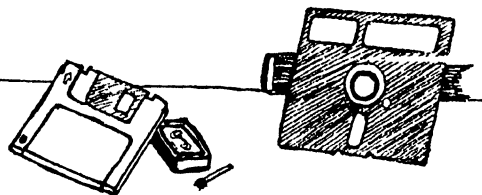
4. भंडारण माध्यम (storage media): उपरोक्त तीन हिस्सों के बिना कोई कम्प्यूटर चल ही नहीं सकता। परन्तु व्यावहारिक कम्प्यूटरों में भंडारण माध्यमों की भी ज़रूरत होती है। एक तरह के गोदाम जिनमें बहुत सारी चीज़ें भरी जा सकें और अगर ज़रूरत हो तो लम्बे समय तक रखी जा सकें। किसी एक प्रोग्राम को अगर हर बार चाबियों के ज़रिए इनपुट (input) करना पड़े तो बहुत समय नष्ट होगा। जैसे घर के खर्चे का हिसाब तो हर महीने एक ही तरह से किया जाता है। सिर्फ बाज़ार दरों और चीज़ों की मात्रा में बदलाव आ सकता है। यानी हर महीने डाटा अलग होता है, पर प्रोग्राम वही। ज़ाहिर है कि इस प्रोग्राम को किसी पक्की कॉपी में लिखना चाहिए – ऐसी कॉपी जिसे कम्प्यूटर खुद पढ़ सके। यही काम है भंडारण माध्यमों का। भंडारण के लिए बहुत से माध्यम उपलब्ध हैं जिनमें सबसे लोकप्रिय है फ्लॉपी डिस्क (floppy)।

एक तो ऐसे भंडारण माध्यम लम्बी अवधि की स्मृति का काम करते हैं। डाटा, प्रोग्राम, ... आदि को इनमें काफी लम्बे समय के लिए स्टोर किया जा सकता है। इनमें बहुत थोड़ी-सी जगह में बहुत सारी सामग्री भरी जा सकती है। 250-300 पन्नों की एक अच्छी-खासी किताब एक फ्लॉपी पर

आ जाएगी और फिर भी उसमें जगह बचेगी।

और दूसरा, इनपुट-आउटपुट के काम भी आते हैं ये भंडारण माध्यम। यानी कि टाईप करने के बजाय कम्प्यूटर इनमें भरा हुआ डाटा, प्रोग्राम आदि पढ़ लेता है और वह भी बहुत ही तेज़ी से। साधारण इनपुट-आउटपुट की प्रक्रिया से यह हज़ारों गुना तेज़ होता है। कम्प्यूटर के विभिन्न अंगों का आपसी सम्बन्ध नीचे के चित्र में दर्शाया गया है। संख्याओं और निर्देशों के आने-जाने के रास्ते तीर से दिखाए गए हैं। आधुनिक छोटे कम्प्यूटरों में CPU और स्मृति एक ही डिब्बे में होते हैं। यही है कम्प्यूटर का शरीर।
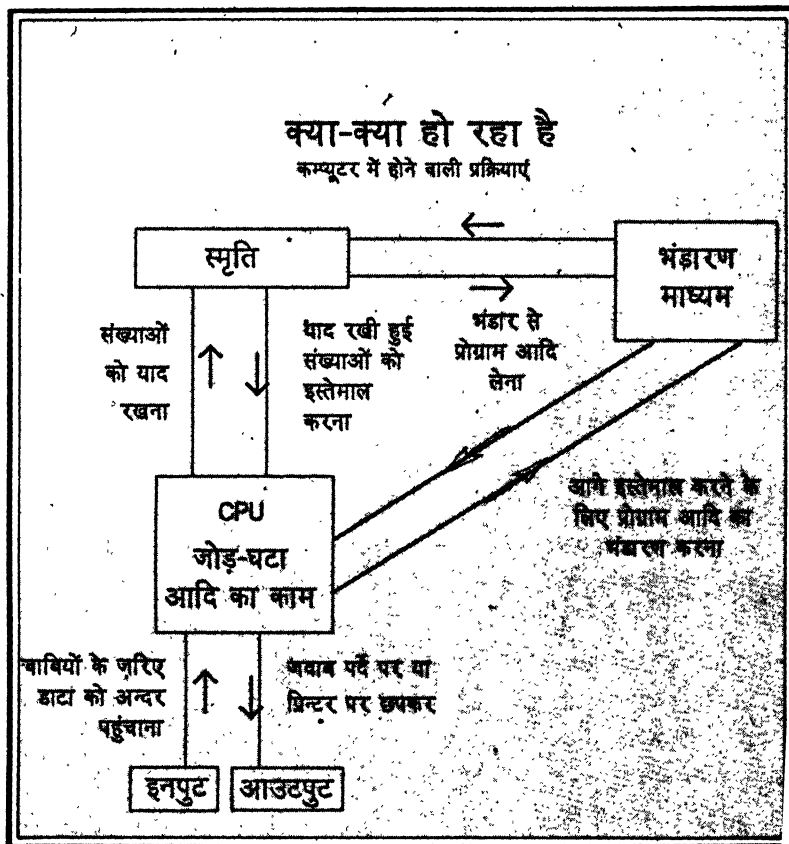
अपना दिमाग - कम्प्यूटर?

कम्प्यूटरों के आने से और कम्प्यूटर-विज्ञान के विकास से हमें अपने दिमाग और उसके अन्दर होने वाली प्रक्रियाओं को देखने का एक नया नज़रिया मिला है। इस दृष्टि से देखें तो मानव-मस्तिष्क एक चमत्कारी कम्प्यूटर है, जिसके मुकाबले का यांत्रिक कम्प्यूटर आज तक नहीं बना है। ठीक है, तेज़ जोड़-घटाने में हम मशीन से मात खा जाते हैं। परन्तु आकृतियों की पहचान, दृश्यों के विश्लेषण आदि में अपना दिमाग कहीं आगे है। हमारे इस अपने कम्प्यूटर के कलपुर्ज़े क्या हैं?

सी.पी.यू. : मस्तिष्क के अन्दर

स्मृति : मस्तिष्क के अन्दर

इनपुट : आंखें, कान, नाक, जीभ, चमड़ी

आउटपुट : मुंह, हाथ, पैर, मांसपेशियां

भंडारण माध्यम : कुछ हद तक तो यह काम दिमाग के अंदर ही हो जाता है। उसके बाद हम बाहर के माध्यम इस्तेमाल करते हैं: बही-खाता, कॉपी....

कम्प्यूटर के विविध उपयोग

कम्प्यूटर किन-किन विविध कामों में इस्तेमाल होते हैं, इसकी बात हमने शुरू में की थी। पर आप कहेंगे यदि कम्प्यूटर केवल जोड़-घटाना, गुणा-भाग करने वाली मशीन है, तो यह चित्र कैसे बनाता है? किताबें छापने में इसका उपयोग कैसे होता है? यह संगीत की रचना कैसे कर सकता है? वास्तव में कम्प्यूटर द्वारा चित्र बनाने के लिए इस पूरे काम को संख्याओं में ढालना होगा। इसी तरह हम टाइपिंग में कम्प्यूटर की

मदद ले सकते हैं क्योंकि इस काम को संख्याओं के रूप में समझा जा सकता है। कम्प्यूटर अपने स्तर पर केवल संख्याओं पर ही काम करता है। इतना ही नहीं वो भी सिर्फ दो संख्याओं (शून्य और एक) में ही सब कुछ ढालकर काम कर सकता है कम्प्यूटर। यह तो प्रोग्रामिंग का कमाल है कि चित्र बनाना या टाइपिंग जैसे काम को हज़ारों या लाखों जोड़-घटाना के सवालों में रूपान्तरित किया गया है। इसमें बहुत से लोगों की कड़ी मेहनत छिपी हुई है।

आजकल तरह-तरह के उपयोगों के लिए पैकेज मिलते हैं। ये वास्तव में प्रोग्राम हैं। इनका फायदा यह है कि प्रोग्रामिंग के कठिन पहलुओं से उपयोग-कर्त्ता का कोई वास्ता नहीं रहता। बल्कि कई तरह के उपयोगों में तो उपयोग-कर्त्ता को प्रोग्रामिंग आने की बिल्कुल भी ज़रूरत नहीं। इनमें प्रमुख है वर्ड-प्रोसेसिंग, जो शायद भारत में कम्प्यूटरों का सबसे बड़ा उपयोग है। भले ही टाइपराइटर पर आप की उंगलियां न चलती हों, पर वर्ड-प्रोसेसिंग आप भी कर सकते हैं। गलती हुई है? सुधार लीजिए। जब कुछ ठीक लगे तब उसे छापिए। साधारण टाइपराइटर से ज़्यादा सजी हुई छपाई मिलेगी। पहले यह सुविधा सिर्फ अंग्रेज़ी में उपलब्ध थी, अब हिन्दी के भी कई पैकेज आए हैं।

सिर्फ टाइपिंग नहीं, उससे एक कदम आगे बढ़कर हैं वे पैकेज जो किताबें छापने में काम आते हैं। ये आम तौर पर पेशेवर प्रकाशक इस्तेमाल करते हैं। इनकी छपाई कैसी होती है? भई, आपके सामने है। जी हां, यह पत्रिका भी कम्प्यूटर पर ही बनी है।

(अमिताभ मुखर्जी दिल्ली विश्वविद्यालय में भौतिक-शास्त्र पढ़ाते हैं।)
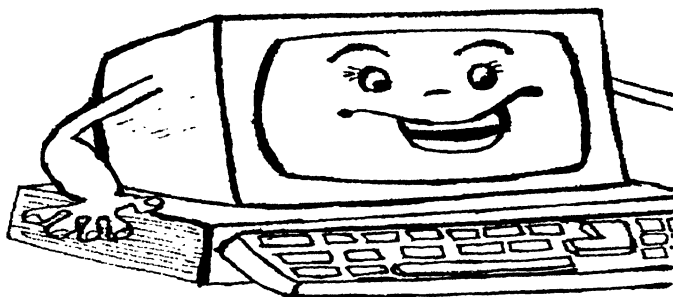
अपने अनुभव लिखने के बारे में

शिक्षक अगर प्रत्येक बच्चे के प्रयासों को बारीकी से देखे और लिखे तो वह शिक्षक के रूप में ज्यादा प्रभावी बन सकता है।

मेरे 8-9 महीने के पढ़ाने के अनुभव के दौरान एक अभ्यास ने मेरी बहुत मदद की। वह था दिनभर के काम की समीक्षा व अगले दिन की पूर्व तैयारी। दरअसल जहां मैं पढ़ा रही थी वहां कोई भी ऐसा नहीं था जिसके साथ मैं अपने अनुभव बांट सकूं या चर्चा कर सकूं। ऐसे में मैंने अपने अनुभवों को लिखना शुरू किया। यह मेरे लिए एक अमूल्य अनुभव रहा – इसलिए नहीं कि मैंने कुछ लिखा था, पर इसलिए कि मुझे गहराई से सोचने का मौका मिला कि मैंने दिनभर में कक्षा में क्या किया। इसके बाद ही मैं आगे के 2-3 दिन के बारे में ठीक से सोच पाती थी।

जब मैंने लिखना शुरू किया तो रोज़ की कक्षा के बारे में कुछ इस तरह के सवालों के जवाब लिखती – मैंने क्या किया या करने की कोशिश की और बच्चों के साथ इसका क्या अंजाम हुआ? यानी कक्षा में कुल मिलाकर क्या और कैसे हुआ। पर जल्दी ही मुझे लगने लगा कि इन सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण भी कुछ था। आखिर मेरा काम तो बच्चों को सीखने में मदद करना था! तो फिर मेरे लिए बच्चों के सीखने के प्रयासों, उन्होंने क्या सीखा और कितना सीखा, इसकी समीक्षा करना ज़्यादा आवश्यक होना चाहिए। तबसे मैंने इस बात की समीक्षा शुरू की कि हर बच्चे ने क्या किया और कैसे किया। जब मैंने कक्षा प्रक्रिया को इस नज़रिए से देखना शुरू किया तो मुझे सीखते हुए बच्चों का ध्यान से अवलोकन करने की ज़रूरत महसूस होने लगी। जैसे-जैसे मैं

यह अवलोकन करती वैसे-वैसे मेरे लिए और ज़्यादा अवलोकन करने की ज़रूरत भी बढ़ती जाती। बच्चों को इस प्रकार ध्यान से देखने से मुझे कई सूत्र, सुझाव एवं संकेत मिले – बच्चों को क्या सीखना है, उन्हें क्या सिखाना है और उसे सिखाने का सबसे अच्छा तरीका व माहौल क्या है।

इस अनुभव के आधार पर बाद में शिक्षकों के साथ हुई मुलाकातों व संवादों में, मैंने उनके सामने भी बच्चों के बारे में रपट लिखने का प्रस्ताव रखा। एक बार मैंने दो शिक्षकों को अपने काम की समीक्षा इसी प्रकार करने को कहा। मैं इससे पहले तीन महीने से इन शिक्षकों व बच्चों के साथ लगभग लगातार सम्पर्क में थी।

जब दोनों शिक्षकों ने 25 बच्चों पर अपनी रिपोर्ट पढ़ी तो उसे सुनने व समझने में हम सब को पूरा एक दिन लग गया। उन रिपोर्टों में जो सामने आया उससे मैं अत्यंत अभिभूत हो गई। जैसे-जैसे समीक्षा आगे बढ़ी, हर बच्चे का व्यक्तित्व ज़्यादा स्पष्ट रूप से सामने आया और यह व्यक्तित्व बड़े प्यार से खींचा गया प्रतीत होता था। मैंने उस एक दिन में बच्चों के बारे में इतना कुछ जाना और सीखा जितना उससे पहले बच्चों के साथ अपने 4-5 सीधे सम्पर्कों के दौरान नहीं जाना था। मेरे मन में उन शिक्षकों के प्रति इज़्ज़त भी बहुत बढ़ गई।

इस से मेरी यह प्रबल राय बनी है:

(क) हमें शिक्षक की हैसियत से ऐसी रिपोर्ट लिखनी चाहिए जो हमारे काम के लिए उपयोगी हो व उसमें मदद करे। रिपोर्ट औरों के सामने यह सिद्ध करने के लिए न हो कि हम अपना काम ठीक से कर रहे हैं।

(ख) हमारी रिपोर्ट के केन्द्र में बच्चे, प्रत्येक बच्चे का व्यक्तित्व होना चाहिए। न कि यह बात कि हमने क्या किया और क्या नहीं किया। रिपोर्ट व्यक्तित्व-विहीन, बच्चों के झुण्ड के बारे में भी नहीं होनी चाहिए। बच्चों के बारे में सोचते समय यदि हम उन्हें एक झुण्ड की तरह देखें और समझें तो

बच्चों के बारे में सोचते समय यदि हम उन्हें एक झुण्ड की तरह देखें और समझें तो हम वे आवश्यक बातें नहीं पहचान सकते जिनको हमें सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने का आधार बनाना चाहिए।

हम वे आवश्यक बातें नहीं पहचान सकते जिनको हमें सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने का आधार बनाना चाहिए।

(ग) हम शिक्षकों को बहुत से ऐसे मौकों की ज़रूरत होती है जिनमें हम बच्चों के बारे में अपने अनुभव बांट सकें। हम उस सब के बारे में बातचीत कर सकें जो हम महसूस करते हैं, खासकर तब जब बच्चे सीख रहे होते हैं और हम सीखने में उनकी मदद कर रहे होते हैं। बच्चों के बारे में अनुभव बांटना बच्चों की ठोस एवं गम्भीर समझ बनाने के लिए, अपने आपको शिक्षक के रूप में बेहतर ढंग से समझने के लिए व सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को भी ज़्यादा समझने के लिए बहुत आवश्यक है।

औरों के अनुभव सुनकर, अपने अनुभव औरों के सामने रखकर, और अनुभवों की समानता देखकर कुछ ठोस निष्कर्षों पर भी पहुंचना संभव होता है। यह भी समझ बनती है कि सिखाने की प्रक्रिया एक निरन्तर प्रयोग है, जो कभी तो सफल हो जाता है और कभी नहीं। और प्रयोग का सफल हो जाना भी उतना ही सही है जितना उसका विफल रहना। क्योंकि दोनों परिस्थितियों में बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

इसी तरह सीखते-सीखते हम बेहतर और ज़्यादा बेहतर होते जा सकते हैं। यदि हम अपने अनुभव नियमित रूप से साथ बैठकर न बांट सकें तो हम ऐसे अनुभवों को लिख और पढ़कर तो बांट ही सकते हैं। अनुभवों को बांटने के लिए लिखना, व्यवस्थित करना व एक दूसरे को नियमित रूप से भेज पाना; आमने-सामने हुई बातचीत जितना अच्छा तो नहीं है और मुश्किल भी है पर इसे करना बहुत ज़रूरी है।

बच्चों के बारे में इस तरह के रिपोर्ट लेखन से बच्चा क्या सीखने की कोशिश कर रहा था, किस तरह से कोशिश कर रहा था, आदि प्रश्नों के बारे में मैं सोच पाई और इससे मैंने एक अमूल्य बात सीखी। ऐसी बात जिससे मैं अभी तक ओत-प्रोत हूं। जब मैंने शिक्षक की तरह काम करना शरू किया तब मैं सिर्फ अपने बारे में सजग थी कि मैंने कक्षा में क्या किया, कक्षा के बाहर क्या किया, तैयारी कैसे की। पर अब मैं ज़्यादा और ज़्यादा सचेत होती जा रही हूं – बच्चे की अहम् भूमिका के बारे में। आखिर सीखने वाला तो बच्चा ही है और उसकी भूमिका सबसे अहम् है।

उषा राव

(कर्नाटक के कुछ गांवों में चले एक शैक्षणिक प्रयोग की कार्यकर्ता।)

हमने पढ़ाया और बच्चों ने पढ़ा। क्या बच्चों ने वही समझा जो हम उन्हें समझाना चाह रहे थे?

कुछ ऐसी बातें हैं जिन पर सब हामी भरते हैं। लेकिन उन पर अमल हो पा रहा है या नहीं – यह निश्चित करने की हमारी निष्ठा बड़ी कमज़ोर बनी रहती है।

ऐसी ही एक बात है कि बच्चों की उम्र और उनकी समझने की क्षमता के अनुसार पाठ्यक्रम व पाठ्य-पुस्तक बनर्ना चाहिए।

इस बात को अमल में लाने के लिए यह निहायत ज़रूरी है कि हम पता लगा सकें कि बच्चों को क्या समझ आ रहा है? कक्षा में पाठ पढ़ाते समय हम बच्चों से पूछते हैं, "क्यों भई, आया समझ में?" और एक सामूहिक गूंज उठती है "जी सर"! कभी हिसाब रख कर देखना चाहिए कि हमने कितनी बार बच्चे

से यह पूछा और कितनी बार उन्होंने 'जी' में उत्तर दिया और आखिर कितनी बार ऐसा हुआ कि कुछ बच्चे बोले, "नहीं सर, समझ में नहीं आया।"

परीक्षा का जो नाटक हो चला है तो अब परीक्षा से भी यह जांचना आसान नहीं है कि बच्चे दरअसल क्या समझ रहे हैं। पर बच्चों के साथ दोस्ती भरे, सहज और अनौपचारिक माहौल में बातें करने से हम ज़रूर उनके मन को कुछ बेहतर समझ सकते हैं। चलिए ऐसी कुछ बातचीतों के उदाहरण पढ़ें।

दिन, रात और ऋतुएं

यहां हम जो बातचीत प्रस्तुत कर रहे हैं वह होशंगाबाद (म.प्र.) के पास के एक गांव के स्कूल में हुई थी। हम भूगोल के पाठ्यक्रम के कुछ बड़े महत्वपूर्ण विषयों पर एक सर्वेक्षण कर रहे थे। विषय थे – दिन-रात का होना, पृथ्वी पर ऋतु परिवर्तन, अक्षांश-देशांश रेखाएं, पृथ्वी की गतियां। हमने 6वीं व 10वीं कक्षा के बच्चों को एक लिखित प्रश्न-पत्र दिया हल करने के लिए। दो दिन बाद हम उन्हीं बच्चों के साथ बैठे और यह बातचीत की।

कक्षा 6वीं के बच्चों के साथ बातचीत

हम बाहर जाकर खुले में बैठे। एक गोल घेरा बना कर हमने कुछ गपशप की, हंसी मज़ाक हुआ। फिर हमने पूछा:

"अच्छा, यह बताओ कि दिन होता है फिर रात हो जाती है। फिर से दिन होता है। ऐसा क्यों?"

"जब चांद पृथ्वी और सूरज के बीच आ जाता है ना, तब चांद की छाया पृथ्वी पर पड़ती है, तो रात हो जाती है।"
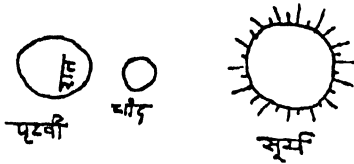
"अच्छा, अभी तो दिन है, तो अभी क्या हो रहा है?"

"अभी सूरज और चांद के बीच में पृथ्वी है, इसलिए अभी दिन है।"
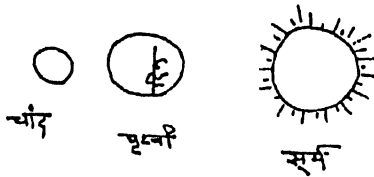
"हूं, अच्छा... अच्छा! खैर चलो यह बताओ कि ऋतुएं क्यों बदलती हैं? कभी गर्मी होती है, कभी ठंड, कभी बरसात। ऐसा क्यों होता है?"

"जब पृथ्वी सूरज के पास आ जाती है तब गर्मी पड़ती है, और जब सूरज से दूर चली जाती है तब सर्दी होती है।"

"और ना जब पृथ्वी बीच में होती है, मतलब जब सूरज से बहुत दूर भी नहीं होती और बहुत पास भी नहीं होती तब बारिश होती है।"

"अच्छा! ऐसा क्यों?"

"पानी, भाप बन के समुद्रों से ऊपर उठ जाता है। ऊपर हवा से भाप फैल जाती है और बारिश हो जाती है...."

"नहीं तो... ऐसा थोड़ी ना होता है! बारिश तो तब होती है जब पृथ्वी पर बहुत गर्मी पड़ती है। तभी तो पानी भाप बन के उड़ता है और बारिश होती है। ये तो तभी होगा जब पृथ्वी सूरज के पास होगी।"

"हूं! तुम यह बताओ कि बारिश किस महीने में होती है?"

"जून, जुलाई में, अगस्त में।"

"अच्छा, और गर्मी कब पड़ती है?"

"जुलाई से पहले।"

"जुलाई के बाद क्या होता है?"

"कुछ समय तक बारिश होती रहती है, फिर नवंबर-दिसंबर में सर्दी हो जाती है।"

"तो अभी तुम्हीं तो बता रहे थे कि गर्मियों के बाद बारिश होती है, न कि गर्मी के महीनों में। चलो छोड़ो, अब फिर से इस बात पर आएं कि पृथ्वी सूर्य के पास होती है तो क्या होता है?"

"ये सबकुछ समझ में नहीं आता है। मुझे तो... पता नहीं क्या होता है।"

"अच्छा, कोई बात नहीं, चलो देखते हैं। तुम में से कोई एक बीच में आ के खड़ा हो जाए। चलो, तुम बन जाओ सूरज।"

"अब एक और जना खड़ा हो के पृथ्वी बन जाए और सूरज के चारों ओर पृथ्वी की तरह घूम कर बताए ज़रा।"

एक लड़का उठा और अपने चारों ओर घूमते हुए उसने सूरज बने लड़के का चक्कर काट कर दिखाया।

"वाह! बहुत ठीक। अच्छा, अब सोचा कि गर्मी-सर्दी क्यों होती है?"

बच्चों ने फिर वही बात दोहराई कि जब पृथ्वी सूरज के पास होती है तो गर्मी और दूर होती है तो सर्दी होती है।

यह साफ था कि इन बच्चों के मन में पृथ्वी के अपने अक्ष पर झुके होने की अवधारणा बिल्कुल नहीं बनी थी। पृथ्वी का यह झुकाव और उसका गोलाकार रूप ही तो गर्मी-सर्दी की प्रक्रिया के लिए ज़िम्मेदार हैं। पर इस बात के महत्व का ज़रा भी आभास बच्चों के मन में नहीं बना था। देखना चाहिए कि उनके पाठ में इस बात के महत्व को सही ढंग से उभारा गया है कि नहीं।
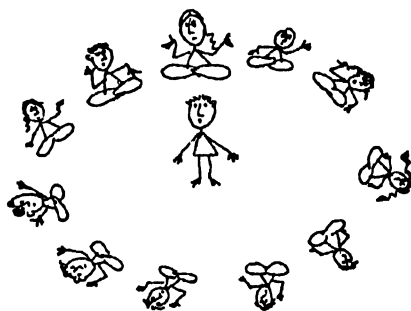
बहरहाल हमें लगा कि कम-से-कम पृथ्वी के अपने चारों ओर घूमते हुए सूर्य का चक्कर लगाने की छवि ठीक बन रही है। तो देखें कि क्या अब वे दिन-रात की बात को समझ सकते हैं?

"दिन-रात क्यों होते हैं फिर से समझाओ हमें। दो बच्चे खड़े हो कर सूरज और पृथ्वी बन जाएं और अब दिन-रात की बात करके दिखाएं, ठीक?"

एक लड़का उठा और कहने लगा तीन लोगों की ज़रूरत पड़ेगी, दो से नहीं होगा।

"तीसरा लड़का क्यों?"

"जी, चांद बनने के लिए।"

इस तरह तीन लड़के खड़े हुए – चांद, पृथ्वी, सूरज।
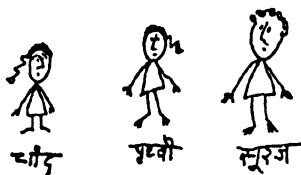
"... पृथ्वी का जो हिस्सा सूरज की तरफ है न, वहां दिन है और जो हिस्सा चांद की तरफ है वहां रात है।"

पर तभी दूसरे बच्चे ने फिर वही पुरानी बात सामने रखी।

"नहीं, जब चांद, पृथ्वी और सूरज के बीच आ जाता है तब चांद की छाया पड़ती है पृथ्वी पर, तब रात हो जाती है। जब चांद वहां से हट जाता है... तब सूरज की रोशनी पृथ्वी पर पड़ती है तो दिन होता है।"

इतने में एक और बच्चा बोल उठा, "तब ग्रहण हो जाता है... ग़्रहण होता है जब सूरज और पृथ्वी के बीच चांद आ जाता है न, तब।"

"हूं, ग्रहण - यह क्या होता है?"

"जब चांद काला हो जाता है तो उसे ग्रहण कहते हैं।"

"अच्छा छोड़ो ग्रहण की बात तो बाद में कभी करेंगे। पहले यह बताओ कि दिन-रात के बारे में किस बात को ठीक मानें?"

बच्चे कुछ बुदबुदाने लगे धीमे-धीमे से। वे कह रहे थे बड़ी झिझक के साथ, "दोनों बातों में थोड़ा कुछ ठीक है। पर दोनों बातें पूरी-पूरी सही नहीं हैं..."

फिर किसी ने सोच कर अपनी तरफ से आगे कहने की कोशिश की।

"पृथ्वी अपनी जगह खड़ी रहती है... तब जिस तरफ सूरज की रोशनी पड़ रही है वहां दिन है, फिर पृथ्वी पलट जाती है तो उस तरफ रात हो जाती है।"

तभी एक और छात्र बोल उठा, "जब सूरज की रोशनी पृथ्वी पर पड़ती है ना तब वहां दिन है। फिर पृथ्वी घूम जाती है तब ग्रहण हो जाता है।"*

यहां तक की बातचीत के बाद हम खुद थोड़े हैरान व परेशान होने लगे थे। समझ में नहीं आ रहा था कि किस-किस गुत्थी को सुलझाना शुरू करें और कहां से शुरुआत करें। यह साफ था कि दिन-रात और चन्द्रग्रहण के बीच बच्चे गड्ड-मड्ड हुए पड़े थे। यह भी स्पष्ट था कि पृथ्वी की दैनिक गति की छवि भी उनके मन में पूरी तरह

---

* ध्यान दें कि दिन-रात की बात में तो भ्रम था ही, ग्रहण की बात भी बच्चों को समझ नहीं आई थी। चांद पर ग्रहण तो तब होता है जब पृथ्वी चांद और सूरज के बीच आ जाती है और पृथ्वी की छाया चांद पर पड़ती है।

विकसित नहीं थी। जैसे उन्हें इस बात की कल्पना नहीं थी कि पृथ्वी का अपनी धुरी पर घूमना 24 घंटे में हर पल होता रहता है।

हमारे हाथ में एक किताब थी जो हम साथ स्कूल ले गए थे। उस किताब में दिन-रात की प्रक्रिया को समझाने के लिए दो चित्र बने थे। हमने सोचा बच्चों का ध्यान बांटने की ज़रूरत है। वे सोच में डूब कर उलझन महसूस कर रहे हैं। तो हमने उन्हें किताब से ये चित्र दिखाए:

"इस चित्र में क्या बताया जा रहा है, देख कर बताओ।"

दिलचस्प बात यह है कि बच्चों ने तुरन्त बल्ब को सूरज माना, और ग्लोब को पृथ्वी समझा। यहां तक कि मक्खी पर पहले दिन है फिर पृथ्वी घूम गई है और मक्खी पर रात है, यह भी वे समझा सके।
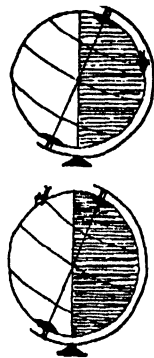
थोड़ी-थोड़ी सफलता, संतोष और आशा के एहसास के साथ हमने बातचीत का यह दौर खत्म कर दिया।

रश्मि पालीवाल व यमुना सनी

(एकलव्य में सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम से जुड़ी हैं।)

इस बातचीत को पढ़कर आपके मन में क्या निष्कर्ष उभरते हैं? सोचिए, और हमें लिखिए भी। अगले अंक में दसवीं कक्षा के बच्चों के साथ बातचीत प्रस्तुत करेंगे।

आप भी सोचिए
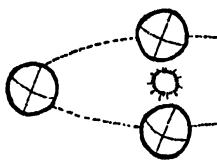
आमतौर पर पाठ्यपुस्तकों में पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा करने का चित्र कुछ इस तरह बनाया होता है। और साथ ही यह भी लिखा होता है कि जब पृथ्वी सूर्य के पास होती है तो गर्मी का मौसम होता है और जब सूर्य से दूर – तो सर्दी का मौसम।

इन दोनों बातों को ध्यान से देखने, पढ़ने के बाद आपको कुछ गड़बड़ नज़र आई ? अपने विचार हमें लिखिए ताकि इस महत्वपूर्ण अवधारणा पर चर्चा आगे बढ़ सके।

मुझे डर लगता है गणित से

गंगा गुप्ता

हमारी गणित की पूरी क्षमता स्मृति पर टिकी रहती है। याद की गई विधियां भूलने पर गणित से खौफ खाना स्वाभाविक है, है न!

गणित का नाम सुनते ही पता नहीं क्यों मेरे हाथ-पैर फूलने लगते हैं। वैसे कक्षा की दृष्टि से मैं कभी भी गणित विषय में कमज़ोर नहीं रही हूं। मेरे सवाल हमेशा ही कक्षा में सबसे पहले हो जाया करते थे। हमेशा मुझे शाबाशी मिलती। सब साथी मेरी नकल करके उत्तर लिखते थे और गुरुजी को दिखाने से पहले उत्तर मुझसे मिला लेते थे। अब जाने क्या हो गया है वे सवाल जो फटाफट निकलते थे, अब मुझसे नहीं बनते। मैं अक्सर सोचती हूं कि ऐसा क्यों है।

इसका एक कारण तो मुझे यह लगता है कि उस समय मुझे वो प्रक्रिया याद थी। शायद समझ नहीं आई थी पर उसके सारे स्टेप (कदम) यांत्रिक रूप से मैं कर सकती थी। सवाल मिला नहीं कि धड़ाधड़ एक के बाद एक स्टेप कर दिए और उत्तर निकाल दिया। और फिर सवाल करने के उस तरीके को समझना इसलिए भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि दो-चार महीने के बाद यदि उसकी एकाध स्टेप भी भूल जाओ तो फिर पूरा सवाल ही नहीं बनता। आठवीं बोर्ड में मुझे गणित में 79% अंक मिले। तब गणित के अंक देखकर मुझे सभी ने कहा कि तुम्हें गणित विषय लेना चाहिए। परन्तु मेरे अंदर आत्मविश्वास की कमी ने ही मुझे पीछे धकेल दिया। अब हालत यह है कि आठवीं तक भी मैंने जो कुछ सीखा था

जब मैं छोटी थी तो इस बात से उलझी रहती थी कि दस और एक ग्यारह या एक पर एक ग्यारह पढ़ाते हैं, इसका अर्थ क्या होता है।

वह भी काफी गड्ड-मड्ड हो गया है। वैसे भी वो कभी साफ था ही नहीं और उसकी मूल बातें तो मेरी समझ में कभी नहीं आईं। वैसे जब मैं छोटी थी तो इस बात से बहुत उलझी रहती थी कि दस और एक ग्यारह या एक पर एक ग्यारह पढ़ाते हैं, इसका मतलब क्या होता है।

स्कूल की नौकरी मिलने के बाद पढ़ाना शुरू कर दिया। वहां पर साथियों से इन सवालों के बारे में पूछा तो भी कुछ स्पष्ट उत्तर नहीं मिला। कुल मिलाकर बात समझ नहीं आई। फिर 1987 में एकलव्य के 'प्राथमिक शिक्षा में नवाचार' के काम से जुड़ी। जब इस कार्यक्रम में स्थानीय मान की मूल अवधारणा के बारे में चर्चा हुई तब कुछ-कुछ स्पष्टता मिली। साथ ही जब मैंने बच्चों को इकाई-दहाई समझाने की कोशिश की तब ठीक से ख्याल आया कि इकाई, दहाई और स्थानीय मान में क्या संबंध है।

मुझे अभी तक गुणज और गुणनखंड में भ्रम होता है। गुणज यानी क्या और गुणनखंड यानी क्या? जब हम कहते हैं कि 15 के गुणनखंड हैं 3 और 5 – तो इसमें 15 गुणज है का क्या मतलब? और 3 व 5 गुणनखंड कैसे हो गए? पर मैं गुणनखंड फटाफट निकाल लेती थी और अभी भी निकाल सकती हूं। इस सबको मैं बार-बार समझने की कोशिश करती हूं। पर बार-बार समझने पर भी कोई फायदा नहीं होता है। यदि कोई अचानक गुणज पूछ ले तो अभी भी अटपटा जाती हूं। इसी प्रकार लघुत्तम-महत्तम निकालने का यांत्रिक तरीका:

5	35	30	15
3	7	6	3
7	7	2	1
2	1	2	1
	x	x	x

$5 \times 3 \times 7 \times 2 = 230$

अब ये क्या होता है, और इससे क्या पता चलता है?

मुझे मालूम नहीं कि इस तरह की चीज़ें पांचवीं कक्षा तक या आगे क्यों आवश्यक हैं? मुझे तो आज तक समझ नहीं आता कि इसकी मूल अवधारणा क्या है? इसे मैंने अलग-अलग लोगों से समझने की भी कोशिश की है पर बहुत प्रयत्न करने पर भी समझ में नहीं आता। एक मानसिक जड़ता है इसके बारे में सोचने में, जैसे कोई दीवार खड़ी हो जिसे तोड़ा न जा सके और न ही उसके पार जाया जा सके।

इसी प्रकार साधारण जोड़-घटाना के मौखिक सवाल तो थोड़े-बहुत बन जाते हैं पर वे भी जल्दी और पूरे आत्मविश्वास के साथ नहीं। सारे पहाड़े जो मुझे याद थे जाने अब कहां चले गए? सच, सोच कर शर्म आती है कि मुझे गणित में विशेष योग्यता मिलती थी। अगर अभी भी कहा जाए कि 2 को 3 बार और 3 को 3 बार प्रयोग करके (यानि +, −, x और घात की क्रियाएं उपयोग करके) 24 लाओ तो काफी दिमाग लगाने पर भी मुझसे नहीं बनता। आठवीं में समीकरण के सवाल (पिता की आयु X है तो पुत्र की क्या होगी) मैं बहुत ही आसानी से कर लेती थी। और तब मज़ा भी आता था। मेरे शिक्षक भी बहुत खुश होते थे। पर अब उसका एक भी स्टेप पता नहीं है। मुझे लगता है कि गणित में जब तक मुझे प्रक्रिया याद थी तब तक तो करने में मज़ा आता था पर एकाध स्टेप भूलने पर कुछ समझ नहीं आता। अभ्यास छूटने के साथ-साथ ये सब भूलता जाता है और एक-दूसरे में गड्ड-मड्ड होता जाता है। यानी गुणज का स्टेप वर्गमूल में घुसा और वर्गमूल का गुणनखंड में। वैसे भ्रम में डालने के लिए और गड्ड-मड्ड होने के लिए और भी बहुत सारे कलन हैं, जिनमें बहुत सारे स्टेप होते हैं।

चूंकि न तो गुणनखंड की समझ है और न ही वर्गमूल की और न उस प्रक्रिया की जिससे इन्हें निकाला जाता
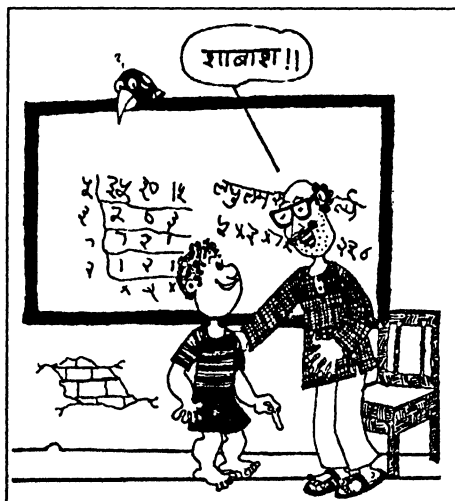
है तो बस गणित की पूरी क्षमता याददाश्त पर टिकी रहती है।

इसी प्रकार भिन्न के जोड़-घटाना, गुणा, भाग के सवाल भी हैं। मैं दावे से कह सकती हूं कि भिन्न के जोड़, घटा, बड़ी-छोटी संख्याएं ढूंढने, क्रम में जमाने के सवाल जो लोग कर पाते हैं उनमें से 50% से भी ज्यादा केवल यांत्रिक ढंग से सूत्रों का उपयोग करके हल करते हैं उन्हें। न वे खुद समझते हैं कि वे क्या कर रहे हैं और ज़ाहिर है कि न वे समझा सकते हैं कि सवाल कैसे हल किया या हल करने का तरीका कैसे समझा जा सकता है।

$$\frac{3}{5} + \frac{2}{3}$$

$$\frac{9+10}{15} = \frac{19}{15}$$

या 9/15 और 10/15 निकाल कर पता करना कि 2/3 बड़ी है।

अब इसमें 9/15 कैसे आ गया? 9/15 और 3/5 में क्या संबंध है? लघुत्तम क्यों निकाला? ये सब उन्हें कुछ समझ नहीं आता। बस सवाल मिला और फट से हल कर दिया। और मेरी तरह कहीं भूल गए, तो बैठे हैं कि अब क्या करें? मैंने इसे बहुत समझने की कोशिश की पर किसी ने समझाया ही नहीं। सबकी कोशिश यही थी कि किसी तरह सवाल हल करने का तरीका याद कर लूं (उनके शब्दों में सीख जाऊं)। कलनों को व तरीकों को समझने की तो कोई प्रथा ही नहीं है।

जब मैं पढ़ाने लगी और हमारी नवाचार की किताबों व पाठ्यक्रम में छात्रों से समझने की अपेक्षा दिखने लगी तो मैं घबराई। जो मुझे समझ नहीं आता, वो सब बच्चों को कैसे समझाऊं! कलन तो उन्हें याद करवा दूं, किताब में दिए सब सवाल हल करवा दूं, रटवा दूं – पर समझाऊं कैसे? और हम शिक्षकों ने ही तो तय किया था कि इस नए कार्यक्रम में छात्रों के मूल्यांकन में किताब का कोई प्रश्न नहीं होगा। अब नई इबारत, नई संख्याओं के सवाल हल करने के लिए तो प्रक्रिया व प्रश्न की समझ चाहिए। वह समझ कहां से आए?

इतने साल बाद अब मुझे भिन्न की अवधारणा चित्रों के माध्यम से समझ में आने लगी है। इसलिए अब ये भिन्न के सवाल वास्तव में खेल जैसे लगने लगे और मैंने कक्षा में पूरे आत्मविश्वास के साथ बच्चों के साथ उन्हें किया। और बच्चे भी इन्हें आसानी से कर पाते हैं – जैसे यदि 3/5 और 2/3 में मुझे बड़ी भिन्न, छोटी भिन्न समझना है तो सबसे पहले मैंने उन दोनों भिन्न संख्याओं के चित्र बनाए–
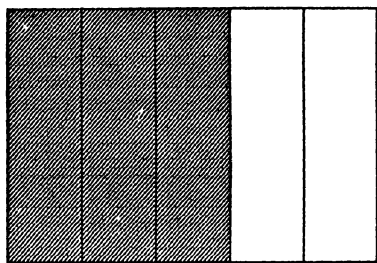
3/5
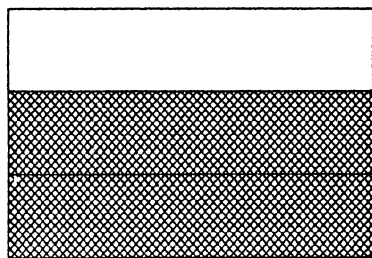
2/3

पहले चित्र में कुल 5 भाग हैं और दूसरे में कुल 3 भाग। जब इन दोनों को इकट्ठा करके एक ही चित्र में बनाया तो हमारे पास कुल 15 भाग हो गए।
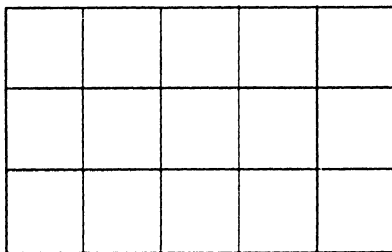
अब इन 15 भागों में से हमने पहले चित्र के भाग उसे दे दिए। ऐसे ही दूसरे चित्र को भी उसके भाग दे दिए।
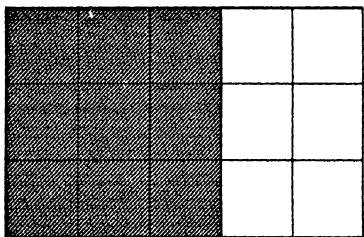
9/15
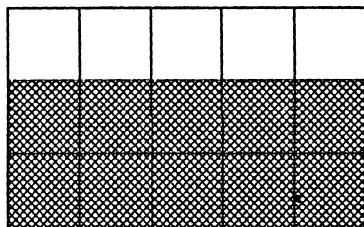
10/15

इन चित्रों को देखते ही समझ में आ जाता है कि 9/15 और 10/15 कहां से आए।

अब आसानी से बता सकते हैं कि जिसके खाने ज़्यादा रंगे वो भिन्न बड़ा है। यानी 10/15 या 2/3 बड़ा है। और जोड़ के लिए भी हम उसके दोनों कुल रंगे भाग आसानी से जोड़ सकते हैं। अब मुझे लगता है कि पहले भिन्न की अवधारणा समझ कर, बाद में उसके यांत्रिक स्टेप (कदम) सीखें तो शायद वो उतना डरावना नहीं लगेगा। ऐसे ही गणित के अन्य पहलुओं को भी समझने की ज़रूरत होगी।

पर सवाल सिर्फ प्राथमिक शिक्षा या जोड़, गुणा, भाग, भिन्न पर थोड़े ही रुकता है। मैंने अर्थशास्त्र में एम.ए. किया है, और बी.ए. प्रथम वर्ष से एम.ए. अंतिम वर्ष तक हमेशा सांख्यिकी के सवाल ठीक करके आई हूं। पर अभी मुझसे कोई पूछे कि मध्यक या प्रमाण विचलन क्या है? इसे कैसे निकालते हैं? क्या किया था? कुछ भी मालूम नहीं। यह सवाल तो भूल ही जाओ कि इसे क्यों निकालते हैं और इसका क्या उपयोग है? मुझे रेखागणित में भी केवल आकृतियां बनाना और उनके नाम देना व उनसे खेलना अच्छा लगता है। पर त्रिज्या, परिधि, शंकु, बेलन आदि के बारे में ऊट-पटांग सवाल करना, उनके सूत्र याद करना, बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। प्रमेय में अ, ब, स को लेकर क्या करना है? क्यों अ ब स लेते हैं? क्या सिद्ध करना है? क्यों करना है? कुछ पता नहीं चलता। फिर सिद्ध करने के लिए ये अ, ब, स से पता नहीं क्या-क्या करना होता है। बहुत बुरा लगता है। आठवीं में मुझे याद है कि कैसे हमने महत्वपूर्ण प्रमेयों को रट-रटकर समझा था और परीक्षा में ज्यों का त्यों आने पर कितने खुश हुए थे। मेरे साथ एक बात शायद अच्छी हुई है कि मेरी खुद की गणित में विशेष

समझ और ज्ञान न होने से, मेरे स्कूल के बच्चे गणित में अच्छे रहे हैं। और मुझसे ज्यादा आगे कर पाए हैं, क्योंकि गणित सीखने में जो दिक्कत या कठिनाई आती है उसका अहसास होने के कारण मैंने बच्चों की दिक्कतों को समझा। सीधे सही उत्तर की अपेक्षा नहीं की। जिससे शायद उन्हें और मुझे सीखने में मदद मिली। मेरे स्कूल के कुछ बच्चे तो बहुत-सी नई बातें खुद करने लगे हैं और कई बार तो मैं पांचवीं के बच्चों से समझती हूं कि इस में क्या-क्या करना है। जैसे मैंने लिखा कि 2, 3 और +, −, x का प्रयोग करके 18 बनाओ। मेरे कुछ बच्चे आसानी से ढूंढ लेते हैं। इतना ही नहीं इस प्रकार की कुछ और भी संख्याएं लेकर वे नए-नए सवाल बनाते हैं और मुझे भी सिखाते हैं!

ऐसा कैसे हो कि गणित थोड़ा समय अच्छा लगने की बजाए हमेशा अच्छा लगे और जो सवाल, जो बातें सीखते समय या परीक्षा के समय ही याद रहती हैं और हल की जा सकती हैं, वे सब पांच साल बाद भी अच्छी लगें। जब तक मुझे यह समझ नहीं आएगा, मालूम नहीं होगा स्वाभाविक है कि मैं गणित से भागती रहूंगी व डरती रहूंगी।

(गंगा गुप्ता प्राथमिक शाला, पाठई, ज़िला बैतूल में पढ़ाती हैं। प्राथमिक शिक्षा के नवाचार कार्यक्रमों में सक्रिय।)

● ● ●

समझदार बगुले

गाय-भैंस की पीठ पर बैठकर कौओं को छोटे-छोटे कीड़ों -मकोड़ों को खाते हुए आपने अक्सर देखा होगा। जानवरों की त्वचा पर ही नहीं घास में भी असंख्य छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े छिपे होते हैं जो सरसरी तौर पर आंखों से दिखाई नहीं देते और अपने दुश्मनों की नज़रों से बचे रहते हैं। लेकिन ये कीड़े-मकोड़े कभी-न-कभी तो नजर आएंगे ही न?

अब देखिए एक हाथी आराम से चला जा रहा है और पीछे-पीछे बगुले दावत उड़ाते हुए चले जा रहे हैं। बुबुलकस-एबिस नामक बगुलों ने इस बात को अच्छी तरह से समझ लिया है कि हाथी घास पर जहां-जहां भारी-भरकम कदम रखेगा वहां घास के हिलने पर कीड़े-मकोड़े इधर-उधर भागते हैं। तो देर किस बात की? हाथी के पीछे-पीछे चलते रहो और शानदार दावत का इंतजाम पक्का!

चलती का नाम मोटर

बिजली बही, चुम्बकीय क्षेत्र पैदा हुआ और मोटर चली। इस कठिन से सिद्धांत को इस मॉडल ने बनाया आसान।

अपनी स्कूल या कॉलेज की पढ़ाई के दौरान कहीं-न-कहीं तो हम सबने पढ़ा होता है कि विद्युत-परिपथ को लगातार बन्द-चालू, चालू-बन्द करके चुम्बकीय क्षेत्र पैदा किया जा सकता है; और चुम्बकीय क्षेत्र को तेज़ी से कम-ज्यादा, ज्यादा-कम करके या बदलकर बिजली पैदा की जा सकती है। परन्तु शायद ही कोई स्पष्ट समझ बनती होगी कि यह सब होता कैसे है। मन में एक धारणा-सी बन जाती है कि काफी मुश्किल होता होगा इस तरह से चुम्बकीय क्षेत्र पैदा करना या बिजली बनाना।

जबकि अपने आस-पास ही पंखे में, टेप-रिकार्डर में, घर में बजने वाली घंटी आदि में बदलते हुए विद्युत क्षेत्र से चुम्बकीय क्षेत्र बनाने के कारण ही मोटर चलती है, घंटी बजती है....

सवाल उठता है कि क्या हम खुद कोई ऐसी मोटर बना सकते हैं या क्या कोई इतना आसान तरीका हो सकता है जिससे हम ही नहीं विद्यार्थी भी अपने हाथों से कुछ बना पाएं और इन जटिल लगने वाले सिद्धान्तों को अपने सामने व्यावहारिक उपयोग में आता देख सकें, उन्हें समझने की कोशिश कर सकें। चलिए, कोशिश करते हैं।

मुख्य सवाल है कि हमें कोई ऐसा तरीका सोचना होगा जिसमें विद्युत परिपथ लगातार बनता-टूटता रहे और उसके कारण बन रहे चुम्बकीय क्षेत्र का फायदा उठाकर मोटर चलाने की कोशिश करें। यहां पर ऐसा करने का एक तरीका दिया जा रहा है पर और भी बहुत से तरीके सोचे जा सकते हैं ऐसी व्यवस्था बनाने के।

इसके लिए हमें इन सब चीज़ों की ज़रूरत होगी

1. तकरीबन एक मीटर लम्बा 24 गेज का मोटर रिवांइडिंग में इस्तेमाल होने वाला तांबे का तार। यह आमतौर पर बिजली की दुकान पर मिल जाता है। इस पर प्लास्टिक नहीं चढ़ा होता, सिर्फ कुचालक पेंट (एनेमल) चढ़ाया होता है।
2. टॉर्च में डलने वाला सेल
3. चुम्बक – चकती चुम्बक या छड़ चुम्बक
4. ब्लेड या रेगमाल कागज़
5. स्टोव-पिन
6. साइकल ट्यूब के छल्ले
7. कील
8. धागा
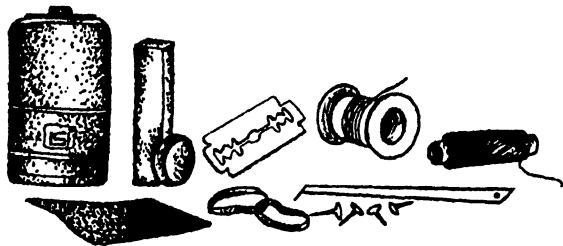
तरीका

* सबसे पहले तार को सेल पर 10-15 बार गोल-गोल लपेटकर एक छल्ला-सा बना लो।
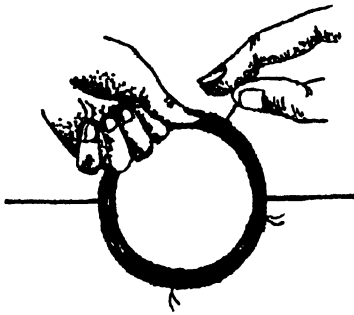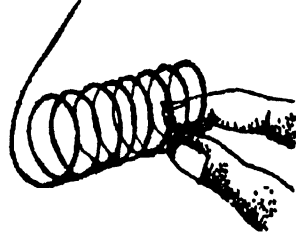
* सेल से उतारने पर छल्ला खुल नहीं जाए इसलिए उसे दो-चार जगह कसकर धागे से बांधना अच्छा रहेगा। तार के दोनों खुले सिरों से लपेटे देकर भी छल्ले को कसा जा सकता है या फिर टेप चिपकाई जा सकती है।

* इस प्रयोग अर्थात मोटर का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा यही छल्ला है इसलिए इसे बनाने पर सबसे ज़्यादा ध्यान देना होगा। छल्ले के दोनों छोर केन्द्र से गुज़रने वाली रेखा की बिल्कुल सीध में होने चाहिए।
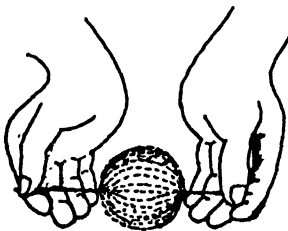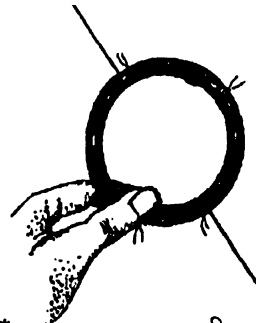
* अगर छल्ला इस धुरी पर अच्छी तरह से संतुलित होगा तभी वह ठीक से, स्वतंत्रता से घूम पाएगा। उसका संतुलन परखने के लिए चित्र के मुताबिक छल्ले को दो उंगलियों पर रखकर घुमाकर देख सकते हैं।

अगर आसानी से घूमने लगे और काफी देर तक घूमता रहे तो एकदम सही छल्ला तैयार हो गया है। अगर किसी एक तरफ वजन ज्यादा हो गया हो तो एकदम समझ में आ जाएगा कि छल्ला ठीक से नहीं घूम रहा है और झटके खा कर तुरन्त रुक जाता है।

* अब इस छल्ले के दोनों सिरों के सिर्फ ऊपरी आधे हिस्से पर चढ़े कुचालक पेंट (एनेमल) को खुरचकर हटाना होगा। यह काम भी ध्यान से करना होगा। पूरा पेंट नहीं उतारना है, चित्र-5 में दिखाए मुताबिक दोनों तारों को सिर्फ एक तरफ से घिसना है। पूरा पेंट उतरने पर मोटर नहीं चलेगी। ऐसा करने से इस छल्ले के दोनों सिरों के आधे हिस्से पर तांबा और आधे हिस्से पर कुचालक पेंट रह जाएगा।
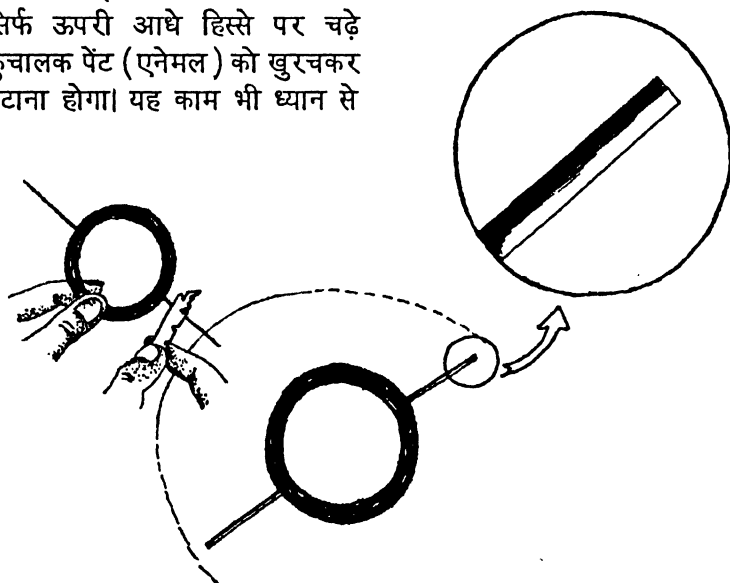
इस तरह से आधे हिस्से को कुचालक और आधे को सुचालक रखकर विद्युत-परिपथ को तोड़ने-बनाने की व्यवस्था की गई है, जिसकी बात शुरुआत में की गई थी।

* छल्ला तैयार हो जाने के बाद एक स्टोव-पिन को कैंची की मदद से दो बराबर हिस्सों में काट लो।
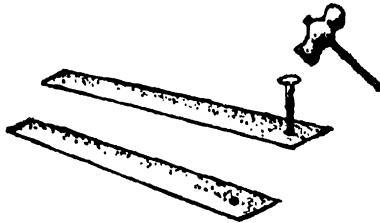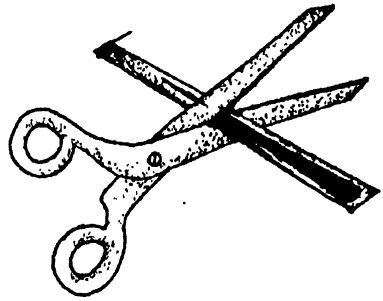
* एक छोटी कील से दोनों टुकड़ों के सिरों में एक-एक छेद बनाओ।

* अगर चकती चुम्बक मिल जाए तो उसे साइकल ट्यूब के छल्लों की मदद से सैल के ऊपर चढ़ा दो। दरअसल, हमें चकती या छड़ चुम्बक से ऐसा इंतज़ाम करना है जिससे एक ही ध्रुव छल्ले की तरफ रहे।
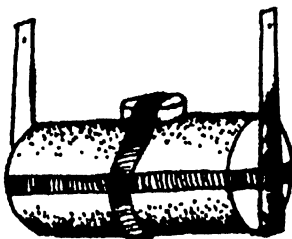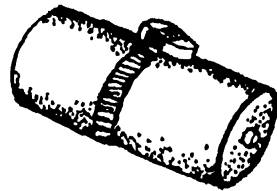
* एक और साइकल ट्यूब के छल्ले को सेल पर लम्बाई में चढ़ा दो। इस छल्ले में दोनों तरफ स्टोव-पिन फंसानी होगी जिससे पिनें सेल के धन और ऋण सिरों से सट जाएं, एकदम छू जाएं। स्टोव की इन पिनों के सहारे ही विद्युत-परिपथ पूरा होता है।

* अब दोनों पिनों को थोड़ा-सा फैलाकर, उनके सुराख में तांबे का छल्ला डाल दो।
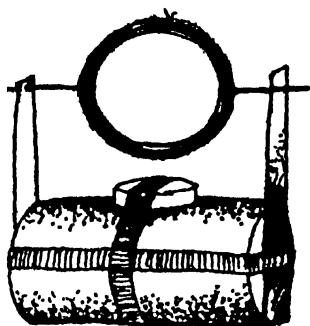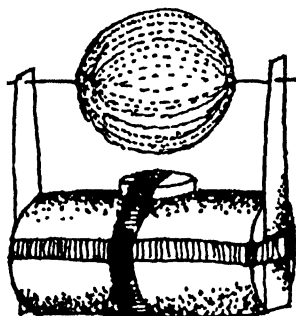
* इस मोटर के सब हिस्सों, सम्पर्क और संतुलन, जांच-परखने के बाद छल्ले को हल्का-सा धक्का दो। घूमने लगा न?

* अगर छल्ला थोड़ी देर घूमकर रुक जाए तो उल्टी दिशा में धक्का देकर देखो।
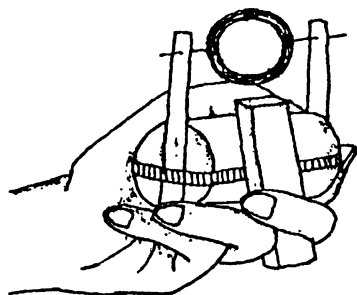
अगर मोटर फिर भी न चले तो आपको यह सब फिर से देखना होगाः

- छल्ले का संतुलन।
- छल्ले के दोनों सिरों को एक-एक तरफ से अच्छी तरह से घिसा है न? और कहीं पूरे सिरों को तो सफाचट नहीं कर दिया न?
- सब विद्युत सम्पर्क। कहीं जंग तो नहीं लगा रह गया?
- छल्ला चुम्बक के सिरे से बहुत दूर तो नहीं है कहीं ?

अगर मोटर ठीक से चलने लगे तो अब उसके साथ बहुत सारे खेल और प्रयोग हो सकते हैं।

* छल्ले में चित्र फंसाकर persistence of vision समझाने के लिए खिलौना बनाया जा सकता है।
* छल्ले में चक्करों की संख्या, छल्ले का साईज़, छल्ले का आकार...... इन सबको बदलकर देख सकते हैं कि क्या होता है। मोटर के चलने की रफ्तार, दिशा आदि पर क्या असर पड़ता है।
* मोटर को उल्टा रखकर, लटकाकर चलाने से एक और मज़ेदार बात समझ में आएगी।

मोटर बना लेने के बाद अब समझने की कोशिश करते हैं कि यह मोटर चल कैसे रही है, छल्ला घूम कैसे रहा है ?
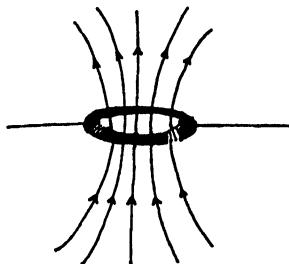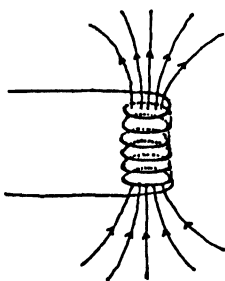
जब भी किसी कुंडली में से बिजली(विद्युत-धारा) गुज़रती है तो उससे एक चुम्बकीय क्षेत्र बनता है जिसका प्रभाव कुछ ऐसा होता है मानो कि उसके बीच एक छड़ चुम्बक रखी हो।

इसका अर्थ है कि जब भी स्टोव-पिन में फंसे हुए छल्ले का साफ किया हुआ यानी सुचालक हिस्सा स्टोव-पिन को छूता है तो छल्ले में से विद्युत-धारा गुज़रती है और छल्ला एक चुम्बक की तरह व्यवहार करने लगता है।

अर्थात् हमारे पास कुछ ऐसी स्थिति है जिसमें एक छड़ या चकती चुम्बक नीचे की ओर स्थिर रखा हुआ है और ऊपर की तरफ एक स्वतंत्र रूप से घूमने वाली छड़ (यहां छल्ला) रखी हुई है – जो घूमने पर आधा समय चुम्बक जैसा व्यवहार करेगी और आधा समय केवल छड़ जैसा।

जब तार का साफ किया हुआ हिस्सा स्टोव-पिन को छुए तब विद्युत-धारा बहेगी और छड़, चुम्बक की तरह व्यवहार करेगी। बाकी आधा समय चूंकि एनेमल पेंट वाला हिस्सा स्टोव-पिन के संपर्क में रहेगा इसलिए विद्युत-धारा नहीं बहेगी और छड़, छड़ ही रहेगी।

छल्ले को धक्का देकर घुमाने पर क्या होता है, अब उसे चित्रों द्वारा समझने की कोशिश करते हैं।

* नीचे का स्थिर चुम्बक और ऊपर की स्वतंत्र छड़ जिसे घुमाया जा सकता है।

●
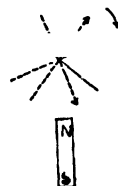
* मान लीजिए इस स्थिति में छल्ला पहुंचने पर उसका सुचालक हिस्सा स्टोव-पिन को छूता है। उसमें से विद्युत-धारा बहने पर वह चुम्बक जैसे बर्ताव करेगा। इससे नीचे वाले स्थिर चुम्बक के पास वाले (N) सिरे को दूर की ओर धक्का लगेगा। और दूर वाला (S) सिरा आकर्षित होगा जिससे छल्ला घूमने लगेगा।

●
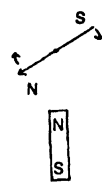
अभी भी वही स्थिति है, N को धक्का लग रहा है और S आकर्षित हो रहा है।
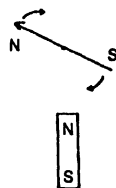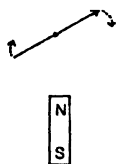
* छल्ले का आधा चक्कर पूरा होने पर उसका कुचालक सिरा स्टोव-पिन को छूने लगता है। विद्युत-धारा बन्द हो जाती है। पर पहले के धक्के के कारण छल्ला थोड़ी देर तक घूमता रहेगा।

●
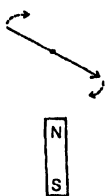
* विद्युत-परिपथ अभी भी बन्द है परन्तु शुरुआती धक्के के असर से छल्ले का घूमना अभी भी जारी है।

●
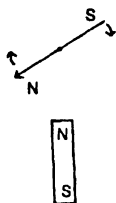
* छल्ले का सुचालक हिस्सा फिर से स्टोव-पिन को छूने लगता है और शुरुआत वाली स्थिति फिर से पैदा होती है जिसमें छल्ले को धक्का लगता है।

बस यही क्रिया चलती रहती है और छल्ला घूमने लगता है। यही है हमारी मोटर।

अब ज़रा सोचकर देखिए कि विद्युत पैदा करने के लिए जो डायनमो होता है वह कैसे काम करता होगा? कभी-कभी साइकल का बल्ब जलाने के लिए भी ऐसा डायनमो लगाया जाता है।

अन्त में, वहीं पर आ जाते हैं जहां से शुरुआत की थी – अपने आसपास दिखने वाली बहुत-सी मोटरें। उनमें और जो मोटर हमने बनाई है, इन दोनों में एक महत्वपूर्ण फर्क है जिसके कारण उनकी रचना भी थोड़ी अलग तरह की होती है, चाहे सिद्धान्त यही हो। अपनी मोटर डी.सी. (डायरेक्ट करंट) से चलने वाली मोटर है जबकि अपने आसपास घरों में ए.सी. (ऑल्टरनेट करंट) इस्तेमाल होता है

राजेश खिंदरी
चित्रः उमेश गौर

(अरविंद गुप्ता द्वारा संकलित पुस्तिका 'खिलौनों का बस्ता' पर आधारित)

ज़रा सिर तो खुजलाइए

क्या एक हाथी और एक मच्छर का वज़न एक समान हो सकता है? आप शायद कहें कि सवाल ही बेतुका है। पर ज़रा ठहरिए, यहां तो यह साबित किया जा रहा है कि एक मच्छर का वज़न एक जीते-जागते, भरे-पूरे हाथी के वज़न के बराबर है!

मान लीजिए हाथी का वज़न 'क' है और मच्छर का 'ख'। अगर दोनों का वज़न जोड़ दें तो मिलेगाः

क + ख

इसे हम 2 x ग का नाम दे देते हैं जिसमें 'ग', 'क' और 'ख' के बीच की कोई संख्या होगी जिसका दुगुना 'क' और 'ख' के जोड़ के बराबर है।

तो, क + ख = 2 ग ...(1)
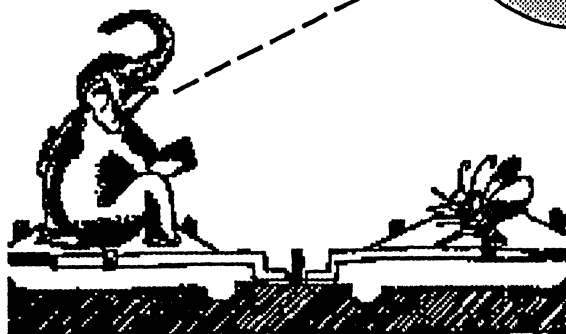
चित्रः उमेश गौर

अब इसी समीकरण को उलटफेर कर हमें दो और समीकरण मिलते हैं:

$$क - 2ग = - ख \quad ...(2)$$

$$क = - ख + 2ग \quad ...(3)$$

अगर इन दोनों समीकरणों को हम आपस में गुणा कर दें तो हमें मिलेगा:

$$क^2 - 2\ ग\ क = ख^2 - 2\ ग\ ख \quad ...(4)$$

इस समीकरण में दोनों ओर $ग^2$ जोड़ दें:

$$क^2 - 2ग\ क + ग^2 = ख^2 - 2ग\ ख + ग^2 \quad ...(5)$$

इस समीकरण के बराबर के निशान के दोनों ओर के हिस्सों को यूं भी लिखा जा सकता है:

$$(क - ग)^2 = (ख - ग)^2 \quad ...(6)$$

क्योंकि $(क - ग)^2 = क^2 - 2\ क\ ग + ग^2$

और $(ख - ग)^2 = ख^2 - 2ग\ ख + ग^2$

अब समीकरण (6) को देखें:

$$(क - ग)^2 = (ख - ग)^2$$

दोनों ओर वर्ग है जिसे हटाया जा सकता है:

$$क - ग = ख - ग$$

यानी $क = ख$

यह क्या हुआ? साबित हो गया न कि हाथी का वज़न 'क,' मच्छर के वजन 'ख' के बराबर है! अब आप ज़रा ढूंढिए कि इस पूरे हल में गलती कहां की गई है?

• • • • • • • • • • •

कक्षा में एक शिक्षक पूरी कोशिश कर रहा है बच्चों से दोस्ती करने की। स कुछ आज़मा लिया उसने। पर बच्चे हैं कि डरे-सहमे जड़वत बैठे हैं। क्या आ के साथ कभी ऐसा हुआ है? ऐसे ही कुछ अच्छे-बुरे अनुभवों की डायरी है जॉन होल्ट की किताब 'बच्चे असफल कैसे होते हैं'। जॉन होल्ट ने कई साल तक तरह-तरह के अनुभवों में से गुज़रने के बाद शिक्षक का पेशा अपनाय उन्होंने बहुत से अलग-अलग किस्म के स्कूलों में पढ़ाया।

जुलाई 25, 1958

बिल हल की कक्षा का अवलोकन करते समय...

पिछले छः महीनों में जो कुछ देखा, समझा व सीखा उसमें एक अहम बात साफ-साफ उभरकर आई है। जो कुछ कक्षा में घटता है, असल में वह कतई नहीं होता जो शिक्षक सोचता है। कम से कम मेरी कक्षा में निश्चित रूप से वह नहीं होता था जो मैं सोचा करता था। वर्षों से मेरे दिमाग में अपनी कक्षा की एक छवि रही है। पर जिस वास्तविकता को मैं पहचानता रहा, वह असल में केवल आंशिक रूप से ही शारीरिक थी और आंशिक रूप से मानसिक व आत्मिक। दूसरे शब्दों में कहूँ तो कह सकता हूँ कि मैं केवल यह सोचता व मानता रहा कि मैं कमोबेश जानता हूँ कि मेरी कक्षा के छात्र क्या कर रहे हैं, क्या सोच रहे हैं, और क्या महसूस कर रहे हैं। आज समझ पा रहा हूँ कि वास्तविकता की मेरी छवि प्रायः पूरी तरह से ही गलत थी। मैं यह पहले क्यों नहीं पहचान सका?

कमरे के इस को देख रहा हूँ। इस इर बल्कि यह जानने के कितने भिन्न हैं जि अचानक बैठे-बैठे ही हम बच्चे का नाम पु उसे देखने से यह अ वह कक्षा में क्या क हो तो उसके लिए f से देखना ज़रूरी है।

कविता-पाठ के को तो सामूहिक रू अधिकांश बच्चे, क देते। बल्कि जिन्हें स

बच्चे असफल कैसे होते हैं
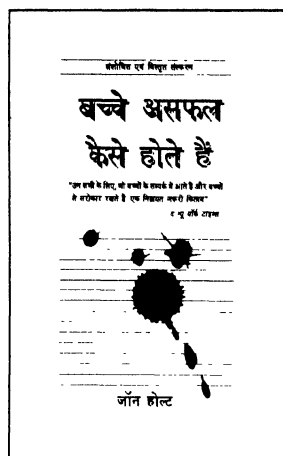
ठे-बैठे मैं कक्षा के बच्चों को
ाहीं कि उनकी चौकसी करूँ,
कि ये बच्चे उन बच्चों से
ाढ़ाया करता था। और तब
ाहसास हुआ कि जिस समय
ार उसे बुलाते हैं, उस समय
नहीं लगाया जा सकता कि
है। अगर सच में यह जानना
ताए लम्बे समय तक गौर

जब काफी सारे बच्चे, कहने
ाम करते हैं, लेकिन अक्सर
रहा है, उस पर ध्यान नहीं
ादा ध्यान देना चाहिए वे ही

सबसे कम ध्यान देते थे। जिन्हें सवालों के उत्तर आते थे, वे यह सुनिश्चित कर लेते कि शिक्षक यह जान ले कि वे उत्तर जानते हैं। सो उनके हाथ हमेशा हवा में लहराते रहते। सही उत्तर जानने के कारण, वे मूर्खतापूर्ण उत्तर देने वाले अपने सहपाठियों का पूरा लुत्फ़ भी उठा सकते थे। पर सभी कक्षाओं में ऐसे छात्र कम संख्या में होते हैं। तो फिर उन असफल बहुसंख्यक छात्रों का क्या हाल रहा होगा?

उनकी एकाग्रता इस बात पर निर्भर थी कि कक्षा में क्या हो रहा है। कक्षा के भावनात्मक तापमान के बढ़ते ही उनके कान खड़े हो जाते थे। अगर कोई झड़प हो जाती या कोई सहपाठी परेशानी में फँस जाता या गलत उत्तर देने पर किसी बच्चे का मज़ाक उड़ता तो वे हमेशा चौकन्ने रहते। और अगर किसी पिछड़े हुए बच्चे को ऐसी कोई आसान सी चीज़ समझाई जाती, जो हर कोई जानता हो, तो उनके हाथ हिलते और वे

"ओह-ओह" कहकर उसकी दुर्दशा का मज़ा लेते। पर जब कभी कोई चीज़ उन्हें समझाई जाती, सवाल पूछे जाते या कोई चर्चा होती तो उनका ध्यान या तो बिल्कुल नहीं रहता या कम रहता। कुछ सपनों में खोए रहते। उन्हें झटके से धरती पर बुलाने की मेरी चेष्टाएँ, उनके दोस्तों को मज़ेदार लगतीं, पर सपने देखने का सिलसिला वे जारी रखते। कुछ बच्चे पर्चियों की अदला-बदली करते, कुछ फुसफुसाते, कुछ इशारों में बातचीत करते और बहुत-से किताबों, कागज़, या मेज़ पर ही चित्र बनाते या रबर, पेंसिल, स्केल से ही खेलते रहते।

उन्हें सपनों में खोए हुए कितनी ही बार क्यों न पकड़ा जाता, कितनी ही शर्मिन्दगी का अहसास उन्हें क्यों न होता, पर यह आदत बनी रहती। बावजूद इसके कि हम अपनी कक्षा को एक रोचक व सुरक्षित स्थान बनाने का हर सम्भव प्रयास करते। कक्षा उनके लिए फिर भी एक उबाऊ, भ्रमित करने वाली और खतरनाक जगह ही बनी रहती। यानी सपनों में खो जाना ही पलायन का अकेला रास्ता उनके पास रह जाता।

इन हालातों में अगर शिक्षक बच्चों को केवल चुप या व्यस्त रखने के बदले सचमुच कुछ पढ़ाना भी चाहे, तो वह बहुत कुछ हासिल नहीं कर सकता। सच पूछें तो किसी कक्षा में बैठा कोई शिक्षक ठीक उस स्थिति में होता है जैसे घुप्प अंधेरी रात में जंगल में टॉर्च थामे, भटकता हुआ कोई व्यक्ति। जहाँ भी वह टॉर्च चमकाता है, उस ओर के जीव-जंतु टॉर्च की रोशनी में आ जाने के कारण असहज हो जाते हैं और उनका व्यवहार बदल जाता है। यानी निरीक्षण की प्रक्रिया ही व्यवहार को बदल देती है। व्यक्ति अपनी टॉर्च की रोशनी चाहे जिस ओर क्यों न फेंके, वह रात्रि-जीवन के बारे में बहुत कुछ नहीं जान पाता।

कक्षा में शिक्षक अपना ध्यान कभी इस, तो कभी उस बच्चे की ओर केन्द्रित करता है। पर ऐसा करते ही बच्चों का व्यवहार तत्काल बदल जाता है। जब कोई शिक्षक किसी एक बच्चे पर अपना ध्यान केन्द्रित कर, यह जानने की कोशिश करता है कि बच्चा क्या कर या पूछ रहा है, या वह स्वयं क्या समझा रहा है, तो उस समय वह यह नहीं जान पाएगा कि बाकी क्लास क्या कर रही है। अगर वह यह देखकर कि दूसरे बच्चे कुछ ऐसा कर रहे हैं जो उन्हें नहीं करना चाहिए, बच्चों को

टोक भी दें, तो भी बच्चों को यह पता होता है कि उन्हें केवल तब तक इंतज़ार करना है जब तक शिक्षक अपना काम दोबारा न शुरू कर दे। जो लोग कक्षा का अवलोकन करते हैं, वे यह सब क्यों नहीं देख पाते? कारण यह है कि उनमें से कुछ तो इतने लम्बे समय तक किसी समूह के बीच बैठते ही नहीं कि बच्चे उनकी उपस्थिति को सामान्य मान सकें। जो बैठते भी हैं, उनका ध्यान हमेशा बच्चों पर कम और शिक्षकों पर अधिक रहता है।

छात्र-शिक्षक (वे लोग जो शिक्षक बनने का प्रशिक्षण ले रहे होते हैं) अवश्य लम्बे समय तक किसी एक कक्षा में समय बिताते हैं। पर वे यह मानकर चलते हैं कि उनका काम एक *प्रवीण गुरू* को देखकर उससे *पढ़ाना सीखना* है, बच्चों को व्यवस्थित रखने के गुर सीखना है। उनका सरोकार केवल बच्चों को सम्भालने व नियंत्रित करने भर से होता है, बच्चों को समझने का वे कोई प्रयास नहीं करते। वे केवल शिक्षक को देखते हैं और शिक्षक की नज़र जिस चीज़ पर पड़े, सिर्फ उसी पर वे नज़र डालते हैं। इस तरह वे एक अनमोल अनुभव का काफी कुछ गँवा बैठते हैं।

मुझे तो यह आवश्यक लगता है कि ऐसी स्थितियाँ पैदा की जाएँ, जहाँ दो अनुभवी शिक्षक एक ही कक्षा में साथ-साथ हों। बच्चों के एक समूह को पढ़ाते और उनका अवलोकन करते हों, ताकि वे बच्चों को बातचीत करते, सोचते, विचारते व काम करते देखें और यह समझ सकें कि आखिर बच्चे क्या देख व सुन पाते हैं।

यह तो तय है कि स्कूल के पास ऐसी कोई वित्तीय व्यवस्था नहीं है। वे तो बमुश्किल एक कक्षा में एक शिक्षक उपलब्ध करा पाते हैं। कभी-कभी लगता है कि कुछ संस्थान इस काम में मदद कर सकते, तो अच्छा होता। वे तो हमेशा ही तमाम ऐसी महत्वाकांक्षी योजनाओं के लिए अनुदान देते रहते हैं, जिनका परिणाम केवल प्रचार या कोई सैद्धांतिक शोध-परियोजना होती है। शायद उन्हें लगता है कि दो शिक्षकों पर इस काम के लिए पैसा खर्च करना फिजूल है। पर मैं उनसे सहमत नहीं। जब कभी मैं इस वर्ष के अनुभवों पर सोचता हूँ तो चकित रह जाता हूँ। इस दौरान मैंने बच्चों के व्यवहार और विचारों के बारे में इतना कुछ जाना है कि अनुसंधान व चिन्तन के तमाम नए रास्ते खुल गए हैं। मैं तो उन खोजों व उस ज्ञान के विचार से ही अभिभूत हो जाता हूँ जो

शिक्षक ऐसे मौके पाने पर स्वयं प्राप्त कर सकते हैं।

ऐसे अवलोकन से कुछ स्पष्ट संकेत इस बारे में भी मिलते हैं कि किसी वयस्क को कक्षा में अकेले काम करते समय क्या करना चाहिए। और तीन वर्षों बाद, अपनी कक्षा में मैं वह सब करने भी लगा जिसका जेम्स हर्नडन ने अपनी पुस्तक *हाउ टु सरवाइव इन योर नेटिव लैंड* में वर्णन किया है। सबसे पहले तो शिक्षक एक भौतिक, बौद्धिक व भावनात्मक जगह बनाता है, जहाँ बच्चे एक रोचक जीवन बिता सकें। *इसके बाद* ही वह यह देख सकता है कि बच्चे उस जगह का कैसा उपयोग करते हैं।

बर्नाड शॉ के नाटक *सीज़र और क्लिओपैट्रा* में क्लिओपैट्रा अपनी परिचारिकाओं से कहती है कि सीज़र ने उसे कहा है कि वह अपनी परिचारिकाओं को, जो कुछ वे चाहें, कहने की छूट दे। और जब क्लिओपैट्रा ने जानना चाहा कि इस छूट का मकसद क्या है तो सीज़र का उत्तर था, "ताकि तुम यह जान सको कि वे *क्या हैं?*" हमें भी अपने छात्र-छात्राओं के बारे में जानना है कि आखिर वे क्या हैं? और यह जानने के लिए हमें फाइलों में दबे छद्म मनोवैज्ञानिक निदानों को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है जिनमें बच्चे की कमियों की लम्बी फेहरिस्त हो। बल्कि आवश्यकता यह है कि हम उन्हें वैचारिक स्वतंत्रता दें। बोलने, करने की छूट दें - उस सीमा तक, जितनी किसी स्कूल में दे पाना सम्भव हो।

अगर हम शिक्षक बच्चों पर अपनी गिद्ध दृष्टि केवल इसलिए टिकाए रखें कि हम यह देख सकें कि वे वह सब कर या नहीं कर रहे हैं जो कुछ उन्हें करना या नहीं करना चाहिए, तो यह तय है कि हम सबसे रोचक और महत्वपूर्ण बातों से वंचित रह जाएँगे। शायद यही कारण है कि वर्षों के अनुभव के बावजूद कई शिक्षक बच्चों के असली स्वभाव को इतना कम समझते हैं। जो माता-पिता अपने बच्चों को घर पर ही पढ़ाते हैं, वे इस दिशा में कहीं अधिक प्रगति कर पाते हैं। उनके पास अपने बच्चों की रुचियों को *जानने* का समय भी होता है और इच्छा भी। वे उन सभी इंगितों को पढ़ पाते हैं जिनके द्वारा बच्चे अपने मनोभाव अभिव्यक्त करते हैं। जब शिक्षक स्वयं को एक बॉस, थानेदार या न्यायाधीश की पारम्परिक भूमिका में देखना बंद करेंगे, केवल तभी वे अपने शिक्षार्थियों को पहचान पाएँगे। केवल तभी वे उनकी सहायता कर सकेंगे।

उस समय जब, बिना कोई लम्बी-चौड़ी योजना बनाए, मैं अपनी कक्षा के बच्चों को आपस में बात करने का, साथ-साथ काम करने का मौका देने लगा तब अचानक उनके अनुभवों, विचारों, रुचियों को भी जानने लगा। मुझे तब यह भी सूझने लगा कि मैं कैसे अपनी कक्षा को एक काम की जगह बना सकता हूँ। *सच यह था कि बच्चों को मैं कुछ सिखा पाता, उसके पहले उन्हें ही मुझे बहुत कुछ सिखाना पड़ा।*

इस दौरान मैंने एक छात्रा को *अपने दोस्तों से बात करते हुए* सुना तो जाना कि उसे घोड़े अच्छे लगते हैं। बच्ची को "पढ़ने में समस्या" आती थी। नई सूचना मिलते ही मैंने उसके आसपास *नेशनल वेल्वेट* की एक प्रति उपलब्ध करवा दी। जैसी मुझे आशा थी किताब उसे अच्छी लगी। उस कहानी और उसके पात्रों के प्यार ने उसमें अपनी "पढ़ने की समस्या" पर काबू पाने की इच्छा और ताकत जगाई। उसके मन में असल में यह भय बैठा हुआ था कि वह पढ़ना *सीख ही नहीं सकेगी* और ऐसा सिद्ध होने पर उसे लज्जित होना पड़ेगा।

जुलाई, 27, 1958

पिछले सालों में क्रमशः यह अहसास बढ़ा है कि बच्चे स्कूल को हर दिन, हर घंटे, शिक्षकों द्वारा आरोपित काम के संदर्भ में ही देखते हैं। पर शिक्षकों का नज़रिया तो यह नहीं है। कर्तव्यनिष्ठ शिक्षकों के मन में तो एक महान लक्ष्य की ओर यात्रा की एक छवि होती है। उन्हें लगता है कि उस गंतव्य की महिमा ही रास्ते की सारी तकलीफों और अड़चनों को सहनीय बना डालती है। अगर शिक्षक इतिहास पढ़ाता है तो उसे लगता है कि इतिहास सा रोचक, उत्तेजक या महत्वपूर्ण विषय कोई है ही नहीं। वह मानता है कि यह छात्रों का सौभाग्य है कि वे उसके ज्ञान में हिस्सा पा रहे हैं। शिक्षक अगर फ्रेंच पढ़ाता है तो वह फ्रेंच साहित्य के गौरव व बोलचाल की भाषा के माधुर्य और सौंदर्य के बारे में सोचता है। और फ्रांसीसी पाक-कला का शिक्षक पाक-कला के रस के विषय में सोचता है। उसे यह लगता है कि वह इन सभी आनन्दों को अपने शिक्षार्थियों को परोस रहा है। हर विषय का शिक्षक इस तरह अपने-अपने विषय के बारे में सोचता है।

स्पष्टतः इस सोच का कारण यह है कि शिक्षक यह मान लेते हैं कि उनकी और उनके छात्रों की रुचियाँ समान हैं। मुझे भी यही लगता था कि मैं अपने छात्रों का एक ऐसी यात्रा के

दौरान मार्गदर्शन कर रहा हूँ जो वे करना तो चाहते हैं, पर मेरे बिना पूरी नहीं कर सकेंगे। यह तो मैं भी जानता था कि यात्रा कठिन है, पर साथ ही यह विश्वास मन में था कि उस गंतव्य को बच्चे भी उतना ही साफ-साफ देख पाते हैं, जितना मैं। और तो और, मैं तो यह भी मानता था कि वे वहाँ तक पहुँचने को भी उतने ही आतुर हैं, जितना मैं। उस समय मुझे यह बेहद आवश्यक लगता था कि मैं छात्रों में यह भावना जगाऊँ कि हम जिस ओर बढ़ रहे हैं वह एक सार्थक गंतव्य है।

आज मैं जानता हूँ कि इस आशय से मैंने बच्चों को जो कुछ भी कहा होगा, वह सब निरर्थक ही था। मैं तो शायद तब यह भी सोचता था कि मेरे छात्र मेरी कक्षा में इसलिए हैं, क्योंकि वे वह सब सीखना चाहते हैं जो मैं उन्हें सिखाता था। पर मेरे छात्र स्थिति को कहीं बेहतर समझते थे। वे स्कूल में महज़ इसलिए थे क्योंकि उन्हें वहाँ दाखिल किया गया था। मेरी कक्षा में वे इसलिए थे क्योंकि उन्हें वहाँ भेजा गया था। और फिर वे मेरी कक्षा में न होते तो किसी दूसरी कक्षा में होते, जो सम्भवतः और बुरी हो सकती थी।

बच्चों का स्कूल में आना और उनका डॉक्टर के पास जाना, इन दोनों स्थितियों में समानता है। डॉक्टर यह कहते हुए पगला भी जाए कि उसकी दवा बच्चे के लिए बेहद फायदेमंद है, फिर भी बच्चे का पूरा ध्यान दवा की कड़वाहट या अपनी पीड़ा की ओर ही केंद्रित रहता है।

सच पूछें तो अगर बच्चों का बस चलता तो वे किसी हालत में इन स्थितियों में नहीं फँसते। सो, स्कूल में जो भी बच्चे होते हैं वे एक गरिमामय गंतव्य की ओर आतुरता से कदम बढ़ाने वाले नन्हे यात्रियों की टोली नहीं, बल्कि ज़ंजीरों में जकड़े बंदियों की तरह हैं। वे उस ऊबड़-खाबड़ कँटीली राह पर महज़ इसलिए चलते हैं क्योंकि दंड का भय उनके सामने मुँह बाए खड़ा होता है। सच तो यह है कि अपने गंतव्य को वे कतई देख नहीं पाते, बल्कि आसपास उन्हें ऐसी धुंध घेरे रहती है कि दो कदम दूर की राह तक नज़र नहीं आती। सच, ऐसे ही लगते हैं बच्चों के स्कूल। स्कूल एक ऐसी जगह है जहाँ उन्हें वे भेजते हैं, जहाँ वे उन्हें तमाम ऊटपटाँग कामों को करने को कहते हैं। अगर उनके बताए गए कामों को सही न किया जाए तो वे बच्चों का जीना दूभर कर सकते हैं।

बच्चों के लिए स्कूल में सबसे महत्वपूर्ण काम "सीखना" नहीं है, फिर

चाहे इस धुँधले शब्द का कोई भी अर्थ क्यों न हो। बल्कि उनके लिए मुख्य है रोज़मर्रा के कामों को कर डालना या किसी तरह निपटा देना। असल में दिया गया हर काम बच्चों को एक लक्ष्य लगता है। वे उसे कैसे पूरा करते हैं, इससे उनका कोई सरोकार नहीं होता। अगर वे उसे पूरा कर परे सरका सकते हैं तो वे वैसा कर देते हैं। पर उनका अनुभव यह बताता है कि अगर वे काम स्वयं न कर सकें तो किसी न किसी हथकंडे को अपनाना ही बेहतर होगा। सो वे वैध नहीं तो अवैध तरीके अपनाते हैं। यानी बच्चों को कोई भी काम सौंपने का लक्ष्य ही परास्त हो जाता है।

दूसरों से अपना काम करवाने में बच्चे माहिर होते हैं। वह दिन अभी तक मेरे दिमाग में ताज़ा है जिस दिन रूथ ने मेरी आँखें खोल दी थीं। हम गणित के सवाल कर रहे थे। मैं अपने आप को दाद दे रहा था कि मैं उसे सीधे-सीधे सवाल हल करने का तरीका बताने के बदले सवाल दर सवाल पूछ उसे "सोचने" पर बाध्य कर रहा हूँ। काफी समय लग रहा था इस सबमें। मेरे हर सवाल के जवाब में वह चुप्पी साधे रही। न उसने कुछ किया, न ही कुछ कहा। वह चुप बैठी अपने चश्मे के पीछे से मुझे घूरती रही। मैं हर बार अपने सवालों को आसान करता चल रहा था। पर वह तब तक चुप्पी साधे बैठी रहती जब तक मैं एक आसान सवाल तक न पहुँच जाता। ऐसा मैं इसलिए कर रहा था, ताकि वह बेझिझक उत्तर दे सके। हम यों रेंग रहे थे कि अचानक मैंने गौर किया कि वह तनिक भी सोच नहीं रही थी। वह शान्त मन से मुझे देख रही थी। वह मेरी सहनशक्ति जाँच रही थी और उस प्रश्न का इंतज़ार कर रही थी, जिसका उत्तर देना आसान हो। मैं चौंका। मन में सोचा, "लो, इसने तो मुझे ही फँसा दिया।" रूथ यह सीख चुकी थी कि वह अपना काम मुझसे कैसे करवा ले। ठीक यही तरीका वह दूसरे शिक्षकों के साथ भी अपनाती रही थी। और अगर मैं झक में आकर उसे सीधे-सीधे हल नहीं बताता तो वह मुझसे सवाल दर सवाल होते हुए उत्तर उगलवा ले रही थी।

स्कूल और शिक्षक, दोनों ही बच्चों की रणनीतियों के प्रति उतने ही अंधे होते हैं, जितना मैं था। अन्यथा वे विषयों के पाठ्यक्रम ऐसे बनाते जिनसे केवल सफल छात्रों के ही उत्तीर्ण होने की सम्भावना रहती। केवल वही छात्र उत्तीर्ण होते, जिन्होंने अर्थों पर विचार किया हो। यानी बिना

सोचे-समझे अपनाए गए सारे अवैध हथकंडे विफल रहते। पर स्कूलों में इसका उल्टा ही होता है। स्कूल केवल *उत्पादक* छात्रों को ही उत्साहित करते हैं। ये ऐसे बच्चे होते हैं जिनकी रुचि हर हालत में "सही उत्तर" तक पहुँचने में रहती है व ऐसे ही बच्चे स्कूलों में सफल होते हैं। जो तंत्र ही "सही उत्तरों" पर चलता हो उसमें इसके अलावा हो भी क्या सकता है? यही वजह है कि स्कूल *विचारक* छात्रों को हतोत्साहित करते हैं।

कुछ समय पहले तक मैं यह भी नहीं जानता था कि बुरे छात्र पढ़ाए जाने वाले विषयों के बारे में अच्छे छात्रों से अलग तरह से सोचते हैं। मैं यह मानता था कि वे केवल उन विषयों में अदक्ष हैं। पर अब मुझे लगा है कि जब बच्चों पर असफलता की संभावना और भय हावी होने लगते हैं तो वे एक खास तरह से सोचने और व्यवहार करने पर बाध्य हो जाते हैं। उनकी रणनीतियाँ तब आत्मविश्वास से भरे बच्चों से भिन्न हो जाती हैं। एमिली इसका अच्छा उदाहरण है। उसमें अपने किए हुए काम को तटस्थ हो गौर से देखने की भावनात्मक व बौद्धिक क्षमता ही नहीं है। वह अपने विचारों की वास्तविकता से तुलना नहीं कर सकती। न ही उनका मूल्य तोल पाती है। वह मुझे हमेशा एक ऐसे असहाय जन्तु की याद दिलाती है जो किसी खतरे का सामना कर रहा हो। ऐसा पशु जो हवा के वेग से दौड़ता है, मुड़कर देखता तक नहीं, क्योंकि वह बखूबी जानता है कि पीछे खतरा है। उस खतरे से जितना दूर वह हो सकती है, उतना दूर भाग खड़ी होती है। क्या दूसरों में भी भय की ऐसी प्रतिक्रियाएँ होती हैं?

सितम्बर 22, 1958

अपने शिक्षकों को पहचानने में बच्चों को समय नहीं लगता। कुछ बच्चे तो यह पहले से ही जानते हैं कि शिक्षकों के सामने काफी बोलना चाहिए और तमाम विचार उछालने चाहिए। फिर चाहे वे विचार कितने ही विचित्र क्यों न हों। पर हम उन बच्चों के साथ क्या करें जो सोचते हैं, सोचना चाहते और सोचना पसंद करते हैं, पर बोलना नहीं?

मेरी गणित की कक्षाओं में मेरे सामने एक दुविधा हमेशा रहती है। मैं चाहता हूँ कि बच्चे यह भी सोचें और समझें कि जो कुछ वे कर रहे हैं वह वे क्यों कर रहे हैं। अगर मैं अपने सवाल पेचीदा या कठिन बनाता हूँ तो

मुझे लगता है कि मेरे छात्र मेरे मन को पढ़ने के प्रयास में जुटने लगे हैं। और तब वे अजीबोगरीब विचार, उत्तर के रूप में उछालने लगते हैं। जैसा उन्होंने आज सुबह किया। लगता है उन्होंने मेरी एक टिप्पणी को उसके शाब्दिक अर्थ में ग्रहण कर ही ऐसा किया होगा। मैंने कहा था कि किसी विचार के न होने से बेहतर है कोई गलत विचार होना। यह मैंने इसलिए कहा था ताकि बच्चे पूरे आत्मविश्वास से उत्तर दें। क्या मैं अब भी वहीं कर रहा हूँ जो रूथ के साथ करते हुए मैंने स्वयं को पिछले साल पकड़ा था? क्या मैं अब भी उनके लिए सोच रहा हूँ।सम्भव है कि कोई मध्यम मार्ग हो ही नहीं। शायद मुझे कभी कठिन, तो कभी सरल सवाल उठाने चाहिए।

असल में मुश्किल यह थी कि मैं बहुत अधिक सवाल पूछता था। काफी समय बाद मैंने सवाल करना बंद किया, चुप रहना सीखा। उस चेष्टा को ही दबाया जो मुझे यह जानने के लिए, कि बच्चे सब कुछ समझ गए हैं या नहीं, सवाल करने पर उकसाती थी। हमें अपने शिक्षार्थियों को यह तय करने देना होगा कि वे कब कुछ पूछना चाहते हैं। कई बार उन्हें यह जानने में भी समय लगता है कि उन्हें कौन-सा सवाल पूछना है? सीखने वालों की समझ को सतत जाँचना शिक्षक का सही काम नहीं है। यह दायित्व तो है ही शिक्षार्थी का। और सच तो यह है कि इसकी सही जाँच भी वही कर सकता है। शिक्षक का काम है शिक्षार्थियों द्वारा उठाए गए प्रश्नों का उत्तर देना। जब वे कुछ खुलासा चाहें तो उनकी समझ को और पैना व स्पष्ट बनाना।

हम बच्चों की समझ को इसलिए जाचना चाहत [illegible] न कि हम किसी चीज़ को और साफ समझने में उनकी सहायता कर सकें? पर हम शायद यह नहीं जानते कि बच्चों को जाँच का ऐसा तरीका दूसरी स्कूली परीक्षाओं की तरह ही लगता है। वे इस जाँच से, कक्षा में शिक्षक द्वारा पूछे गए सवालों से और अधिक घबरा जाते हैं, और अधिक भ्रमित होते हैं।

पुस्तकः बच्चे असफल कैसे होते हैं
लेखकः जॉन होल्ट
अनुवादः पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा
पृष्ठः 283, वर्षः 1993,
मूल्यः 40 रुपए
प्रकाशकः एकलव्य, ई-1/208
अरेरा कॉलोनी,
भोपाल - 462 016

नक्शों के साथ कुछ खेल

भारत जोड़ो

बचपन में हम जिग्सॉ पज़ल बनाते थे – किसी चित्र के कई सारे टुकड़ों को जोड़कर चित्र फिर से पूरा करना। कभी-कभी भारत का जिग्सॉ भी मिल जाता था – जिसमें कई टुकड़े जोड़कर भारत का पूरा नक्शा बनाना होता था। जब हम पढ़ाने लगे तो एक विचार आया कि क्यों न हम राज्यों व देशों के बारे में पढ़ाने के लिए जिग्सॉ का उपयोग करें?

नक्शे के जो इस तरह के जिग्सॉ बाज़ार में मिलते हैं, वे तो बहुत ही महंगे होते हैं। साथ ही उनमें एक समस्या भी रहती है – आमतौर पर उनमें अलग-अलग राज्यों के टुकड़े नहीं होते। इसलिए शैक्षणिक दृष्टि से उनकी उपयोगिता कम ही है। अगर कहीं राज्यों के हिसाब से टुकड़े किए हों तो ऐसी जिग्सॉ और भी महंगी मिलती है।

हमें इसका एक सस्ता विकल्प सूझा। हमने एक कार्डशीट पर भारत का नक्शा उतार लिया और उसमें से अलग-अलग राज्यों को कैंची से काटकर निकाला। बच्चों को जब इन्हें जोड़ने दिया तो उन्हें बड़ा मज़ा आया।

"अरे ये उत्तरप्रदेश यहां थोड़े ही आएगा – इसे मध्यप्रदेश के ऊपर फंसाओ।"

"अरे मध्यप्रदेश तो लंगड़ा ऊँट जैसा दिखता है!"

"जम्मू-कश्मीर तो सबसे ऊपर होगा।"

बच्चे राज्यों की स्थिति और आकार से भली-भांति परिचित हो जाते हैं इस खेल से।

नक्शे का सस्ता स्टेंसिल

राजस्थान में एक शिक्षक गोष्ठी में हम इस खेल के बारे में चर्चा कर रहे थे और भारत के राज्यों का जिग्सॉ बना रहे थे। तब वहां के कुछ शिक्षकों ने नक्शा उतारने का एक मज़ेदार तरीका सुझाया। आप भी इसे अपने यहां करके देखिए।
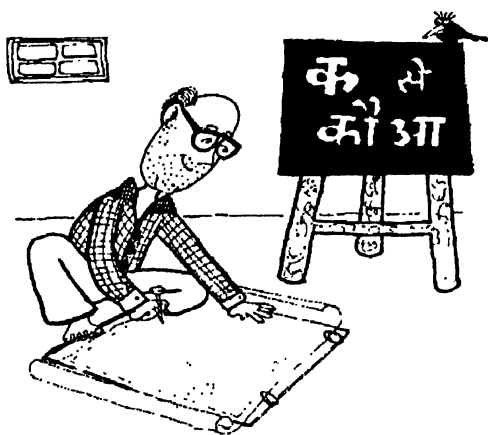
1. दीवार पर लटकाने वाला कोई बड़ा-सा नक्शा लें और उस पर उतनी ही बड़ी ट्रेसिंग-शीट स्टेपलर या आलपिन की मदद से लगा लें।

2. एक आलपिन लेकर नक्शे पर बनी अंतर्राष्ट्रीय एवं राज्यों की सीमाओं व तटीय रेखाओं पर चुभोते जाएं ताकि उन लकीरों की जगह ट्रेसिंग शीट पर आधा-आधा से.मी. की दूरी पर छेद बन जाएं। यह काम काफी सावधानी से करना होगा ताकि सारी ज़रूरी रेखाएं पूरे तौर पर ट्रेसिंग कागज़ पर आ जाएं। छेद एकदम बारीक हों तो अच्छा रहेगा।

इस तरह तैयार हो गया अपना नक्शे का स्टेंसिल। अब इस से चाहे जितनी प्रतियां बना सकते हैं हम।

3. एक कार्डशीट लेकर उस पर अपने स्टेंसिल (ट्रेसिंग शीट) को क्लिप की मदद से लगा दें।

4. एक कांच के गिलास या कप में थोड़ा-सा मिट्टी का तेल लें और उसमें आधा चम्मच नील
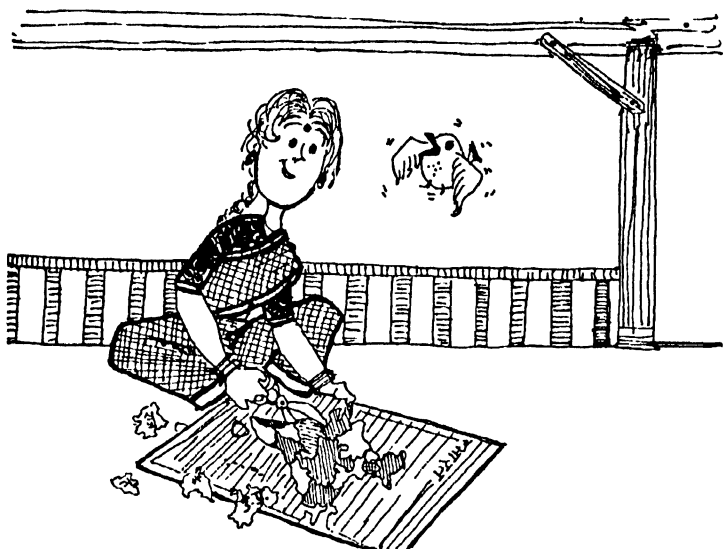
मिला लें। हां, कपड़ों को चमकाने वाला नील।

5. थोड़ी-सी रुई इस मिश्रण में डुबोकर हल्के से निचोड़ लें। फिर इस रुई को ट्रेसिंग शीट पर बनी छेद वाली लकीरों पर फेरें। सारी लकीरों पर फेरने के बाद ट्रेसिंग शीट को अलग हटा दें। कुछ देर कार्ड-शीट और स्टेंसिल दोनों को सूखने दें। इससे मिट्टी का तेल उड़ जाएगा और सिर्फ नील के निशान रह जाएंगे। अब आप आवश्यकता अनुसार रंगीन पेन, स्केच-पेन, पेंसिल से लकीरों को रंग सकते हैं।

इस तरह उसी स्टेंसिल से आप चाहे जितने नक्शे बना सकते हैं। फिर इन का तरह-तरह का उपयोग हो सकता है। कुछ को काटकर जिग्सॉ बना सकते हैं, कुछ में अलग-अलग रंग भरकर ढेर सारी बातें समझा सकते हैं (जैसे ज़मीन, सागर, पहाड़.....)।

यही नहीं अगर स्कूल में सफेद या पीली दीवार मिले तो दीवार पर भी इसी तरह से नक्शे बना सकते हैं।

सी. एन. सुब्रह्मण्यम

(एकलव्य के सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध)

एकलव्य द्वारा चलाए जा रहे होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में दूर-दराज़ फैले हुए बच्चों-विद्यार्थियों से संपर्क बनाने का एक पुराना परन्तु फिर भी अनोखा तरीका अपनाया गया है। जैसे और जगह भी होता है -- यहां भी एक काल्पनिक चरित्र बच्चों को सवाल पूछने के लिए उकसाता है, नाम है उसका सवालीराम। अनोखा इस मायने में कि बच्चों के ढेर सारे पत्रों में से सिर्फ एक-दो के बजाए, हर बच्चे को उस के ख़त का जवाब दिया जाता है। आप ही सोचिए कि कहीं एक छोटे-से गांव में रह रहे बच्चे को अपने खत का जवाब पाकर कैसा लगता होगा।

हर महीने ढेर सारे खत आते हैं बच्चों के -- किसी में सिर्फ एक-दो सवाल तो कुछ ऐसे जिन पर तिल धरने की भी जगह नहीं! और प्रश्नों की विविधता का भी क्या कहना। इस स्तंभ में हम आपके सामने हर बार उनके कुछ सवाल और उन्हें दिए गए जवाब प्रस्तुत करेंगे।

सवालीराम
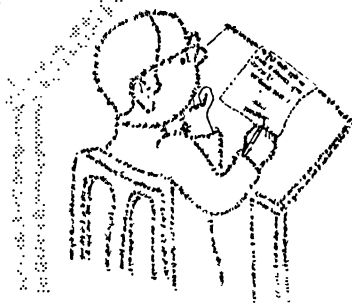
हवाई जहाज कैसे उड़ता है?

दूर, ऊंचे नीले आसमान में उड़ता हवाई जहाज देखना सभी को अच्छा लगता है। बहुत बार हवाई जहाज़ को देखकर तुम्हारे मन में प्रश्न उठता होगा कि इतना बड़ा और भारी हवाई जहाज हवा में कैसे उड़ लेता है?

इस बात को समझने के लिए तुम एक आसान-सा प्रयोग करके देखो। कागज की एक पतली-सी पट्टी काटकर उसे एक सिरे से पकड़ो। जो सिरा हाथ में है उसे अपने मुंह के पास लाकर पट्टी की ऊपरी सतह पर जोर-से फूंक मारो।

तुम्हें यह देखकर हैरानी होगी कि पट्टी नीचे दबने की बजाए ऊपर की तरफ उठ रही है। और उसे ऊपर बनाए रखने के लिए तुम्हें लगातार फूंक मारते रहना पड़ रहा है। तुम जैसे ही फूंकना बंद कर दोगे, पट्टी वापस नीचे लटक जाएगी।

हवाई-जहाज़ को भी तो उड़ने के लिए पहले हवा में ऊपर उठना पड़ता है और फिर आगे बढ़ना पड़ता है। ऊपर उठने वाला काम उसी सिद्धांत से होता है जिससे इस प्रयोग में कागज़ ऊपर उठा था।

पर फर्क इतना ही है कि उसके ऊपर फूंक मारने के बजाए हवाई जहाज़ को ही तेज़ रफ्तार से दौड़ा दिया जाता है। उड़ान भरने से पहले जहाज़ उड़ान पट्टी पर बहुत तेज़ी से दौड़ता है। इससे हवाई जहाज़ के पंखों के ऊपर और नीचे की हवा बहती हुई सी ही लगती है।

पर कागज़ की पट्टी के ऊपर फूंक मारने वाले प्रयोग से बात यहीं फर्क हो जाती है। कागज़ की पट्टी के सिर्फ ऊपर की ओर फूंक मारी थी पर यहां तो हवा जहाज़ के ऊपर और नीचे, दोनों तरफ बहती प्रतीत होती है। फिर भी हवाई जहाज़ ऊपर की ओर उठता है। इसके लिए कभी ध्यान से हवाई जहाज़ के पंखों का आकार देखें तो बात कुछ समझ आएगी। या फिर हवाई जहाज़ के पंखो के आकारनुमा कागज़ की आकृतियां बनाकर एक प्रयोग की मदद से भी हम इसे समझ सकते हैं।

कागज़ की दो पट्टियां लो। एक 8 से.मी. x 4 से.मी. की और दूसरी 10 से.मी. x 4 से.मी. की। चित्र में जैसा दिखाया है वैसे बड़ी पट्टी को छोटी पट्टी पर चिपकाओ। एक तरफ ऊपर से और दूसरी तरफ घुमाकर नीचे से। अब इसके बीच से एक साफ सूजा (या लम्बी सुई) घुसा दो और उसे 5-6 बार सूजे पर ऊपर-नीचे खिसका लो ताकि वह आसानी से उस पर ऊपर-नीचे हो सके।
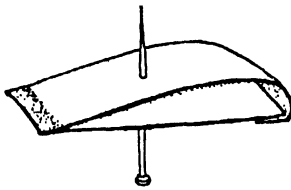
अब सूजे को चित्रानुसार पकड़कर चौड़ी ओर से मुंह से फूंको। आकृति को गोल-गोल घूमने से रोकने के लिए शायद तुम्हें दूसरे हाथ से उसे दोनों ओर से सहारा देना पड़े। और फूंकते समय ध्यान रखना कि हवा आकृति के ऊपर-नीचे, दोनों ओर से बहे। क्या हुआ फूंकने पर?

ऐसा ही कुछ हवाई जहाज़ के साथ भी होता है। उसमें पंखों का आकार कुछ ऐसा बनाया जाता है कि जहाज़ के दौड़ने पर हवा को पंखों के ऊपर से गुज़रने के लिए, नीचे की बनिस्बत ज़्यादा दूरी तय करनी पड़ती है। पर दोनों ओर की हवा को समय तो बराबर ही मिलता है इसलिए ऊपर की हवा की रफ़्तार नीचे की हवा से ज़्यादा होती है।

इसलिए ऊपर की ओर दबाव कम हो जाता है। और नीचे की हवा ऊपर की ओर उठने की कोशिश में पंखों को धकेलती हुई हवाई जहाज़ को ऊपर उठा लेती है। और जहाज़ फुर्र !

इतने भारी-भरकम जहाज़ को हवा में उड़ाने के लिए उसके ऊपर और नीचे के दबाव में काफी अंतर की ज़रूरत पड़ती है। इसीलिए जहाज़ उड़ान पट्टी पर लगभग 200 कि.मी. प्रति घंटे की रफ़्तार से दौड़ते हैं।

अब देखते हैं कि हवाई जहाज़ को ज़मीन पर या हवा में दौड़ाने का यह काम किया कैसे जाता है? कुछ विमानों के अगले भाग में घूमने वाले बड़े-बड़े पंखे लगे होते हैं। जब ये पंखे इंजन द्वारा बहुत तेज़ी से घुमाए जाते हैं, तो हवा को ज़ोर-से पीछे की तरफ धकेलते हैं। और जहाज़ आगे बढ़ने लगता है।

जेट विमान भी इसी सिद्धांत पर चलते हैं पर उनमें इंतज़ाम थोड़ा अलग होता है। इनके इंजनों में ईंधन और हवा के मिश्रणों को जलाया जाता है। जलने से पैदा हुई गैसें बहुत तेज़ी से विमान के पिछले हिस्से से निकलती हैं। उसके कारण गुब्बारे में से हवा निकलने पर जैसे वह उल्टी दिशा में भागता है, उसी तरह ये विमान आगे को दौड़ने लगते हैं।

इस तरह जब विमान आवश्यक रफ़्तार पकड़ ले तो पंखों के ऊपर की ओर हवा का दबाव कम होने के कारण ऊपर उठने लगता है।

यह तो थी हवाई जहाज़ की हवा में ऊपर उठने और आगे बढ़ने की बात। पर तुमने कभी सोचा है कि वह एक बार उड़ने लगे तो फिर उसके बाद नीचे-ऊपर कैसे जाता होगा? दाएं-बाएं अपनी दिशा कैसे बदलता होगा? नीचे उतारने के लिए जहाज़ को धीमा करके उसके नीचे और ऊपर की हवा के दबाव के बीच जो अंतर होता है उसे कम किया जा सकता है। और अंततः पंख के ऊपर और नीचे के दबाव में फर्क को खत्म करने पर जहाज जमीन पर उतर आएगा। पर ऐसे तो जहाज़ धड़ाम-से नीचे गिरेगा। यानी ऊपर-नीचे जाने के लिए यह व्यवस्था तो नहीं चलेगी।

इसके लिए जहाज़ की पूंछ के पास वाले छोटे-छोटे पंखों में पीछे की ओर एक खास तरह की पट्टीनुमा बनावट होती है। यह पट्टियां जहाज़ के पंखों से कब्ज़े से लगी होती हैं। इन्हें ऊपर या नीचे की ओर मोड़ा जा सकता है। जब जहाज़ को ऊपर उठना होता है, तो इन पट्टियों को जिन्हें एलीवेटर (उत्थापक) कहा जाता है, थोड़ा-सा ऊपर की ओर उठाया जाता है। इससे जहाज़ की पूंछ नीचे की ओर होने लगती है। पूंछ की तुलना में आगे का हिस्सा ऊपर की
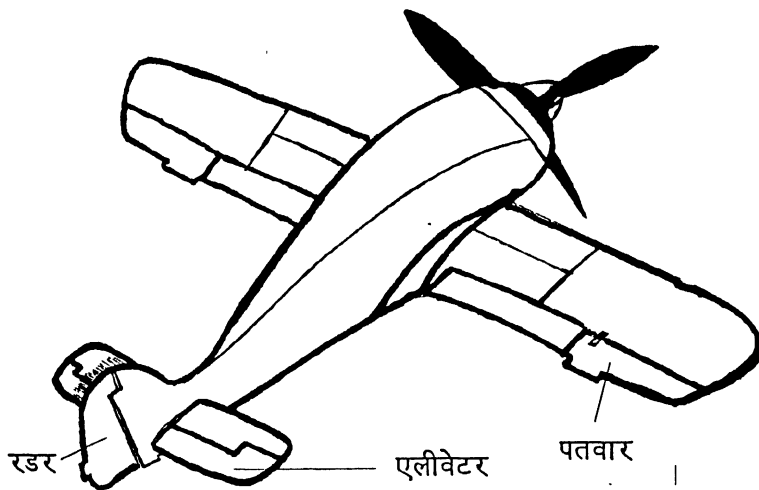
बच्चों द्वारा सवालीराम से पूछे गए कुछ सवाल हम आपके सामने भी रख रहे हैं। आप भी इनके बारे में सोचिए, इनके जवाब ढूंढिए और हमें लिखिए। उनमें से कुछ सटीक जवाब चुनकर हम अगले अंक मे छापना चाहेंगे।

1. मूंगफली के फूल तो पौधे पर लगते हैं – तो फिर मूंगफली ज़मीन में से कैसे निकलती है?
2. मनुष्य जब ग्रहों पर जाते हैं तो वज़न घटता-बढ़ता है। मनुष्य का वास्तव में वज़न कितना होता है और वह किस ग्रह पर जाने से होता है?
3. साबूदाना कैसे बनता है? क्या होता है उसमें?

ओर उठा होता है इसलिए जहाज़ ऊपर की तरफ जाने लगता है। और जब जहाज़ को नीचे उतरना होता है तो एलीवेटर को नीचे की ओर झुका देते हैं।

इसी तरह जहाज़ को दाएं-बाएं मोड़ने के लिए बड़े वाले पंखों के पीछे की तरफ लम्बी-पतली पट्टियां लगी होती हैं जिन्हें पतवार (एलरॉन) कहते हैं। ये भी पंखों के साथ कब्ज़ों से जुड़ी होती हैं। इनकी बनावट ऐसी होती है कि एक पंख की पट्टी को ऊपर की तरफ करो तो दूसरे पंख की पट्टी नीचे की तरफ ही मुड़ती है, और अगर उसे नीचे की तरफ झुकाओ तो दूसरी ऊपर की ओर उठती है – जिससे जहाज़ बाईं-दाईं तरफ मुड़ता है।

पूंछ के ऊपर उठे हुए हिस्से में खड़ी-लगी हुई पट्टी (रडर) भी यही काम कर सकती है परन्तु उसे कम ही इस्तेमाल किया जाता है। आमतौर पर रडर जहाज़ को अचानक मुड़ जाने से रोकने और संतुलन बनाए रखने के काम आता है।

हवाई जहाज़ की तरह चिड़िया भी हवा से भारी होती है, फिर भी मज़े-से उड़ती है। चूंकि वह अपने पंख फड़फड़ाकर अपने शरीर के ऊपर हवा के दबाव को कम कर लेती हैं, इसलिए उन्हें उड़ान-पट्टी जैसी किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं पड़ती। हेलिकाप्टर के पंख ऊपर होते हैं। इसलिए वह भी अपनी जगह से ही सीधे हवा में उड़ सकता है, चिड़ियों की तरह।

हां, कुछ पक्षी जैसे चील, गिद्ध आदि बहुत भारी होते हैं। इसलिए उन्हें हवा में उड़ने से पहले कुछ दूर तक ज़मीन पर दौड़ना पड़ता है।

इतिहास की खोज - करके देखो

अवशेषों की जांच-पड़ताल कर तरह-तरह के अनुमान लगाते हैं इतिहासकार। कुछ गतिविधियां करते हुए बच्चे भी इस प्रक्रिया को समझना शुरू कर सकते हैं।

हज़ारों साल पहले रहने वाले लोगों के बारे में इतिहासकार ऐसी सहजता के साथ लिखते हैं मानो कि वे उनके चिरपरिचित मित्र हों – वे उनके घर-बार, वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान और रीति-रिवाज़ों के बारे में बहुत-सी बातें बताते हैं जैसे कि उन्होंने यह सब खुद देखा हो। अक्सर बच्चे यह पूछ बैठते हैं कि इतनी पुरानी बातों के बारे में कैसे पता लगता है। ऐसे बच्चों को हम या तो डांटकर चुप करा देते हैं या कुछ मोटी-मोटी बातें कहकर टाल देते हैं जैसे – इतिहासकार खुदाई करते हैं और मिट्टी के नीचे दबी चीज़ों से पता लगाते हैं। मिट्टी के नीचे क्या मिलता है, उससे क्या और कैसे पता किया जाता है, ये सब न हम समझते हैं और न समझा ही पाते हैं।

इसलिए हमने यहां कुछ अभ्यास सुझाए हैं जिन्हें आप कक्षा में कर सकते हैं। इनका मकसद है, पुरातत्व के माध्यम से इतिहासकार बीती हुई बातों का पता कैसे करते हैं, यह समझना।

सौ साल बाद

मान लो कि किसी कारण तुम्हारे गांव के सब लोग गांव छोड़कर चले जाते हैं और पूरा गांव वीरान हो जाता है। धीरे-धीरे जैसे-जैसे समय गुज़रता है इस गांव के घर व अन्य इमारतें मिट्टी के नीचे दब जाती हैं। मान लो कि 500 साल बाद कोई उस जगह को खोदना शुरू करे जहां तुम्हारा स्कूल हुआ करता था तो उसे क्या-क्या चीज़ें मिलेंगी ?

अपनी शाला में रखी हुई व पड़ी हुई सब चीज़ों को ध्यान से देखो और ऐसी चीज़ों की एक सूची बनाओ जो 500 साल बाद भी बची रहेंगी।

1. ईंट की दीवार
2. . . . .
3. . . . .
4. . . . .

इन में से कौन-सी ऐसी चीज़ें हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह एक स्कूल के अवशेष हैं। क्या इन सब चीज़ों के आधार पर किसी और निष्कर्ष पर भी पहुंचा जा सकता है? मान लीजिए खुदाई करने वालों में बहस छिड़ गई। चार अलग-अलग लोग हैं, चार मत हैं उनके। कोई कहता है, "यह एक अमीर आदमी का घर है।" दूसरे का कहना है, "यह एक पूजा-स्थल है।" तीसरे का मत और ही है, "अरे नहीं, यह तो एक गोदाम है।" चौथा कहता है, "सब गलत, यह तो एक सरकारी दफ़्तर के सिवाय कुछ हो ही नहीं सकता।"

यह भी मान लीजिए कि आप पांचवें व्यक्ति हैं जो यह कहे जा रहे हैं कि यह तो एक पाठशाला है। आप अपने साथियों के मतों का खण्डन कैसे करेंगे?

●

दरअसल पुरातत्व की मदद से इतिहास कुछ इसी तरह लिखा जाता है। एक जासूस की तरह अवशेषों का अध्ययन करके कई अटकलें लगाई जाती हैं। जिनमें से कुछ सही निकल सकती हैं तो कुछ गलत भी।
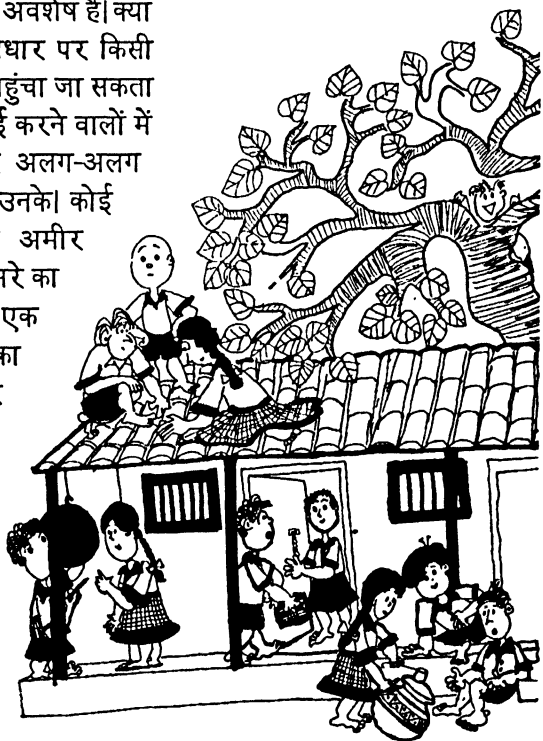
हम सब बचपन से एक प्रसिद्ध तालाब के बारे में पढ़ते आए हैं। लेकिन वह तालाब किस काम आता होगा, इस बात को लेकर ऐसी अटकलबाज़ी चलती है।

कोई कहता है,

"शहर के लोगों के लिए नहाने व तैरने के लिये बना था – ठीक वैसे ही जैसे तुर्की के हम्माम थे, जहां नागरिक पैसे देकर जाते थे, विश्राम करते थे, नहाते, मालिश करवाते आदि-आदि।"

दूसरे का कहना है,

"अगर यह सच है तो इसे शहर के बीचों-बीच होना चाहिए था। यह तो शहर के कोने में है, किले-बन्द टीले पर बना है। निश्चय ही यह एक पूजा-स्थल रहा होगा जहां देवी-देवताओं की पूजा होती होगी।"

एक और साहब फरमाते हैं,

"पूजा-स्थल हो तो पूजा-पाठ में काम आने वाली अन्य चीज़ें वहां से मिलनी चाहिए थीं लेकिन ऐसा कुछ मिला नहीं। इसे देखकर ऐसा लगता है कि यह राज्याभिषेक के कर्मकाण्ड से जुड़ा रहा है। हो सकता है कि उस समय यह मान्यता थी कि राजा को इस पवित्र तालाब में नहाकर ही राज्य करने का अधिकार प्राप्त होगा।"

इन में से क्या सही है और क्या गलत, यह बताने उस समय के लोग तो आएंगे नहीं – हमें ही अपनी सूझ-बूझ से तय करना है।

अक्सर खुदाई से प्राप्त बहुत छोटी चीज़ें बहुत बड़ी बातों की ओर इशारा करती हैं। जैसे कर्नाटक में स्थित सोने की खदानों के पास नीलम (लेपिज़ लजूली रत्न) का मिलना। वहां पर ये रत्न खुदाई के दौरान 2500 साल पुराने अवशेषों के साथ मिलते हैं।

मज़े की बात यह है कि नीलम पत्थर भारत में कहीं भी नहीं पाया जाता। नीलम अफगानिस्तान में एक खास जगह की खदानों से ही प्राप्त होता है। ऐसा पत्थर सुदूर दक्षिण कर्नाटक में प्राप्त होने का क्या मतलब हो सकता है आप खुद ही विचार कीजिए। इस बात को समझाने के लिए कक्षा में एक गतिविधि कर सकते हैं:

सभी छात्र-छात्राओं को 4-4 की टोली में बांटें। प्रत्येक टोली को एक-एक नोट (दो, पांच या दस का) दीजिए। छात्र-छात्राएं इनका बारीकी से अवलोकन करें। उनसे कल्पना करने को कहिए कि 500 वर्षों बाद कोई व्यक्ति यदि इन नोटों को खोजता है, तो वह इनकी सहायता से हमारे बारे में, हमारे समाज के बारे में क्या-क्या अनुमान लगाएगा। इस प्रक्रिया में आप

निम्नलिखित प्रश्न पूछकर उनकी मदद कर सकते हैं:

(1) यह कागज़ का टुकड़ा किस काम आता होगा?

(2) जिस देश का यह नोट होगा, उस देश का नाम क्या था?

(3) उस देश में नोट छापने का अधिकार किसे प्राप्त था?

(4) उस देश की मुद्रा का नाम क्या था?

(5) उस देश के पशु-पक्षी और पेड़-पौधों के बारे में क्या-क्या जानकारी मिलती है?

(6) कितनी भाषाएं बोली जाती थीं?

(7) कितनी लिपियां थीं?

(8) महत्वपूर्ण भाषा-लिपि कौन-सी थीं?

(9) उस देश की शासन व्यवस्था के बारे में क्या पता चलता है?

(10) इस नोट से देश की अर्थव्यवस्था के बारे में क्या अनुमान लगाया जा सकता है? किन-किन चीज़ों के कारखाने रहे होंगे, व्यापार कैसे होता होगा, अलग-अलग काम-धन्धे क्या रहे होंगे?

(11) इस नोट के कागज़ और छपाई से उनके तकनीकी विकास के बारे में क्या कहा जा सकता है?

(12) उन लोगों की साज-सज्जा एवं कलात्मकता के बारे में क्या कहा जा सकता है। उनकी साज-सज्जा में ज्यामितीय आकारों और वानस्पतिक आकारों का उपयोग किस तरह का था?

प्रत्येक टोली अपने-अपने अनुमान प्रस्तुत करे और उस पर चर्चा करे। जब 40-45 छात्रों के बीच ऐसी एक बहस छिड़ जाएगी तो उसका मज़ा ही कुछ और होगा। कितने तरह-तरह के विचार निकल आएंगे जिसका हम अंदाज़ भी नहीं कर सकते। दरअसल इतिहासकार को भी कुछ इसी तरह अपनी कल्पनाशीलता का उपयोग करना पड़ता है।

अब हम ऐसी ही एक गतिविधि सिन्धु घाटी के एक शहर मोहनजोदड़ो से मिली एक पत्थर की मुहर के साथ करेंगे।

यह मुहर मोहनजोदड़ो से प्राप्त हुई है और एक मुलायम पत्थर के चपटे टुकड़े से बनाई गई है। इसका मुहर के रूप में उपयोग किया जाता था। इसे चिकनी मिट्टी पर दबाने से यही आकृति उस पर अंकित हो जाती थी।

अब इस मुहर से हम कौन-कौन-सी जानकरियां हासिल कर सकते हैं। कक्षा में प्रत्येक टोली इस पर विचार करे और अपने-अपने निष्कर्ष बताए। चर्चा को आगे बढ़ाने के लिए आप ऐसे कुछ सवाल पूछ सकते हैं :

(1) यह मुहर कैसे बनी होगी? पत्थर को तराश कर इन्हें कौन बनाता होगा? किन औज़ारों से बनाया गया होगा इसे?
(2) मोहनजोदड़ो के लोग किन-किन जानवरों से परिचित थे? इनमें से कौन-से जानवर पालतू रहे होंगे?
(3) अगर इस तरह के जानवर मोहनजोदड़ो के पास पाए जाते थे तो वहां का पर्यावरण कैसा रहा होगा?
(4) इसमें जो आदमी बना है वह कौन हो सकता है, देवता/राजा/गड़रिया?
(5) क्या वे अपनी बातों को लिखकर व्यक्त करते थे?
(6) इस मुहर का उपयोग कौन करता होगा? किस काम के लिए उपयोग करता होगा?
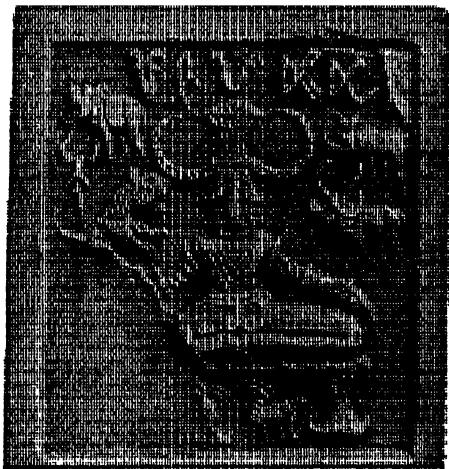
अपने समाज में मुहरों का उपयोग कौन करते हैं? (यहां आप मुहर का मतलब समझा सकते हैं – चिट्ठियां, पार्सले क्यों सील किये जाते हैं....)

इस मुहर के आधार पर क्या तुम बता सकते हो कि मोहनजोदड़ो में इनमें से कौन-कौन लोग रहते होंगे? पुजारी, व्यापारी, शिकारी, किसान, अधिकारी, औज़ार बनाने वाले कारीगर, पत्थर तराशने वाले कारीगर, चोर, लिपिक, हम्माल, लुहार, सुनार, बढ़ई, सैनिक ...?

दरअसल इस तरह की गतिविधियों से हम यह आशा नहीं करते कि छात्र मोहनजोदड़ो के बारे में पूर्ण और सही निष्कर्ष पर पहुंचें। इसके लिए एक मुहर का अध्ययन पर्याप्त नहीं होगा। लेकिन इसका उद्देश्य यह है कि छात्रों को उस प्रक्रिया का आभास हो जिससे इतिहासकार, इतिहास की खोज करते हैं, और वे अपनी आंखों व कानों को पैना बनाएं और कल्पना एवं चिंतन से गुज़रें। आखिर यही गुण एक अच्छे इतिहासकार को परिभाषित करता है।

खेती करने वाली चींटियां

चींटियां अपनी मनपसंद फफूंद की खेती करती हैं, सुनकर आश्चर्य होता है! लेकिन यह सच है कि चींटियों की कुछ जातियां अपना पेट भरने के लिए पत्तों पर फफूंद की खेती करती हैं। खेती कुछ इस तरह संभव हो पाती है – जब रानी चींटी को नई बस्ती बसानी होती है तब वह अपनी सेविकाओं (चीटियों) के साथ चल पड़ती है और साथ में फफूंद के बीज भी रख लेती है। नई बस्ती बसाने के साथ-साथ भोजन-पानी की समस्या भी तो होती है, इसलिए कुछ चींटियां अपने बच्चों को पीठ पर बिठाकर पत्तियां तोड़ने चल देती हैं क्योंकि इन पत्तियों पर ही फफूंद की खेती हो सकती है। चींटियां पत्तियों को तोड़कर अपनी पीठ पर लाद लेती हैं और पत्तियों पर अपने बच्चों को चढ़ा लेती हैं। पत्तियों पर बैठे बच्चे घूम-घूम कर इस बात का ध्यान रखते हैं कि पत्तियों पर कोई अन्य फफूंद न उग पाए और पत्तियां साफ सुथरी रहें।

फिर चींटियां पत्तियों को अपनी बस्ती के पास लाती हैं और इन्हें महीन पीसकर ज़मीन पर फैलाकर इन पर फफूंद के बीज बिखेर देती हैं। बीच-बीच में इन महीन टुकड़ों को अपनी लार से साफ करती हैं। चींटियां ऐसा इसलिए करती हैं क्योंकि उनकी लार में ऐसे रसायन होते हैं जो अन्य फफूंदों को उगने से रोकते हैं और पत्तियों पर चींटियों की मनपसंद फफूंद ही उग पाती है!

घनश्याम की नजर से . . .

मई का महीना आते ही निकल पड़े, दर्ज संख्या वृद्धि अभियान पर
इस साल पहली में 60 छात्र होना जरूरी तो एक मास्टर कम

हर 100 की जनसंख्या पर 15 बच्चे स्कूल में दर्ज होना जरूरी। सरकारी आदेश
??? सरकार
अपने शहर में ऐसी प्राबलम नही पालक एडमिशन के लिए दाड़ी से हाथ लगाते हैं

गुरुजी आए

जी, मास साव
तीन से ऊपर कित्ते मोड़ा-मोड़ी हैं?
माससाब चार
मैं नाम लिख रहा हूं
नइ माससाब, तीन को है
वा साल तुमने लिखो थो।

छोटी मोड़ी कित्ती की है?
अभी तो तीन साल की है
ठीक है, लिख लेता हूँ
मास्साब को स्कूल नही आ पायगी
कोई बात नही, नाम तो लिखा दे
लो मास्साब
ला, अंगूठा लगा
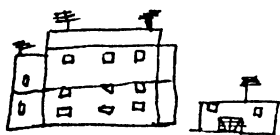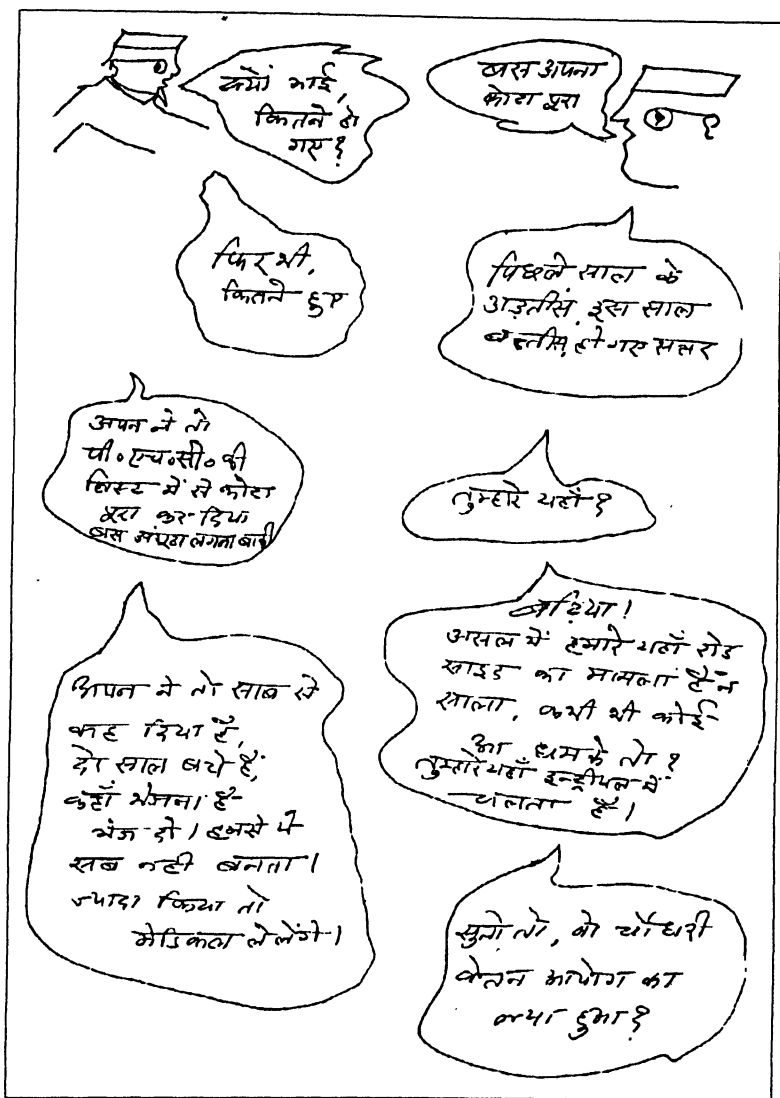
घनश्याम तिवारी एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के सदस्य हैं एवं बैतूल ज़िले के सुदूर इलाकों की शालाओं से कई वर्षों से जुड़े रहे हैं।

कहानी

शिवु और राक्षस की कहानी

- सत्यजीत रे

बच्चे कितने कल्पनाशील हो सकते हैं, कैसे थोड़ी-सी हवा मिलने पर ही वे अपना खुद का एक संसार बुन लेते हैं – इसका बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है मशहूर फिल्म-निर्देशक सत्यजीत रे ने।

"आ शिवु, इधर सुनते जा।"

शिवु जब स्कूल जाता था, फटिकदा अकसर उसे इसी तरह पुकारा करता था। फटिकदा का मतलब है पगला फटिक।

जयनारायण बाबू के मकान से आगे बढ़ने पर, चौराहे के पास, जहां आज दस बरसों से स्टीम-रोलर पड़ा हुआ है, ठीक उस स्टीम-रोलर के सामने फटिकदा की छोटी-सी टीन की चाल है। न जाने, फटिक आठों पहर ओसारे पर बैठकर खुट-खुट कौन-सा काम करता रहता है। शिवु को इतना ही मालूम है कि फटिकदा बहुत ही गरीब है। लोग कहा करते हैं, फटिक किसी ज़माने में खूब लिखा-पढ़ा करता था, इसीलिए वह पागल हो गया है। मगर जब शिवु फटिक की बातें सुनता है तो उसे लगता है, फटिक की तरह बुद्धिमान व्यक्ति कोई दूसरा नहीं है।

तब हां, यह सच है कि फटिक की ज़्यादातर बातें अजीब और पागलपन से भरी हुआ करती हैं, "कल चांद के आसपास का हिस्सा देखा था? बाईं ओर एक सींग जैसा कुछ निकला हुआ था। कुछ दिनों से कौवे अजीब सुर में पुकार रहे हैं। सुना है, सबको ठंड लग गई है।"

शिवु का मन हंसने को करता है, कभी-कभी ऊब भी महसूस होती है। जिन बातों का कोई उत्तर नहीं हो सकता, जिनका सचमुच कुछ अर्थ नहीं होता, उन बातों को सुनने का मतलब है समय नष्ट करना। यही वजह है कि कभी-कभी फटिक के पुकारने पर भी शिवु उसके पास नहीं जाता। "आज मेरे पास वक्त नहीं है फटिकदा, दूसरे दिन आऊंगा।" यह कहकर वह स्कूल की ओर चल देता है।

आज भी उसने सोचा था कि वह नहीं जाएगा, परन्तु फटिकदा ने आज बहुत ज़्यादा दबाव डाला।

लोग कहा करते हैं, फटिक किसी ज़माने में खूब लिखा-पढ़ा करता था, इसीलिए वह पागल हो गया है। मगर जब शिवु फटिक की बातें सुनता है तो उसे लगता है, फटिक की तरह बुद्धिमान व्यक्ति कोई दूसरा नहीं है।

"मैं तुझे जो कहना चाहता हूं, उसे न सुनेगा तो तेरी हानि होगी।"

शिवु सुन चुका है कि पागल आदमी बीच-बीच में ऐसी बातें बोला करता है जो सामान्य मनुष्य के लिए असंभव हैं। इसीलिए हानि के बारे में सोचते ही वह डरता हुआ फटिक की ओर चला गया।

हुक्के में डाब (कच्चा नारियल) का पानी भरते-भरते फटिक बोला, "जनार्दन बाबू को तूने ध्यान से देखा है?"

जनार्दन बाबू शिवु वगैरह के नए गणित-शिक्षक हैं। उनको आए अभी दस दिन ही हुए हैं।

शिवु बोला, "हर रोज़ तो उन्हें देखता हूं। आज भी पहले गणित का पीरियड है।"

फटिक ने अपनी जीभ से ऊब भरा एक शब्द निकाला– 'छिक्' और उसके बाद बोला, "अवलोकन और निरीक्षण एक ही चीज़ नहीं हुआ करते। बता तो, तूने जो बेल्ट लगाया है उसमें कितने सूराख़ हैं? तुम्हारी कमीज़ में कितने बटन हैं? बिना देखे बता तो सही।"

शिवु किसी प्रश्न का ठीक से जवाब नहीं दे सका।

फटिक बोला, "तेरी अपनी चीज़ है, तेरे बदन पर है पर तूने ध्यान नहीं दिया है। उसी तरह तूने जनार्दन बाबू को ध्यान से नहीं देखा है।"

"किस चीज़ पर ध्यान दूं?"

हुक्के पर चिलम रखकर गुड़-गुड़कर दो बार दम लेकर फटिक बोला, "जैसे दांत पर।"

"दांत?"

"हूं, दांत।"

"किस तरह ध्यान से देखूं? वे हंसते ही नहीं हैं।"

बात सही है। चाहे क्रोधी न हों, पर वैसा गंभीर शिक्षक शिवु वगैरह के स्कूल में नहीं है।

फटिक ने कहा, "ठीक है। अब जब वे हंसें तो सिर्फ उनके दांतों को ही गौर से

फटिक बोला, "अवलोकन और निरीक्षण एक ही चीज़ नहीं हुआ करते। बता तो, तूने जो बेल्ट लगाया है उसमें कितने सूराख़ हैं? तुम्हारी कमीज़ में कितने बटन हैं? बिना देखे बता तो सही।"

देखना। फिर आकर मुझे बताना कि तूने क्या देखा है।"

●

आश्चर्य की बात है। ठीक उसी दिन गणित के पीरियड में जनार्दन बाबू के लिए हंसने का एक कारण घटित हो गया।

ज्यामिति पढ़ाते-पढ़ाते उन्होंने शंकर से 'चतुर्भुज' का अर्थ पूछा और शंकर ने कहा, "विष्णु भगवान सर।" यह सुनते ही जनार्दन बाबू क्रोधपूर्ण हंस पड़े और शिवु की आंखें तत्काल उनके दांतों की ओर चली गईं।

तीसरे पहर घर लौटते हुए फटिक के घर के सामने पहुंचने पर शिवु ने फटिक को अपने घर में इमाम-दस्ते में कुछ कूटते हुए पाया। शिवु पर नज़र पड़ते ही फटिक बोला, "अगर यह औषध ठीक उतर गई तो देखना मैं बहुरूपिए की तरह रंग बदलने में समर्थ हो जाऊंगा।'

शिवु ने कहा, "फटिकदा, मैंने देख लिया?"

"क्या?"

"दांत।"

"ओ। कैसा मालूम हुआ?"

"यों सब ठीक है, पान का दाग है और दो दांत कुछ बड़े हैं।"

"कौन-कौन से?"

"बगल के। यहां के।" शिवु ने उंगली से बताया।

"हूं। वहां के दांत को क्या कहा जाता है, मालूम है?"

"क्या?"

"श्वदन्त। कुकुर-दांत।"

"ओ।"

"आदमी के जबड़े में इतना बड़ा

कुकुर-दांत इसके पहले कभी देखा है न?"

"शायद नहीं।"

"कुकुर-दांत किसका बड़ा होता है, जानते हो?"

"कुत्ते का।"

"ईडियट! सिर्फ कुत्ते का ही क्यों? सभी मांसाहारी जानवरों के श्वदंत बड़े होते हैं। उन्हीं दांतों से कच्चे मांस को नोच-नोचकर, हड्डियों को वे चबाकर खाते हैं। खासकर हिंसक जीव-जन्तु।"

"ओ।"

"और किसके श्वदंत बड़े होते हैं?"

शिवु आकाश-पाताल सोचने लगा। और किसका हो सकता है? आदमी और जीव-जन्तुओं के अलावा दांत वाले और होते ही क्या हैं?

फटिकदा ने अपने इमाम-दस्ते में एक अखरोट और एक चम्मच काला जीरा डालकर कहा, "तू जानता नहीं है? राक्षसों के हुआ करते हैं।"

"राक्षसों के! राक्षसों से जनार्दन बाबू का क्या संपर्क हो सकता है?" और, आजकल राक्षसों के बारे में चर्चा ही क्यों हो सकती है। इसका अस्तित्व तो दन्तकथाओं की पुस्तकों के पृष्ठों में ही है। राक्षसों के बारे में शिवु ने ढेरों कहानियां पढ़ी हैं : उनके दांत मूली की तरह होते हैं, सूप की तरह ....

शिवु चौंक पड़ा। सूप की तरह पीठ! जनार्दन बाबू की पीठ सीधी नहीं है। कैसी तो कुबड़े के जैसी, सूप की तरह। शिवु ने किसी से सुना था कि जनार्दन बाबू वात के मरीज़ हैं, इसलिए पीठ सीधी करके चल नहीं पाते।

मूली की तरह दांत, सूप की तरह पीठ और? और पता नहीं राक्षसों के क्या-क्या होते हैं।

और गेंदे की तरह आंखें।

जनार्दन बाबू की आंखों को शिवु ने ध्यान से देखा है? नहीं , नहीं देखा है। ध्यान से देखने की संभावना नहीं है।

वजह यह कि जनार्दन बाबू चश्मा लगाते हैं और उनके चश्मे के कांच का रंग मटमैला है। उनकी आंखों का रंग लाल या बैंगनी या कि हरा है, यह समझना नामुमकिन है।

शिवु गणित में तेज़ है। लघुत्तम समापवर्तक, महत्तम समापवर्तक, भिन्न – किसी को हल करने में वह असमर्थ नहीं रहता है। कम से कम कुछ दिन पहले तक उसके साथ यही बात थी! प्यारीचरण बाबू जब गणित-शिक्षक थे, उसे हर रोज़ दस में से दस अंक प्राप्त होते थे। मगर दो दिनों से शिवु थोड़ी बहुत उलझन महसूस कर रहा है। कल उसने मन के ज़ोर से स्वयं को बहुत कुछ संभाल लिया था। सुबह नींद टूटते ही उसने मन ही मन कहना शुरू किया था कि वे राक्षस नहीं हो सकते। आदमी राक्षस नहीं हुआ करते। चाहे पहले होते हों, मगर अब नहीं हुआ करते। जनार्दन बाबू राक्षस नहीं हैं, वे

मनुष्य हैं। क्लास में भी बैठा-बैठा वह इन्हीं बातों को दुहरा रहा था। तभी एक बात हो गई।

ब्लैक बोर्ड पर एक हिसाब लिखकर जनार्दन बाबू अनमने जैसे हो गए और अपना चश्मा उतारकर उसे चादर के छोर से पोंछने लगे। और ठीक उसी वक्त शिवु से उनकी आंखें टकरा गयीं।

शिवु ने जो कुछ देखा उससे उसके हाथ-पांव ठंडे पड़ गए।

जनार्दन बाबू की आंखों की सफेदी– सफेद रंग की नहीं, चटख लाल रंग की है – पल्टु की पेंसिल की तरह लाल।

यह देखने के बाद शिवु बेचैन हो उठा।

> दो दिनों से शिवु थोड़ी बहुत उलझन महसूस कर रहा है। सुबह नींद टूटते ही उसने मन ही मन कहना शुरू किया था कि वे राक्षस नहीं हो सकते। आदमी राक्षस नहीं हुआ करते। चाहे पहले होते हों, मगर अब नहीं हुआ करते।

●

यों शिवु छुट्टी होने पर सीधे घर नहीं जाता है। वह शुरू में मित्तिर के बगीचे में जाता है। छतिवन के पेड़ के तले लाजवंती की जो लताएं हैं, उन्हें वह अपनी उंगलियों से छेड़-छेड़कर नींद में मशगूल कर देता है। उसके बाद वह सरलदीघि के किनारे जाता है। तालाब के पानी में ठीकरे फेंक कर वह झींझरी खेलता है। उसका ठीकरा अगर सात बार से ज़्यादा फलांगता हुआ उस पार पहुंच सके तो वह हरेन का रेकार्ड तोड़ सकेगा।

सरलदीघि के बाद ईंट की भट्टियों का मैदान है। वहां वह सजी हुई ईंटों की छल्ली पर दसेक मिनट तक व्यायाम करने के बाद कुहनी के बल चलता हुआ मैदान पार करता है और उसके बाद मकान के खिड़कीनुमा दरवाज़े के पास आता है।

आज मित्तिर के बगीचे में आने पर उसे लाजवंती की लताएं झुकी हुई मिलीं। ऐसी बात क्यों हुई? लताओं पर से कोई चहल-कदमी करते हुए गया है? इस रास्ते कोई तो आता-जाता नहीं है!

अब शिवु को बगीचे में रहने की इच्छा नहीं हुई। एक अजीब सन्नाटा रेंग रहा है। आज जैसे जल्दी-जल्दी शाम घिरती जा रही है। कौए क्या रोज़ इसी तरह चिल्लाते हैं या किसी वजह से वे डर गए हैं? सरलदीघि के किनारे हाथ से किताबें नीचे उतारकर रखते ही शिवु ने महसूस किया आज ठीकरे उछालना ठीक नहीं है। आज उसे ज़्यादा देर तक बाहर नहीं रहना चाहिए। अगर रहेगा तो हो सकता है, विपत्ति का सामना करना पड़े।

एक विशाल मछली जैसी किसी चीज़ ने पोखर के बीच छलांग लगाकर गहरे पानी में डुबकी लगाई।

शिवु ने किताबें उठा लीं। उस पार के बरगद पर झूलते चमगादड़ों ने पेड़ को स्याह जैसा बना डाला है। थोड़ी देर के बाद उनके उड़ने का समय आएगा। फटिकदा ने उससे कहा है कि चमगादड़ों के सिर में खून न रहने का कारण वह एक दिन उसे बता देगा।

जामुन के पीछे की झाड़ी से एक तक्षक की आवाज़ आयी, "खोक्! खोक्! खोक्!"

शिवु अपने घर की ओर रवाना हुआ।

ईंटों के भट्ठे के पास आते ही उसकी नज़र जनार्दन बाबू पर पड़ी। ईंटों की छल्ली से बीसेक हाथ की दूरी पर एक बेर का पेड़ है। उसके पास दो बकरियां खेल रही हैं और जनार्दन बाबू अपने हाथों में किताब और छाता थामे उनका खेल देख रहे हैं।

शिवु सांस रोक कर चुपचाप ईंट की एक छल्ली पर चढ़ गया और दो ईंटों की फांक से अपनी गरदन को यथासंभव आगे बढ़ाकर, जनार्दन बाबू को देखने लगा।

उसने देखा, बकरियों की ओर ताकते-ताकते जनार्दन बाबू ने दो बार अपने दाहिने हाथ को उलटकर उससे होठों के नीचे के हिस्से को सहलाया।

जीभ से लार टपके बिना कोई आदमी इस तरह अपने होंठों के नीचे का हिस्सा नहीं पोंछता है।

उसके बाद शिवु ने देखा, जनार्दन बाबू उस प्रकार नीचे की ओर झुक पड़े, जिस तरह कि लोग आक्रमण करने की स्थिति में किया करते हैं।

फिर एकाएक हाथ से किताब और छाता फेंक कर एक ही झपट्टे में बकरी के एक बच्चे को पकड़कर हाथों में उठा लिया। और, उसी क्षण शिवु को बकरी के बच्चे की चीख और जनार्दन बाबू की हंसी सुनाई पड़ी।

शिवु ने एक ही छलांग में ईंट की छल्ली को पार किया। दूसरी छलांग में वह एक दूसरी छल्ली को ज्यों ही फलांगना चाहता था कि फिसलकर धड़ाम से गिर पड़ा।

"वहां कौन है?"

किसी तरह शिवु ने जब अपने आपको संभाला तो देखा, जनार्दन बाबू बकरी के बच्चे को नीचे रखकर उसकी ओर आ रहे हैं।

"कौन हो? शिवराम? चोट लग गई? तुम वहां क्या कर रहे थे?" शिवु ने बोलने की चेष्टा की, पर उसका गला सूख गया था। उसे इच्छा हो रही थी कि बदले में वह जनार्दन बाबू से पूछे कि आप वहां क्या कर रहे थे; कि आपके हाथ में बकरी का बच्चा क्यों था, कि आपकी जीभ से लार क्यों टपक रही थी।

जनार्दन बाबू शिवु के पास आये और बोले, "लो, मेरा हाथ पकड़ो।"

बिना उनका हाथ पकड़े शिवु किसी तरह उठकर खड़ा हुआ।

"तुम्हारा घर निकट ही है न?"

"हां सर।"

"वही लाल जैसा मकान?"

"हां सर।"

"ओ।"

"मैं चल रहा हूं, सर।"

"वह क्या है – खून?"

शिवु ने देखा, उसका घुटना छिल गया है और थोड़ा-सा रक्त चू कर नीचे गिर पड़ा है। जनार्दन बाबू उसी रक्त की ओर ताक रहे हैं और उनके चश्मे के कांच आग की तरह चमक रहे हैं।

"मैं चल रहा हूं, सर।"

शिवु ने किसी तरह ज़मीन पर से अपनी किताबें उठायीं।

"सुनो, शिवराम।"

जनार्दन बाबू ने आगे बढ़कर शिवु की पीठ पर अपना हाथ रखा। शिवु के कलेजे पर जैसे हथौड़े की चोटें पड़ने लगीं।

"अच्छा ही हुआ कि तुम एकान्त में मिल गए। सोचा था, तुमसे एक बात पूछूं। गणित में कुछ कठिनाई महसूस करते हो? आज इतने आसान सवालों को भी तुम हल नहीं कर सके। अगर तुम्हें कोई कठिनाई महसूस हो तो छुट्टी के बाद मेरे घर पर आया करो, मैं तुम्हें समझा दिया करूंगा। गणित ऐसा विषय है जिसमें

पूर्णांक प्राप्त किए जा सकते हैं। मेरे घर पर आओगे न?"

शिवु किसी तरह दो कदम पीछे हटा। जनार्दन बाबू का हाथ अपनी पीठ से अलग कर थूक निगलते हुए बोला, "नहीं सर। मैं खुद हल कर लूंगा, सर। कल ठीक हो जाएगा।"

"ठीक है। तब हां, कठिनाई हो तो बताना। और एक बात। तुम मुझसे इतना डरते क्यों हो? मैं क्या राक्षस हूं जो दांत से काटकर खा डालूंगा? अयं? ह...ह...ह...ह..."

●

ईंट की भट्‌टी से एक ही दौड़ में घर लौट आने के बाद शिवु ने देखा, सामने के मकान में हीरेन ताऊ आए हुए हैं। हीरेन ताऊ कलकत्ते में रहते हैं। वे मछली पकड़ने के शौकीन हैं। बाबूजी और हीरेन ताऊजी प्रातः हर रविवार सरलदीघि (छोटा पोखर) में मछली पकड़ने जाते हैं। अब की भी शायद वे लोग जाएंगे, क्योंकि शिवु ने देखा, चींटी के अंडों का चारा बनाया गया है।

शिवु ने यह भी देखा कि अब की हीरेन ताऊजी बंदूक भी लेकर आए हैं। सुनने में आया है, बाबूजी और हीरेन ताऊजी सोनापुर की झील में चाहा का शिकार करने जाएंगे। बाबूजी भी बंदूक चलाते हैं मगर वे हीरेन ताऊजी की तरह निशानेबाज़ नहीं हैं।

रात में खा-पीकर शिवु शयन-कक्ष में गया और सोचने लगा। जनार्दन बाबू के राक्षस होने में अब उसे किसी प्रकार का संदेह न रह गया था। भाग्यवश फटिकदा ने उसे होशियार कर दिया था। वरना आज हो सकता है ईंट की भट्‌टी में ही...। इसके बाद शिवु सोच नहीं सका।

बाहर खुली चांदनी फैली है। भजु के घर तक साफ-साफ दिख रहा है। शिवु की परीक्षा निकट है, अतः वह रात में जल्दी सो जाता है और भोर में उठकर पढ़ता है। जब तक वह रोशनी नहीं बुझा देता, उसकी आंखों में नींद उतरती नहीं है। इतना ज़रूर है कि अगर चांदनी रात न होती तो वह रोशनी जलाकर रखता, क्योंकि ऐसा न करता तो सम्भवतः भय से उसे नींद ही न आती। बाबूजी और हीरेन ताऊजी अभी खाने बैठे हैं, मां उन्हें खिला रही है।

खिड़की के बाहर, चांदनी के प्रकाश में चमकते बेल के वृक्ष की ओर ताकते-ताकते शिवु की आंखों में नींद उतर आई थी। तभी किसी चीज़ पर दृष्टि पड़ते ही उसकी नींद भाग खड़ी हुई और उसके रोंगटे खड़े हो गए।

दूर से एक आदमी उसकी खिड़की की ही ओर चला आ रहा है।

वह आदमी थोड़ा कूबड़ा है और उसकी आंखों पर चश्मा है। चश्मे के कांच चांदनी में चमक रहे हैं।

जनार्दन बाबू!

शिवु का गला फिर से सूख गया।

जनार्दन बाबू ने दबे पांवों बेल के वृक्ष को पार किया और आहिस्ता-आहिस्ता वे खिड़की के बिलकुल निकट आकर खड़े हो गए। शिवु ने अपनी बगल के तकिए को ज़ोरों से बांहों में जकड़ लिया।

कुछ देर तक इधर-उधर ताकने के बाद जनार्दन बाबू ने झिझक के साथ कहा, "शिंवराम हैं जीं?"

यह क्या? उनके स्वर में अनुनासिक भाव क्यों है? रात में उनका राक्षसपन और भी तीव्र हो जाता है?

"शिंवराम!" दूसरी बार पुकार आई।

अब शिवु की मां ने ओसारे पर से कहा, "ए शिवु बाहर कोई पुकार रहा है। तू सो गया क्या"

जनार्दन बाबू खिड़की से ओझल हो गए। कुछ देर के बाद उनकी आवाज़ सुनाई पड़ी, "शिवराम अपनी ज्यामिति की किताब ईंट की भट्टी पर छोड़ आया था। कल रविवार है, स्कूल में उससे मुलाकात नहीं होगी। आज सुबह उठकर उसे पढ़ना है, इसीलिए....."

उसके बाद फुसफुसाकर क्या कहा, शिवु को सुनाई नहीं पड़ा । आखिर में सिर्फ बाबूजी की बातें सुनाई दीं, "हां, अगर आपका यह कहना है तो अच्छा ही है। न होगा तो आपके घर पर ही भेज दिया करूंगा। ...हां, कल से।"

शिवु के न तो होंठ ही थरथराए और न गले से ही आवाज़ निकली, लेकिन उसका मन चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगा, "नहीं, नहीं, नहीं, मैं नहीं जाऊंगा, किसी भी हालत में नहीं जाऊंगा। आप लोगों को कुछ भी मालूम नहीं है। वे राक्षस हैं! जाते ही मुझे खा जायेंगे।"

दूसरे दिन रविवार होने पर भी शिवु सुबह-सुबह फटिकदा के घर पर पहुंचा। उसे फटिकदा से बहुत-कुछ कहना है।

उसको देंखकर फटिकदा बोला, "स्वागतम्! तेरे घर के पास नागफनी का पौधा है न? दाव (हंसिया) से थोड़ा-सा काटकर मुझे दे जाना। दिमाग में एक तरह की नई रसोई पकाने की बात आई है।"

शिवु ने भर्राई आवाज़ में कहा, "फटिकदा!"

" क्या?"

"तुमने बताया था कि जनार्दन बाबू राक्षस हैं..."

"किसने कहा है?"

"तुम्हीं ने तो कहा था।"

"बिलकुल नहीं। तुमने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया।"

"कैसे?"

"मैंने तुझसे कहा था कि जनार्दन बाबू के दांतों को गौर से देखना। उसके बाद तूने बताया कि उनके श्वदंत बड़े-बड़े हैं। मैंने कहा, वैसे कुकुर-दांत राक्षसों के भी होते हैं। इसका मतलब क्या यह है कि जनार्दन बाबू राक्षस हैं?"

"फिर वे राक्षस नहीं हैं?"

"ऐसा मैंने नहीं कहा था।"

"फिर?"

फटिकदा ओसारे पर खड़ा हो गया और उसने ज़ोरों से एक उबासी ली। फिर बोला, "आज तेरे ताऊजी पर नज़र पड़ी। लगता है, मछली पकड़ने आए हैं। मैक्कडी साहब ने बंसी से एक बार शेर पकड़ा था। उसकी कहानी मालूम है?"

शिवु ने मरियल की तरह कहा, "फटिकदा, तुम क्या अंट-संट बक रहे हो? जनार्दन बाबू सचमुच ही राक्षस हैं। मैं जानता हूं कि वे राक्षस हैं। मैंने बहुत कुछ देखा-सुना है।"

उसके बाद शिवु ने फटिक को पिछले दो दिनों की घटनाओं के बारे में बताया। सब कुछ सुनने के बाद फटिक ने गंभीरता के साथ सिर हिलाते हुए कहा, "हम्! तो तू इसके संबंध में क्या करने जा रहा है?"

"तुम्हीं बता दो फटिकदा। तुम्हें तो सब मालूम ही है।"

अपना सिर झुकाकर फटिक सोचने लगा।

मौका देखकर शिवु ने कहा, "अभी मेरे घर पर बंदूक है।"

फटिक ने दांत पीसकर कहा, "बलिहारी है तुम्हारी बुद्धि की! बंदूक रहने से क्या होगा? बंदूक से राक्षस को मारेगा? गोली घूमकर चली आएगी और जो गोली चलायेगा, उसी को आकर लगेगी।"

"ऐसा?"

"जी हां? बेवकूफ कहीं का।"

"फिर?" शिवु की आवाज़ धीमी होती जा रही थी। "फिर क्या होगा फटिकदा? आज से मुझे बाबूजी...."

"ज़्यादा मत बक। बड़-बड़ करके मेरे कान का परदा फाड़ रहा है।"

दो मिनट तक सोचने के बाद फटिक शिवु की ओर मुड़कर बोला, "जाना ही पड़ेगा।"

"कहां?"

"जनार्दन बाबू के घर पर।"

"क्यों?"

"उनकी जन्म-कुंडली देखनी है। मैं अभी निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकता हूं। जन्म-कुंडली देखने पर सब पता चल जाएगा। पेटी-बक्सा उलटने-पुलटने से जन्म-कुंडली मिल ही जाएगी।"

"मगर..."

"तू चुप रह। पहले योजना सुन ले। हम दोनों दोपहर में जाएंगे। आज रविवार है,

---

मैंने तुझसे कहा था कि जनार्दन बाबू के दांतों को गौर से देखना। तूने बताया कि उनके श्वदंत बड़े-बड़े हैं। मैंने कहा, वैसे कुकुर-दांत राक्षसों के भी होते हैं। इसका मतलब क्या यह है कि जनार्दन बाबू राक्षस हैं?

वे घर पर ही रहेंगे। तू मकान के पिछवाड़े में जाकर जनार्दन बाबू को पुकारना। जब बाहर निकलें तो कहना, गणित समझने के लिए आया हूं। उसके बाद दो-चार आलतू-फालतू बातें कर उन्हें अटकाकर रखना। मैं उसी मौके पर मकान के सामने की तरफ से अन्दर जाकर जन्म-कुंडली ले आऊंगा। फिर तू इधर से भागना और मैं उधर से भागूंगा। बस।"

"उसके बाद?" शिवु को योजना बहुत ही अच्छी लगी हो, बात ऐसी नहीं थी। लेकिन फटिक पर निर्भर करने के अलावा दूसरा कोई चारा नहीं था।

"तीसरे पहर तुझे फिर से मेरे घर पर आना है। तब तक जन्म-कुंडली देखकर, पुरानी कुछ पोथियों को उलट-पलटकर मैं बिलकुर तैयार रहूंगा। अगर देखकर पता चला कि जनार्दन बाबू सचमुच राक्षस हैं तो फिर उसका उपाय मैं जानता हूं। तू घबराना मत। और अगर देखकर पता चला कि राक्षस नहीं हैं तो फिर चिन्ता की कोई बात ही नहीं।"

फटिकदा ने बताया था कि दोपहर में बाहर निकलेंगे। यही वजह है कि खा-पीकर शिवु फटिक के घर पर आया। पांचेक मिनट के बाद फटिकदा ने बाहर आकर कहा, "मेरी बिल्ली को सुंघनी की आदत लग गई है। झंझटों की क्या कोई कमी है?" शिवु ने देखा, फटिक के हाथों में एक जोड़ा चमड़े का फटा दस्ताना और साइकिल की एक घंटी है। घंटी को शिवु के हाथ में थमाते हुए कहा, "इसे तू रख ले। मुसीबत में फंसने पर इसे बजा देना। मैं आकर तेरी रक्षा करूंगा।"

पूरबी मोहल्ले के अंतिम छोर पर, दोल-गोविन्द के मकान के बाद ही जनार्दन मास्टर का मकान है। वे अकेले ही रहते हैं, घर में नौकर तक नहीं रखते। बाहर से यह समझना मुश्किल है कि इस घर में कोई राक्षस रहता है।

जब रास्ता थोड़ा ही बाकी बच गया, शिवु और फटिकदा अलग-अलग हो गए।

मकान के पिछवाड़े में पहुंचने के बाद शिवु को लगा, उसका गला फिर से सूखता जा रहा है। जनार्दन बाबू को पुकारने के वक्त अगर उसके गले से आवाज़ न निकले तो?

मकान के पिछवाड़े एक दीवार है, उस दीवार में एक दरवाज़ा और दरवाज़े के पास ही अमरूद का एक पेड़ था। उस पेड़ के आसपास झाड़-झंखाड़ों का जंगल है।

शिवु दबे पांवों आगे बढ़ता गया। अब वह देर करेगा तो फटिकदा की सारी योजना चौपट हो जाएगी।

थोड़ी-सी और हिम्मत बटोरने के लिए शिवु अमरूद के पेड़ पर हाथ रखकर उसके सहारे टिकने जा रहा था और 'मास्टर-साहब' कहकर पुकारने जा रहा था कि तभी 'किचमिच' आवाज़ सुनकर उसने नीचे की ओर देखा और कालभैरवी की एक लता के झुरमुट में एक गिरगिट को जाते हुए देखा। गिरगिट जिस रास्ते

से गुज़रा, उसकी बगल में सफेद जैसी कोई चीज़ पड़ी हुई दिखी।

बांस की एक कमाची से झुरमुट में सूराख करते ही सिहर उठा! यह तो हड्डी है। जानवर की हड्डी। किस तरह के जानवर की? बिल्ली की या कुत्ते की या कि बकरे की?

"वहां क्या देख रहे हो शिवराम?"

शिवु की रीढ़ की हड्डी में बिजली खेल गई। उसने पीछे की ओर मुड़कर देखा और जनार्दन बाबू को खिड़की के पल्लों को हटाकर, गरदन बढ़ाए अपनी ओर अजीब निगाहों से ताकते हुए पाया।

"कुछ खो गया है?"

"नहीं सर...मैं मैं...."

"तुम क्या मेरे पास ही आ रहे थे? फिर पिछवाड़े के दरवाज़े से क्यों? आओ अन्दर चले आओ।"

पीछे की ओर मुड़ते ही शिवु ने पाया, उसका एक पैर लता में फंस गया है।

"कल से मुझे सरदी-बुखार हो गया है। रात में मैं तुम्हारे घर पर गया था न। तब तुम सोए थे।"

शिवु इतनी जल्दी-जल्दी भाग नहीं पाएगा। उधर फटिकदा का काम खत्म हो ही नहीं पाएगा। वह बीच में ही पकड़ लिया जाएगा। एक बार मन हुआ कि घंटी बजाए। फिर मन में हुआ कि अभी वह किसी विपत्ति में फंसा नहीं है। हो सकता है कि फटिकदा बिगड़ने लगें।

"तुम झुककर क्या देख रहे थे?"

शिवु को तत्काल कोई उत्तर सूझ नहीं पड़ा। जनार्दन बाबू ने आगे बढ़कर कहा, "बड़ी ही गंदी जगह है। उधर न जाना ही अच्छा है। न जाने कुत्ता कहां से मांस लाकर हड्डी वहां फेंक देता है। सोचा उसे एक बार डांटूंगा, मगर हो नहीं पाता है। मुझे जीव-जन्तु बहुत अच्छे लगते हैं न!"

जनार्दन बाबू ने अपने हाथ के पिछले हिस्से से होंठों के नीचे का हिस्सा पोंछा।

"तुम अन्दर आओ शिवु...तुम्हारा गणित...."

अब देरी नहीं करनी चाहिए। "आज नहीं कल आऊंगा," यह कहकर शिवु ने मुड़कर दौड़ लगाई और एक ही दौड़ में मैदान, रास्ता, नीलू का मकान, कार्तिक का मकान, हरेन का मकान – सबको पार कर वह साहा बाबू के गिरे मकान के ओसारे पर आकर हांफने लगा। आज की बात उसे कभी नहीं भूलेगी। उसमें इतनी हिम्मत हो सकती है, उसने स्वयं कभी इस पर सोचा नहीं था।

●

तीसरा पहर आते न आते शिवु फटिक के मकान पर आकर हाज़िर हुआ। पता नहीं, फटिकदा को उसकी जन्म-कुंडली में क्या मिला होगा।

शिवु पर नज़र पड़ते ही फटिक ने सिर हिलाया।

"सब गड़बड़ हो गया।"

"क्यों फटिकदा? जन्म-कुंडली नहीं मिली?"

"मिल गई है। तेरे गणित के शिक्षक राक्षस हैं, इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है। वे राक्षस ही नहीं, बल्कि पिरिन्डी राक्षस हैं। मामला गंभीर है। साढ़े तीन सौ पुरखों पूर्व ये लोग पूरे राक्षस थे। मगर इनमें तेज़ी इतनी है कि अब भी इनमें दो-चार आधे राक्षस के रूप में मिल जाते हैं। अब किसी भी देश में, पूरा राक्षस मिलता नहीं है। है तो सिर्फ अफ्रीका के किसी इलाके में, ब्राज़ील और बोर्नियो वगैरह स्थानों में। हां, आधा राक्षस अब भी यदा-कदा सभ्य देशों में मिल जाता है। जनार्दन बाबू भी उसी किस्म के हैं।"

"फिर गड़बड़ क्यों?" शिवु की आवाज़ थरथरा उठी। अगर फटिकदा हार मान लें तो उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा जाएगा।

"तुमने सबेरे बताया था कि तुम उपाय जानते हो?"

"मैं न जानता होऊं, ऐसी कोई चीज़ नहीं है।"

"फिर?"

फटिकदा कुछ गंभीर हो गया। फिर बोला, "मछली के पेट में क्या रहता है?"

लो, फटिकदा फिर पागलपन करने लगा! शिवु ने रोनी-रोनी-सी आवाज़ में कहा, "फटिकदा, राक्षस की बातें चल रही थीं और तुम मछली की बात ले आए।"

"क्या रहता है?" फटिक ने गरजते हुए कहा।

'पो-पोटा*?" फटिकदा की आवाज़ सुनकर शिवु बेहद डर गया था।

"तेरा सिर! इतनी कम विद्या से तू बगुले का बकलस भी लगा न पाएगा। ढाई वर्ष की उम्र में मैंने एक श्लोक लिखा था जो अब भी याद है :

नर या बंदर या जितने भी जीव जगत के
हृत् पिंडों में प्राण रहा करते हैं सबके।
मत्स्य-उदर में प्राण बसा करते दनुजों के
वे न सहज ही अतः मरा करते मनुजों से।"

बात तो ठीक है। शिवु ने बहुत-सी किताबों में पढ़ा है कि राक्षसों के प्राण मछलियों के पेट में रहते हैं। उसे यह बात याद रखनी चाहिए थी।

श्लोक को दुहराते हुए फटिक ने कहा, "दोपहर जब तू मास्टर के घर पर गया तो जनार्दन राक्षस को किस हालत में पाया?"

"बताया कि उन्हें सरदी-बुखार है।"

"होगा ही। फटिक की आंखें चमकने लगीं। होगा नहीं? प्राण खतरे में जो है! जैसे ही कतला मछली बंसी से पकड़ी गई है, वैसे ही बुखार आ गया। यह तो होगा ही।"

उसके बाद शिवु की ओर बढ़कर, उसकी कमीज़ के अगले हिस्से को एकाएक मुट्ठी में कसते हुए बोला, "हो सकता है, अभी भी वक्त है। तेरे ताऊजी आधा घंटा पहले सरलदीघि से उस आधे मन की कतला मछली पकड़कर घर लौटे हैं। देखते ही मुझे अन्दाज़ लग गया कि उसके पेट में ही जनार्दन राक्षस के प्राण

* मछली के पेट की थैली

हैं। अभी बुखार के बारे में सुनकर मेरा विश्वास पक्का हो गया। उस मछली को चीर कर देखना होगा।"

"मगर यह कैसे संभव हो पाएगा फटिकदा?"

"आसानी से। तुझ पर ही निर्भर है। और अगर यह न हो पाया तो तू किसी मुसीबत में फंस सकता है, इसकी कल्पना करते ही मेरा पसीना छूटने लगता है।"

एक घंटे के बाद शिवु सरलदीघि की आधे मन की उस कतला मछली को एक डोरी से बांधकर, घसीटता हुआ फटिक के मकान के सामने आया। थकावट के मारे वह हांफ रहा था। फटिक ने कहा, "किसी को पता नहीं है न?"

"नहीं," शिवु ने कहा, "बाबूजी नहा रहे थे, ताऊजी श्रीनिवास को डांट-फटकार रहे थे और मां सांझ-बाती में व्यस्त थी। नारियल की रस्सी खोजने में देर हो गई। और उफ, इतनी भारी है!"

"परवाह नहीं। पेशियां सुदृढ़ होंगी।"

फटिक मछली लेकर अन्दर चला गया। शिवु ने सोचा, फटिकदा में आश्चर्यजनक बुद्धि और ज्ञान है। उसकी वजह से इस बार शिवु के प्राणों की रक्षा हुई। हे भगवान्! ऐसा करना कि जनार्दन राक्षस के प्राण मछली के पेट में ही मिले।

दस मिनटों के बाद फटिक बाहर निकला और शिवु की ओर हाथ बढ़ाकर बोला, "ले। इसे कभी अपने से अलग मत करना। रात में तकिये के नीचे रखकर सोना। स्कूल जाते वक्त अपनी पैंट की बाईं जेब में रख लेना। अगर यह तेरे हाथ में रहेगा तो राक्षस केंचुए की तरह असहाय रहेगा। और इसे इमाम-दस्ते में कूटते ही राक्षस की जान खत्म हो जाएगी। मेरी राय में कूटने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी, हाथ में रख लेना ही काफी है, क्योंकि बहुत बार ऐसा देखने में आया है कि पिरिन्डी राक्षस चौवन वर्ष की उम्र के बाद पूरा आदमी हो गया है। तेरे जनार्दन मास्टर की उम्र अभी तिरपन [illegible], ग्यारह महीना, छब्बीस दिन है।"

शिवु ने अब साहस [illegible]रकर अपनी हथेली की ओर देखा – भीगी मिसरी के दाने-सा पत्थर अभी-अभी उगे चांद के प्रकाश में झिलमिला रहा है।

पत्थर को जेब के हवाले कर शिवु घर की तरफ मुड़ा। पीछे से फटिकदा ने कहा, "तेरे हाथ से मछली की गंध आ रही है। अच्छी तरह से धो लेना। और बेवकूफ जैसा बना रहना वरना तू पकड़ में आ जाएगा।"

●

दूसरे दिन गणित के पीरियड में कक्षा के अन्दर जाने के ठीक पहले जनार्दन बाबू को छींक आई, उसके बाद चौखट से ठोकर लगने के कारण उनके जूते का सोल फट गया। उस वक्त शिवु का बायां हाथ उसकी पैंट के अन्दर था।

क्लास खत्म होने पर शिवु को बहुत दिनों के बाद दस अंक प्राप्त हुए।

(फिल्म निर्देशन के अलावा सत्यजीत रे ने बच्चों के लिए फंतासी और रोमांचकारी साहित्य का सृजन भी किया है।)

सांपों से डर क्यों?

पुस्तक का नामः "सांप और हम"
लेखकः ज़य और रोम व्हिटेकर
अनुवादः हनुमानसिंह पंवार
प्रकाशक : नेशनल बुक ट्रस्ट, ए-5, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110016
पृष्ठः 64, कीमत 5.00 रुपए, प्रथम संस्करण, 1987.
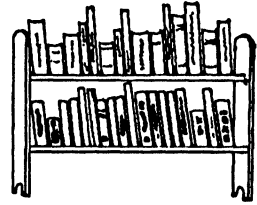
बातचीत में कहीं सांप का प्रसंग आ जाए तो फिर किस्से-कहानियों का अंत नहीं होता। आमतौर पर समाज में सांपों को लेकर अनेक धारणाएं व्याप्त हैं, पर उनमें से अधिकांश बिना सिर-पैर की होती हैं, मसलन सांप दूध पीते हैं, उड़ने वाले सांप होते हैं, सांप बदला लेते हैं, दो-मुंहा सांप के चाट लेने से कुष्ठ रोग हो जाता है, सभी सांप विषैले होते हैं आदि, आदि।

ऐसी धारणाओं का भंडाफोड़ करने तथा सांपों के बारे में वैज्ञानिक जानकारी को सरलीकृत करके ज़य और रोम व्हिटेकर ने यह पुस्तक लिखी है। रोम व्हिटेकर उस व्यक्ति का नाम है जिसने सांपों पर खूब अध्ययन किया है। रोम और उसके साथियों ने दक्षिण भारत में तमिलनाडु की इरूला जनजाति के बीच कोई दस साल तक काम किया। इरूला जनजाति सांपों को पकड़कर, उनकी चमड़ी निकालकर बेचा करती थी। पर यह काम वे औरों के इशारों पर करते थे। उस इलाके में चमड़ी की तस्करी करने वाला संगठित गिरोह था जो इरूला लोगों को तो केवल मज़दूरी ही देता था।

रोम व्हिटेकर ने इरूला जनजाति के साथ काम करके सापों को पकड़ने की उनकी जादुई प्रतिभा का इस्तेमाल एक बिल्कुल ही फर्क दिशा में करवाया। अब भी वे सांप पकड़ते तो थे पर उनको मारते नहीं बल्कि विष दुहकर फिर से जंगल में छोड़ देते। यह विष दवाईयों आदि के उत्पादन के लिए बहुमूल्य है।

रोम के इरूला जनजाति के साथ काम करने का मकसद न सिर्फ सांपों की हत्या को रोकना है, बल्कि उनकी सांपों को पकड़ने और पहचानने की दक्षता को एक रचनात्मक अन्जाम देना भी है। साथ ही रोम ने मद्रास में एक स्नेक-पार्क भी बनाया जहां दूर-दूर से लोग-बाग सांपों को देखने आते हैं, उनके बारे में जानने आते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखकों द्वारा सांपों पर किए गए काम के दौरान प्राप्त अनुभवों की भी झलक मिलती है। कव्हर समेत 64 पेज की इस पुस्तक में सांपों के व्यवहार, रहन-सहन, आकार-प्रकार, भोजन, इनके बारे में फैले अंधविश्वास, उनका आर्थिक महत्व तथा सांपों की खाल की तस्करी से जुड़े मुद्दों पर रोशनी डाली गई है। पुस्तक की शुरुआत में ही कहा गया है कि सांप प्रकृति का एक लुभावना जीव है। इनके विविध रंग, चाल-ढाल और रहस्यपूर्ण आदतें इन्हें अन्य जीवों से एकदम अलग कर देती हैं।

मनुष्यों में सांपों को लेकर जो अंधविश्वास व्याप्त हैं उनको लेखकद्वय ने हास्यास्पद बताया है। रोम कहते हैं कि मद्रास स्थित सांपों के पार्क में आने वाले बहुत से लोग सांपों को पिलाने के लिए दूध लाते हैं जिसे लेकर मैं अपने कर्मचारियों को कॉफी बनाने के लिए दे देता हूं। उन्होंने आगे इस धारणा का खंडन कुछ इस तरह किया कि दूध सांप का प्राकृतिक भोजन नहीं है। और सांप के दांत इतने तेज़ होते हैं कि वह गाय या भैंस के थनों से दूध पीने की कोशिश करे तो वो सहन नहीं कर सकती।

सांपों को लेकर अंधविश्वासों की सूची बनाएं तो यह काफी लंबी हो सकती है और पुस्तक में सभी का उल्लेख करना भी मुमकिन नहीं। बल्कि सांपों के बारे में वैज्ञानिक जानकारी उपलब्ध करा देना ही इन अंधविश्वासों को तोड़ना है। पुस्तक में विषैले और विषहीन सांपों के बारे में विस्तार से लिखा है। भारत में यों तो 50 के लगभग सांपों की विषैली प्रजातियां हैं पर इन में से 4 प्रमुख ऐसे सांप हैं जिनसे सावधान रहने की ज़रूरत है – नाग, करैत, दुबोईया और अफाई। इसके अलावा बहुत से ऐसे विषैले सांप हैं जिनके संपर्क में आम लोग नहीं आते – समुद्री सांप, पिट वाईपर, नागराज, मुंगिया सांप के बारे में भी उल्लेख मिलता है।

पुस्तक में विषैले सांपों के विष का असर और उनके काटे के इलाज की चर्चा भी की गई है। पुस्तक से जानकारी मिलती है कि विषैला सांप काट ले तो कीमती समय को मंत्रों, जड़ी-बूटियों से इलाज में बरबाद नहीं करना चाहिए। एक व्यक्ति कैसे "नाग के काट लेने पर शिथिल पड़ जाता है और खुद अपनी ज़रा भी मदद नहीं कर पाता परंतु उसको विषरोधी सीरप देने के आधे घंटे में ही वह उठकर चाय पीने लग गया" जैसे अनुभवों का समावेश किया गया है।

सांप के काटे की दवाई कैसे बनाई जाती है इस बात का भी उल्लेख पुस्तक में मिलता है।

सभी सांप विषैले नहीं होते। अनेक विषहीन सांपों का दिलचस्प विवरण इस पुस्तक में मिलता है। विषहीन सांपों में से अधिकांश तो ऐसे हैं कि जिनके साथ बच्चा भी खेल सकता है, उनको पालतू बनाया जा सकता है। और इस विश्वास को पुख़्ता करते हैं इस पुस्तक में दिए चित्र जिनमें बच्चों के हाथों में पकड़े सांप दिखाए गए हैं।

सांपों के भोजन के साथ-साथ इनके आर्थिक महत्व तथा इनके द्वारा प्रकृति में संतुलन बनाए रखने जैसे तथ्यों को भी उभारा है। सांपों का प्रिय भोजन चूहे हैं। और चूहे हमारे देश में पैदा होने वाली कुल उपज का लगभग आधा हिस्सा चट कर जाते हैं। पुस्तक बताती है कि कुछ अन्य प्राणी भी हैं जो चूहे खाते हैं। पर सांप ही एक ऐसा प्राणी है जो चूहों का ठीक उनके बिलों तक पीछा करके पकड़कर खा जाता है। लेखकों ने इस ओर भी संकेत किया है कि चूहों को मारने की आधुनिकतम तकनीकें तो फेल हो चुकी हैं। आजकल चूहे दवाईयों को भी पचा जाते हैं। ऐसे में सांप इन चूहों को खाकर उनकी संख्या पर काबू रखते हैं।

सांप के शत्रु भी हैं। पर सबसे बड़ा शत्रु तो मानव है जो एक तो इनकी चमड़ी के लिए मारता है, दूसरा हानिकारक रसायनों को छिड़ककर, जंगलों की कटाई करके इनको खत्म कर रहा है। सांप इस धरती की जीवन श्रृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं और इस कड़ी की हानि पृथ्वी के पूरे जीवन के लिए हानिकारक हो सकती है।

पूरी पुस्तक को पढ़ने पर सांपों के बारे में काफी वैज्ञानिक जानकारी का अंदाज़ा होता है। साथ ही सांपों के बारे में हम जो गलत अहसास पाले रहते हैं वो भी दूर होते हैं। पुस्तक में दिए गए लगभग सभी चित्रों की छपाई साफ है। पर कहीं-कहीं कठिन शब्दों का इस्तेमाल करने से विषयवस्तु की रोचकता कम हुई है और इस वजह से पढ़ने का फ्लो टूटता है।

के.आर. शर्मा

(विज्ञान शिक्षण व लेखन में सक्रिय। छायांकन में रुचि।)
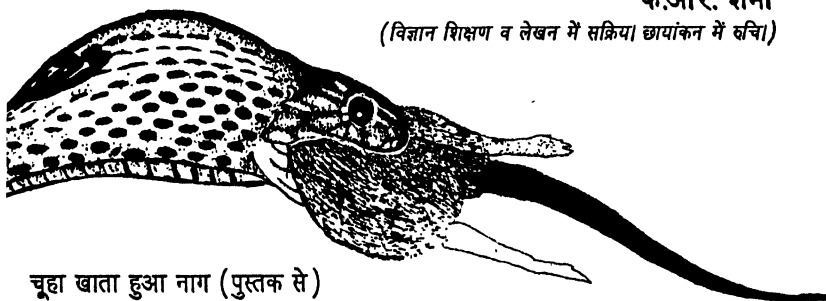
चूहा खाता हुआ नाग (पुस्तक से)

आंकड़े बताते हैं

कॉलेज या यूनिवर्सिटी में कभी सुना है कि दो कक्षाओं के लिए केवल एक ही शिक्षक हो जो दोनों कक्षाओं के छात्रों को एक साथ बिठाकर पढ़ा रहा हो? शायद ही इक्का-दुक्का ऐसे किस्से सुनने को मिलेंगे। पर अगर इसी पहलू को लेकर शिक्षा की बुनियाद प्राथमिक शाला पर नज़र डालें तो चौंकाने वाले तथ्य सामने आते हैं।

शिक्षकों की संख्या के मुताबिक प्राथमिक शालाओं की संख्या (प्रतिशत में):

क्षेत्र \ शिक्षक संख्या	शून्य	एक	दो	तीन	चार	पांच	पांच से ज़्यादा	कुल
ग्रामीण स्कूल	0.58	35.11	28.24	15.36	8.71	5.00	7.00	100
शहरी स्कूल	0.12	5.78	10.17	11.31	14.52	14.29	43.81	100
कुल	0.53	31.92	26.28	14.92	9.34	6.01	11.00	100
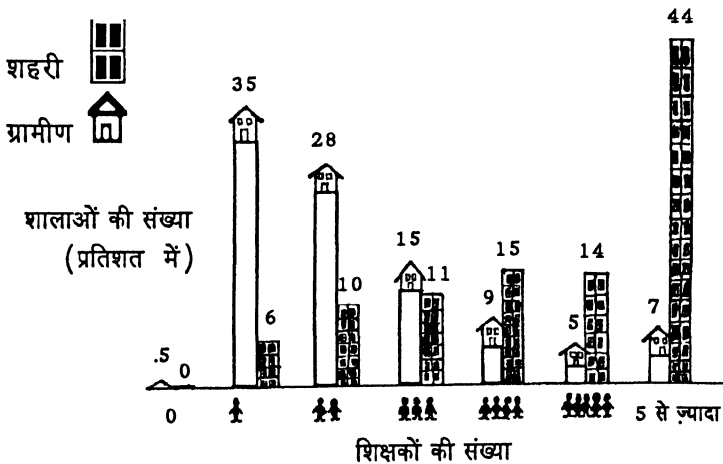
प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर दो कक्षाओं के लिए एक शिक्षक की बात छोड़िए – हिन्दुस्तान के ग्रामीण क्षेत्रों में एक तिहाई से अधिक प्राथमिक शालाएं ऐसी हैं जिनमें पहली से पांचवीं कक्षा के पांच वर्गों के लिए केवल एक ही शिक्षक है। इतना ही नहीं ग्रामीण हिन्दुस्तान में ज़्यादा से ज़्यादा केवल 12 प्रतिशत प्राथमिक शालाएं ऐसी होंगी जिनमें पर्याप्त संख्या में शिक्षक हैं।

शहरी प्राथमिक शालाओं में स्थिति कुछ बेहतर है जहां पर शायद* अधिकतम 58 प्रतिशत शालाओं में ज़रूरत के मुताबिक शिक्षक हैं।

इसका अर्थ यह है कि शहरों में भी 42% प्राथमिक शालाएं ऐसी हैं जहां शिक्षकों की संख्या चार से कम है।
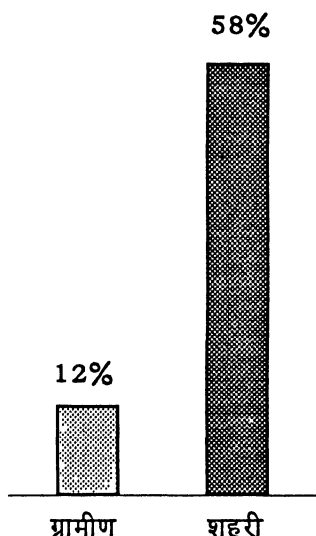
उन शालाओं की प्रतिशत संख्या जहां शिक्षकों की संख्या पांच या पांच से ज़्यादा है अर्थात जहां पर्याप्त शिक्षक हैं।

इतना ही नहीं हमारे यहां ऐसी भी शालाएं हैं जहां शिक्षक हैं ही नहीं! देखने में यह आंकड़ा शायद बहुत ही छोटा लगे – सिर्फ आधा प्रतिशत परन्तु जब हिन्दुस्तान की पांच लाख प्राथमिक शालाओं में से गिनती करें तो समझ में आता है कि ऐसी शिक्षक-विहीन शालाओं की संख्या लगभग 3000 होगी।

* 'शायद' इसलिए कहा गया है क्योंकि बहुत-सी शहरी प्राथमिक शालाएं खूब बड़ी होती हैं जिनमें कई कक्षाओं के दो या दो से अधिक वर्ग भी हो सकते हैं। इसलिए पांच या पांच से अधिक शिक्षक होने पर भी ज़रूरी नहीं है कि उनमें शिक्षकों की संख्या पर्याप्त हो।

(स्रोतः एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा किया गया पूरे भारत का चौथा शिक्षा सर्वेक्षण, 1982)

स. . . टा. . . क

खेत, बगीचे में घूमता हुआ गिरगिट तो सबने देखा होगा। यह फोटो भी गिरगिट का है, ऐसा लगता है न? दरअसल केमेलियन है यह, गिरगिट जैसा ही दिखने वाला। हिंदुस्तान के जंगलों में यह अक्सर पाया जाता है।

केमेलियन की एक खासियत है कि अपने आसपास के रंग के मुताबिक अपना रंग बदल लेता है – अपने आपको छुपाने के लिए। इसीलिए हिंदी में इसे ..... कहा जाता है। इतनी अच्छी तरह से रंग बदलता है कि बहुत ही ध्यान से देखने पर ही पता चलता है कि यहां तो बहुरूपिया बैठा है।

दूसरी और भी मज़ेदार खासियत इस चित्र में दिखाई गई है। केमेलियन की जीभ एक सेकंड के पचीसवें भाग में शिकार करके मुंह में वापस आ जाती है। एक क्षण कीड़ा-पतंगा दिखाई देगा और दूसरे क्षण गुम। आपको और हमें पता भी नहीं चलेगा कि कहां गया, क्या हुआ उसका।

सबसे पहले तो शिकार की खोज में बिना हिले-डुले एक जगह बैठा रहता है केमेलियन। उसकी आंखें भी अपने से अलग तरह की होती हैं जो स्वतंत्र रूप से घूम सकती हैं। इसलिए एक-साथ चारों तरफ देखता हुआ डटा रहता है अपनी जगह पर। जैसे ही शिकार दिखा कि उसकी तरफ धीरे-धीरे सरकने लगता है। उस समय दूरी का सटीक अंदाज़ा लगाने के लिए दोनों आंखों को एकदम शिकार पर केंद्रित कर देता है। और फिर जैसे ही उसे लगा कि शिकार पकड़ के दायरे में आ गया है तो – स......टा.......क!
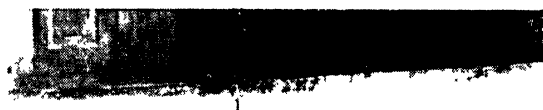
प्रकाशन: एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद - 461 001
मुद्रण: आदर्श प्रिंटर्स, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल - 462 011